गीति-काव्य

लेखक

रामखेलावन पाण्डेय, एम० ए०

प्रकाशक



मुद्रक—महताबराय, ज्ञानमण्डल (यन्त्रालय) लिमिटेड, बनारस । २००४

विरूप व्यङ्ग्यपूर्ण मेघाच्छन्न जीवनाकाश

की

रजत-रश्मि

को

आभार-संभार

जिन देशी-विदेशी लेखकोंकी रचनाओसे प्रेरणा और व्याख्या-विवेचन एवं मत-निर्धारणमें सहायता मिली है तथा जिन कवियोंकी कृतियोंका विवेचन मैंने किया है, उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करना मैं अपना कर्त्तव्य समझता हूँ। उक्त कवियोंमें पुस्तक 'लिखनेके समयतक अप्रकाशित [अब 'सामधेनीकाव्य-संग्रहमें प्रकाशित] कविताकी विवेचना करनेकी अनुमति देनेवाले और बिहारके रस-सिद्ध कवि श्री रामधारी सिंह 'दिनकर' और सौन्दर्यके कुशल शिल्पी डा० रामकुमार वर्मा विशेष उल्लेखनीय हैं। कई अलभ्य पुस्तकोंके प्राप्त करनेमें पटना कालेजके अध्यापक श्री दिवाकरप्रसाद विद्यार्थी, एम०ए०ने तत्परतासे सहायता दी, उसके लिए मैं उनका आभारी हूँ। श्रद्धेय श्रीमान राजाबाबू और जननी-तुल्या श्रीमती रघुवंशी देवीकी सहृदयता और स्नेहका मोल आँकना मेरे लिए सम्भव नहीं, शक्य नहीं। अग्रज-तुल्य पण्डित छबिनाथ पाण्डेय, बी० ए०, एल-एल० बी० का इतना अधिक आभार मुझपर है कि वह शब्दोंके 'गागरमें' अँट नहीं सकता, अतः उन्हें धन्यवाद देनेकी धृष्टता मैं नहीं करूँगा। आलस्य-वश प्रेस-कापी तैयार न करने, अक्षरोंके अत्यन्त छोटे और अ-पाठ्य होने तथा असावधानीसे लिखी लिपिके कारण 'कम्पोजिटरोंको' अधिक असुविधाएँ हुई हैं, वैसे लेखके उद्धार करनेवाले 'कम्पोजिटर'-बन्धुओंका कम आभार मुझपर नहीं, इसलिए धन्यवादके साथ उनके प्रति मैं अपनी कृतज्ञता प्रकट करता हूँ।

रामखेलावन पाण्डे

विषय-सूची

विषय		पृष्ठ सं०
गीति-काव्यकी परम्परा	...	१
क्रमिक विकास	...	१०
भारतीय परम्परा	..	१७
पाश्चात्य प्रभाव	...	२९
संगीतात्मकता	..	३६
आत्माभिव्यक्ति	...	५८
रस-बोध और उसका कारण	...	१०४
सौन्दर्यिक कल्पना और सौन्दर्य-बोध	...	१०६
विधान	...	११५
गीति-काव्य और प्रकृति-चित्रण	...	१३१
,, ,, मानवता	...	१५५
,, ,, राष्ट्रीयता	...	१६१
,, ,, बौद्धिकता	..	१६६
,, ,, सौन्दर्य एवं प्रेम	...	१८०
,, ,, करुण रस	..	२०४
,, ,, कल्पना	..	२०६
,, ,, जीवन	...	२०८
,, में चित्र	...	२०८
आकृति और विस्तार	...	२१०
गीति-काव्य और समाज	...	२२०
,, का वर्गीकरण	...	२२२
,, और उसका कार्य	...	२४५
,, की कसौटी	...	२४८

गीत		पृ० सं०
मन मस्त हुआ तब क्यों बोले	(कबीर)	२५३
सखि, कि पूछसि अनुभव मोय	(विद्यापति)	२६१
निस दिन बरसत नैन हमारे	(सूर)	२७०.
जब-जब भवन बिलोकति सूनो	(तुलसी)	२७८.
है री मै तो प्रेम दिवाणी	(मीरा)	२८५
स्वजनि, रोता है मेरा गान	(गुप्त)	२९३
तुम कनक किरणके अन्तरालसे	(प्रसाद)	३०३
नयनोके डोरे लाल	(निराला)	३१२
बिदा हो गयी साँझ	(पन्त)	३२०
जाने किस जीवनकी सुधि ले	(महादेवी)	३२८
जीवनके पहले प्रभातमे	(द्विज)	३३७
अचेतन मृत्ति, अचेतन शिला	(दिनकर)	३४७
हम दीवानोंकी क्या हस्ती	(भगवती चरण)	३५७
कोकिलकी यह कोमल पुकार	(रामकुमार)	३६६
दिन जल्दी जल्दी ढलता है	(बच्चन)	३७४
पश्चिम नभमें कोलाहल कर	(नेपाली)	३८२

गीति-काव्य

गीति काव्यकी परम्परा

कविता जीवनका अन्तर्दर्शन और उसकी रागात्मक अभिव्यक्ति है। आदिम जीवनके प्रारम्भिक युगोमे मानवताकी सुख-दुःखानुभूति वाणीके प्रसार-सङ्कोच एवं भङ्गिमाकी भिन्नताके अतिरिक्त और किसी रूपमें अभिव्यक्त नही होती रही होगी। पशु-पक्षीतकमे अनुभूति और उसकी अभिव्यक्तिकी क्षमता है। आनन्दके कारण जिस प्रकार मानवमे आत्म-प्रसारका भाव जाग्रत होता है, उसी प्रकार पशु-पक्षीमे भी। वाणी अथवा अन्य माध्यमोद्वारा मनुष्यने अपनी अनुभूतियोकी अभिव्यक्तिको स्थायित्व देनेकी चेष्टा की है किन्तु प्रकृतिके इन विवश प्राणियोको कृत्रिमताके साधन उपलब्ध नही। रागात्मक अनुभूति और उसकी सहज अभिव्यक्ति इस प्रकार प्राकृतिक है। आध्यात्मिकता, दार्शनिकता एव धार्मिकतासे प्रभावित सिद्धान्त इस जगत्को भी किसी अज्ञात शक्तिकी अभिव्यक्ति एवं आत्म-प्रकाश मानते है। उद्भिद् जगत्मे भी राग-द्वेषात्मक अनुभूति है, यह सिद्धान्त वैज्ञानिकोको भी अमान्य नही। कहा जाता है, क्रौंच-वध-कातर क्रौंचीकी करुण पुकारके कारण ही आदि-कवि वाल्मीकिकी विगलित करुणा अनुष्टुपके छन्दोमे फूट पड़ी थी—

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः
यत् क्रौंच मिथुनादेकमवधिः काममोहितम् ॥

शास्त्रकारोकी परम्परा स्वीकारकर इसमे करुणरस मान्न पतकी भाँति—

वियोगी होगा पहला कवि
आहसे उपजा होगा गान
उमड़कर आँखोंसे चुपचाप
बही होगी कविता अनजान

कह करुण-रसको ही आदि रस माने 'अथवा शृङ्गारको। इतना तो स्वीकार करना पड़ेगा कि क्रौंचीमे स्वभावज नैसर्गिक अनुभूति और उसकी अभिव्यक्ति थी एव उस अभिव्यक्तिमे सवेदनशीलता भी, जो वाल्मीकिका अन्तर छू सकी। छन्द, लय, ताल, स्वरैक्य और मेल, तारतम्य और सन्तुलनका विधान सहज शक्तिको सीमामे घेर रखनेका प्रयास है, जिसके द्वारा मनुष्यने देश-कालकी परिधिके अतिक्रमणकी चेष्टा की है। कला—कविता जिसका एक अङ्ग है—मानवीय सन्तुलन-प्रिय बुद्धिका फल है। जिस प्रकार व्याकरण भाषाको नियमित करनेके प्रयासका फल है उसी प्रकार सभ्यता, सस्कृति, आचार-नीति, धर्म आदि सामूहिक चेतनाको घेरेमें बाँधनेके उपक्रम। कविताके सम्बन्धमे विचार करते समय उसे इस भूमिकामे रखकर देखना, अतः, आवश्यक हो जाता है। विवश मानव-मनमें परिस्थितियोके कारण सुख-दुःख, क्रोध-आक्रोश, आशा-निराशा, आवेश-उत्साहके क्षोभ उत्पन्न होते रहते है और उनकी अभिव्यक्ति वह उल्लास-पूर्ण आवेश, करुणचीत्कार अथवा हास-अश्रुद्वारा करता रहा है, इस अभिव्यक्तिको सौन्दर्यिक चेतनाका आवेश और स्थायित्व देनेका प्रयास कलाद्वारा होता है। इस प्रकार कला स्वाभाविक अनुभूतियोकी कृत्रिम माध्यमद्वारा अभिव्यक्ति है।

मानव-विकासके प्रारम्भिक युगमे अन्तर्दर्शनकी प्रवृत्ति नही रही होगी। वैयक्तिक अथवा सामूहिक जीवनमे अपेक्षाकृत विलम्बसे यह क्षमता आती है, कारण इसका विकास क्रमिक होता है। बच्चोका प्रारम्भिक जीवन-काल मानव-जातिके जीवन-विकासकी सक्षिप्त पुनरावृत्ति उपस्थित करता है, इस प्रकार इतिहासकी पुनरावृत्तिद्वारा मानवीय चेतनाके विकासका सक्षिप्त सकेत उपलब्ध हो जाता है। जीवन-कालकी प्रारम्भिक अवस्थामे मानव-शिशु वाह्य-वस्तुओसे प्रभावित एवं उनके प्रति आकृष्ट होता है, क्रमशः अपने शरीर, व्यक्तित्व और अनुभूतिका उसे ज्ञान होता है। भौतिक विज्ञानकी चरमोन्नतिके पश्चात् मनोविज्ञानका विकास इस कथनकी पुष्टि करता है। प्रारम्भिक विकास-युगमे मनोविज्ञान भी वाह्य अभिव्यक्तियोसे अधिक सम्बद्ध था। मानसिक क्रिया और उसके अचेतन-प्रदेशमे प्रवेश करनेकी चेष्टा अपेक्षाकृत अत्यन्त आधुनिक है। सभ्यता एव सस्कृतिके विकास-कालकी आदिम अवस्थामे मानवीय चेतना अपनेसे बाह्य अलौकिक शक्तियोका प्रतीक बनाती थी अथवा किसी पूर्व पुरुषकी गाथाओके प्रति भक्ति-विह्वल भावसे आकृष्ट थी। सम्भवतः उस समय उसे अपनी मानसिक शक्तियोका ज्ञान नही था अतः उसके प्रति अनास्था भी थी। सामाजिक चेतनाके विकास-क्रममे प्रारम्भिक चेतना सामूहिक ही देखी जाती है। वैयक्तिक सुख-दुःख सामाजिक सुख-दुःख मात्र थे। जिसे हम वैयक्तिक सुख-दुःख, आशा-निराशा कहते है, उसकी चेतनाका विकास बहुत पीछे चलकर हुआ। धार्मिक कृत्योके सामूहिक रूपका विकास इसीका स्वरूप-भेदभर है। वाल्मीकीय रामायणको आदि-काव्य स्वीकार करनेपर भी भरतका नाट्य-शास्त्र सूचित करता है कि रूपकोकी रचना पहले हुई होगी अन्यथा रूपकोके सिद्धान्त और उनकी विवेचनाकी आवश्यकता क्यो पड़ती?

नाट्य-शास्त्रके द्वारा पूर्वके कुछ शास्त्रकारोकी भी सूचना मिलती है और उनका यत्किञ्चित् उल्लेख वहॉ प्राप्य है । दृश्य-काव्यके पश्चात् ही श्रव्य-काव्यकी रचना हुई होगी । रूपकमे अनुभूतिकी अपरोक्ष अभिव्यक्ति है और उससे आनन्द सामूहिक रूपसे प्राप्त किया जाता है । अपरोक्ष अनुभूतिके परोक्ष चित्रणके रूपमे महाकाव्योका विकास हुआ, अतः महाकाव्योमे नाटक-तत्त्वोका विलक्षण मिश्रण मिलता है । महाकाव्यमे भी सङ्घर्ष—परिस्थितिगत और रागात्मक—उतना ही आवश्यक है जितना रूपकोमे, यद्यपि इसे प्रत्यक्ष रूपमे भारतीय शास्त्रकारोने स्वीकार नहीं किया है । जो साहित्यिक रूपक अथवा महाकाव्य मिलते है, उनके पूर्व-रूप कथा-काव्यके रूपमे, इनकी रचनाके पूर्व प्रचलित रहे होगे और कवियोने इन्हे साहित्यिक रूप दिया होगा । दृश्य और श्रव्यके रूपमे काव्यका विभाजन दोनोके निकट सम्पर्ककी सूचना देता है । ऐसा सस्कार और परिष्कार भी सम्भवतः एक आदमीद्वारा नही हुआ होगा, कथाके रूपमे ही अनेक परिवर्तन और परिवर्द्धन हुए होगे, एव अनेक व्यक्तियोने साहित्यिक रूप देनेकी चेष्टा की होगी, उनके अत्यन्त विकसित रूप ही आज उपलब्ध हैं, अपेक्षाकृत अ-सस्कृत रूप काल-क्रमसे नष्ट हो गये, अतः अ-प्राप्य हैं । इस सामूहिकता एव वहिर्दर्शनके विरोधमे वैयक्तिकता एव अन्तर्दर्शनका उद्भव हुआ । महाकाव्यो एवं रूपकोका इस दृष्टि-कोणसे अध्ययन करनेपर मालूम होता है कि किस प्रकार अन्तर्दर्शन और वैयक्तिकताका प्रभाव पीछे चलकर बढता गया । उस युगमे भय-श्रद्धा-विस्मय-मिश्रित धार्मिक भावनाके कारण स्वानुभूति-प्रकाशके मार्गमे अनेक बाधाएँ थी । अनेक प्रभावशाली कृत्योका कवियोने वर्णन किया, उन कृत्योके कर्त्ताओंके महत्त्व-निदर्शनके लिए अनेक सम्भव-असम्भव अवस्थाओं एव घटनाओका आरोप किया, अपने हर्ष-शोक, उल्लास-विषादकी गाथाएँ

उन चरित्रोके साथ जोड दी ; और इस प्रकार काव्यकी प्रचलित परिपाटी के भीतर ही आत्म-तुष्टि लाभ किया अतः सङ्घर्ष केवल वाह्य न रहकर आभ्यन्तरिक भी हो उठा, फलस्वरूप रूपक और महाकाव्यके मूलमे सङ्घर्ष—वाह्य और आभ्यन्तरिक दोनो रूपोमे—स्वीकृत हुआ ।

प्राचीन काव्य-परिपाटीके भीतर किञ्चित् स्वरूप-परिवर्तनसे सामञ्जस्य उपस्थितकर विरोध प्रकट करनेके बदले जो स्वतत्र रूपमे विरोध उठ खडा हुआ, उसके दर्शन सम्भव नहीं, क्योंकि लिखित साहित्यकी भाँति लिपि-बद्ध नही होनेके कारण उसकी रक्षा सम्भव नही हो सकी। किन्तु इतना स्पष्ट है कि सङ्गीतकी बँधी परिपाटी-युक्त सामूहिकता, तथा वहिर्दर्शन और चित्रण-प्रधान प्रबध काव्यकी प्रचलित परम्पराके विरोधमे सङ्गीतात्मक, वैयक्तिक एव अन्तर्दर्शन प्रधान गीतोका प्रचलन हुआ। पीछे चलकर महाकाव्योतकमे इन तत्त्वोका मिश्रण हुआ । इस प्रकार प्रारम्भिक अनगढ, अनेक अशोमे अकृत्रिम तथा सहज संवेदनशील गीतोने महाकाव्यो, आख्यान-काव्यो एव रूपकोको नवोन्मेष दिया । नाटकोपर इनका प्रभाव उस समय अधिक नही पड सका कारण काव्यत्व और सङ्गीततत्त्वकी रक्षाका साधन उन्हे उपलब्ध था एव सामूहिक प्रदर्शनके कारण उनके रूपमें अधिक परिवर्तनकी गुञ्जाइश भी नही थी ।

जिस प्रकार लोक-गाथाओ एव कथानकोका साहित्यिक रूप प्रबन्ध काव्यो एव रूपकोमे प्रकट हुआ उसी प्रकार व्यक्तिगत हर्ष-शोक, आशा-निराशा, राग-द्वेष, आवेश-भावकुतासे परिपूर्ण लोक-गीतोका साहित्यिक रूप गीति-काव्यो या प्रगीत मुक्तकोमे । लोक-गीत ही इन्ही साहित्यिक गीतो और गीतियोके अविकसित रूप है । इन लोक-गीतोने इस प्रकार जहाँ महाकाव्योमे वैयक्तिकता एव अन्तर्दर्शनका आवेश दिया वहाँ स्वतन्त्र गीति-काव्योंकी रचना को उन्मेष भी ।

संस्कृत साहित्य-शास्त्रमे काव्यके दृश्य और श्रव्य दो भेद मानकर श्रव्य काव्यको महाकाव्य और खण्ड काव्य दो भेदोमे विभक्त किया गया है। दूसरे पद्योसे निरपेक्ष छन्दोबद्ध रचनाको मुक्तक कहते है। वस्तुतः गीति-काव्य और मुक्तक काव्यमे भारी अन्तर है। गीति-काव्य अनुभूतिकी अन्विति उपस्थित करता है, ऐसी अवस्थामे उसके पद्य अपने ही अन्य पद्योंकी आकाक्षा अवश्य रखते है। मुक्तक छन्दकी इकाई मात्र उपस्थित करते है। संस्कृत साहित्य-शास्त्रकारोंने इस प्रकार गीति-काव्य नामका कोई भेद नही माना है।

नीति, स्तोत्र आदि मुक्तकके अन्तर्गत आते है। ग्रीकोंने काव्यके दो भेद माना है—गीति-काव्य (melic or lyric) तथा सामूहिक काव्य (choric)। सामूहिक काव्य गेय था और अनेक लोग मिलकर वाद्य यंत्रोंकी सहायतासे किसी तीव्र सामूहिक भावनाको अभिव्यक्त करते थे। गीति-काव्यको 'लिरिक' इसलिए कहते थे कि उसे 'लायर' नामक वाद्य-यत्रकी सहायता अपेक्षित थी, अनेक गायकोंकी सामूहिक अनुभूतिकी अभिव्यक्ति और उद्रेक नही होता था, बल्कि उसके द्वारा वैयक्तिक अनुभूतिके उद्रेकका प्रयास किया जाता था। सारङ्गी बजाकर राजा भरथरीके गीत गानेवाले गायकोकी-सी परिपाटी सम्भवतः रही होगी। पीछे चलकर 'लिरिक' कविताको 'लायर' की अपेक्षा नही रह गयी एव काव्यके दूसरे भेद 'कोरिक' कवितामे इसके तत्त्वोका समावेश हो गया।

संस्कृतमे महाकाव्यके लक्षण इस प्रकार बने कि उसमे गीति-काव्यका प्रवेश सम्भव नहीं हो सका। महाकाव्यमे गीति-काव्यके समावेशका प्रयास अत्यन्त आधुनिक है, गीति-काव्यका आधार मात्र सङ्गीतात्मक होना नही। छन्द-व्यवस्था किसी-न-किसी रूपमे सङ्गीतात्मकताका आग्रह स्वीकार करती है। पाश्चात्य सङ्गीतके विधानकी सीमाओंके कारण वहाँके गीति-काव्यके

लिए सङ्गीतात्मकता अपेक्षित रही। वाल्मीकीय रामायण गेय है और लव-कुशने रामके आगे उसका सस्वर गान किया था। नीति या स्तोत्र पद्य-बद्ध होकर भी गीति-काव्य नही, कारण आत्मनिष्ठताका अभाव है। खण्ड-काव्योमेसे अनेकमे गीति-तत्त्व प्रचुर मात्रामे विद्यमान है किन्तु वे शुद्ध गीति-काव्य नही। मेघदूतमे कालिदासने वैयक्तिक हर्ष-शोककी अभि-व्यञ्जना की है किन्तु इसके आधार-रूपमे आख्यानका आग्रह भी कम नही। इस कारण इसमें गीति-काव्य और आख्यान-काव्यके तत्त्वोका सम्मिश्रण है। 'मन्दाक्रान्ता'मे एक ओर विषादकी जहाँ गंभीर अभि-व्यञ्जना हुई वहाँ कथानकके विकासमे विरोध भी उत्पन्न हुआ। इस मिश्रणके द्वारा इसमे 'लिरिकल बैलड' (Lyrical ballad) 'प्रगीत-गाथा' का आग्रह अधिक है। मेघदूतका गीति-काव्यत्व देखने योग्य है—

मामाकाशप्रणिहितभुजं निर्दयाश्लेषहेतो—
र्लब्धायास्ते कथमपि मया स्वप्न सं दर्शनेषु।
पश्यन्तीनां न खलु बहुशो न स्थलीदेवतानां।
मुक्तास्थूलास्तरुकिसलयेष्वश्रुलेशाः पतन्ति।

[प्रिये ! स्वप्नमे किसी तरह जब मैं तुझको पा जाता हूँ,
शून्य गगनमें आलिङ्गनको तब बाँहें फैलाता हूँ।
वनदेवियाँ दशा यह मेरी देख-देख दुःख पाती हैं;
आँसूकी मोती-सी बूँदें पत्तोंपर बरसाती हैं।]*

भित्वा सद्यः किसलयपुटान्देवदारुद्रुमाणां
ये तत्क्षीरस्रुतिसुरभयो दक्षिणेन प्रवृत्ताः।

---

* केशवप्रसाद मिश्र कृत हिन्दी अनुवाद।

आलिङ्ग्यन्ते गुणवति मया ते तुषाराद्रिवाताः
पूर्वं स्पृष्टं यदि किल भवेदङ्गमेभिस्तवेति ॥

[देवदारुकी नयी कोपलें चिटकाकर जो चली बयार,
हिमगिरिसे दक्षिणको लेकर उसके रसका सौरभ-सार ।
गुनवन्ती ! मैं उसे भेंटता अपने दोनों बाहु पसार,
क्या जाने तेरे अङ्गोंसे मिल आयी हो यही विचार ॥]*

संक्षिप्येत क्षण इव कथं दीर्घयामा त्रियामा ।
सर्वावस्थास्वहरपि कथं मन्दमन्दातपं स्यात् ।
इत्थं चेतश्चटुल नयने दुर्लभप्रार्थनं मे
गाढ़ोष्माभिः कृतमशरणं त्वद्वियोगव्यथाभिः ॥

[ऐसा क्यों न हो कि ये लम्बी रातें पल समान कट जायँ,
और दिवसके ताप पापमय सब प्रकार झटपट घट जायँ ।
मृगनयनी ऐसी अनहोनीके पीछे जल रहा शरीर,
तेरी विरह-वेदनाओंने मेरा मन कर दिया अधीर ।]*

इन पंक्तियोंमे गीति-काव्यके प्रधान तत्त्वोंका न्यूनाधिक मात्रामें समावेश है किन्तु उसका विशुद्ध विधान नहीं । जयदेवके गीत-गोविन्दके गीतोंकी गणना अनेक लोग गीति-काव्यके अन्तर्गत करते है । गीत और गीति-काव्यमे कलात्मकताके अतिरिक्त और भी अन्तर है। गीतमे एक ओर जहाँ सङ्गीतके निर्वाहका अधिक आग्रह है वहाँ आत्मानुभूतिकी अभिव्यञ्जनासे अधिक वर्णनका मोह भी । गीत इस रूपमे अपने पूर्व रूप लोक-गीतसे अलग जा पड़ा है । जयदेवके गीतोंके लिए ताल और रागका

* केशवप्रसाद मिश्र कृत हिन्दी अनुवाद ।

विधान है यद्यपि शास्त्रीय सङ्गीतकी दृष्टिसे उसकी रक्षा सब जगह नही हो सकी है। गीत-गोविन्दकी रचना बहुत नाटकीय ढगपर हुई है अथवा उसमे नाटकीय दृश्योका समावेश हुआ है यद्यपि पात्र-पात्रियोकी सख्या कुल तीन है, कृष्ण, राधा और सखी। यह, अतः, गीति-काव्य और गीति-नाट्यके बीचकी रचना है। वर्णनका मोह और आग्रह प्रसिद्ध गीतोमे लक्षित होता है—

[वसन्त राग तितलाभ्यां गीयते]

ललितलवंगलतापरिशीलनकोमलमलयसमीरे
मधुकरनिकरकरम्बितकोकिलकूजितकुञ्जकुटीरे।
विहरति हरिरिह सरस वसन्ते नृत्यति
युवतिजने न समं सखि विरहिजनस्य दुरन्ते ॥ध्रुवम्॥
उन्मदमदनमनोरथपथिकवधूजनजनितविलापे।
अलिकुलसङ्कुलकुसुमसमूहनिराकुलवकुलकलापे ॥विह...॥
मृगमदसौरभरभसवशंवदनवदलमालतमाले।
युवजनहृदयविदारणमनसिजनखरुचिकिंशुकजाले ॥विह...
मदनमहीपतिकनकदण्डरुचिकेशरकुसुमविकासे।
मिलितशिलीमुखपाटलपटलकृतस्मरतूणविलासे ॥विह...
विगलितलज्जितजगदवलोकनतरुणकरुणकृतहासे।
विरहनिकृन्तनकुन्तमुखाकृतिकेतकदन्तुरिताशे ॥विह...
माधविकापरिमलललितेनवमालतिजातिसुगन्धौ।
मुनिमनसामपि मोहनकारिणि तरुणाकारणबन्धौ ॥विह...
स्फुरदतिमुक्तलतापरिरम्भणमुकुलितपुलकितचूते।
वृन्दावनविपिने परिसरपरिगतयमुनाजलपूते ॥विह...

श्रीजयदेवभणितमिदमुदयति हरिचरणस्मृतिसारम् ।
सरसवसन्तसमयवनवर्णनमनुगतमदनविकारम् ।।विह···

'सरस वसन्त समय वन वर्णनम्' द्वारा इसकी वर्णन-प्रियता प्रकट है; वसन्त राग, रूपक ताल और मध्य लय है एव लय नामक छन्द भी । इस गीतमे विप्रलम्भाख्य शृङ्गारका वर्णन है । सङ्गीतके शास्त्रीय आग्रह और अपेक्षाकृत आत्म-निष्ठताके अभाव मे इसे गीत-काव्यके अन्तर्गत न मानकर गीत मानना ही उपयुक्त होगा । 'गगा-लहरी' आदिके सम्बन्धमे भी यह कथन अनुपयुक्त नहीं , यद्यपि पडितराज जगन्नाथमे गीति काव्यत्वका उन्मेष अधिक है । इस प्रकार सस्कृत-साहित्यमें शुद्ध गीति-काव्यका अभाव-सा है और लोक-गीतोंका प्रभाव उसपर परोक्ष रूपमे पडा है । प्रारम्भिक कथाओके आधारपर आख्यान काव्य बने किन्तु वैयक्तिक भावनाके प्रसारके अधिक अनुकूल न होनेके कारण लोक-गीतोंकी परम्परा-मे साहित्यिकताका आग्रह लाकर नये रूप-विधानकी सृष्टि हुई और उसका विकास वैयक्तिक हास-अश्रु तत्त्वसे युक्त आख्यान काव्य और स्वतत्र गीतो-के रूपमे हुआ और इन गीतोंकी परम्परामे क्रमशः गीति-काव्यका विकास हुआ ।

क्रमिक विकास

प्राथमिक अवस्थामे गीत गेय थे । गीतोंमे भाव-प्रसारके लिए काव्यत्व का अधिक आग्रह न था । मिलन-विरह, हर्ष-शोक, आनन्द-विषादका चित्र भावकुताद्वारा नही बल्कि सङ्गीत और गेयताद्वारा उपस्थित किया जाता था । आनन्दकी रागात्मक अभिव्यक्ति विषादकी अभिव्यक्तिसे विभिन्न है और इस प्रकारके गीतोंमे केवल इनकी अभिव्यक्ति-का आग्रह था । इस अवस्थामे शब्दका कोई महत्त्व नही था एवं विषय-

विधानका विकास भी नही हो सका था। भाषा उस अवस्थामे थी, जिसमे भाव-प्रकाशनकी क्षमता और विस्तारके लिए वाद्य-यन्त्रोकी सहायता अपेक्षित थी। वाद्य-यन्त्र भी अपने पूर्ण विकसित रूपमे न थे, बल्कि साधारण वाद्य-यन्त्र ही काममे आते थे। इस अवस्थामे अनेकाश रूपसे मानव चेतना प्रकृतिकी अनुकृतिमे सलग्न थी। बर्बर जातियोकी कविता अथवा गीतोके अध्ययनसे इसका सङ्केत मिलता है यद्यपि अधिक सहायता नही मिलती। कारण युगोके इस अन्तरालमे उनके स्वरूपका भी विकास होता रहा है अतः उनके गीतोका भी आज वह रूप नही रहा जो पूर्वकालमे था। इस कालतक सामूहिक और वैयक्तिक भावनामें अधिक अन्तर नही आ सका होगा। समाजकी उस अवस्थामे व्यक्तिपर गीतोमे प्रकट भावनाओसे अधिक सङ्गीतात्मक अभिव्यक्तिका प्रभाव पडता था। प्राचीन जातियोके इतिहासमे—जिसका अधूरा ज्ञान ही आज उपलब्ध है—इसका सङ्केत मिलता है। प्रारम्भिक कालके इन गीतोके स्वरूपका विकास होता रहा और उसकी दो शाखाएँ हो गयी। एक शाखाका विकास सगीतके शास्त्रीय विधानके रूपमे हुआ और दूसरीका विकास काव्यके रूपमे। काव्यमे सङ्गीतात्मकता और चित्रात्मकता दोनोके सामञ्जस्य और सन्तुलनका आवेश है। काव्यका मूर्त-विधान चाक्षुष है किन्तु सङ्गीतके कारण श्राव्य-मूर्त-विधानका आग्रह कम नही। कविकी सफलता दोनो प्रकारके मूर्त्त-विधानमे समन्वय और सामञ्जस्य उपस्थित करनेमे है। प्रारम्भिक गीतोका नमूना नही मिलता केवल उनके द्वारा प्राप्त साहित्यिक उन्मेषका आभास ही यत्र-तत्र मिलता है। अतः इसके सम्बन्धमे निश्चित रूपसे कुछ कहा नही जा सकता।

गीति-काव्य-परम्पराकी दूसरी अवस्था वहाँसे शुरू होती है, जहाँ सङ्गीत और गीतका अन्तर स्पष्ट होने लगता है। सङ्गीतमे जहाँ शास्त्रीय

विधान-रक्षाका आग्रह आता है वहाँ गीतोमे भावुकता और आत्माभिव्यञ्जनका। सङ्गीतमे शब्दोका महत्त्व नगण्य है केवल उनके माध्यमसे स्वर-विस्तार और सङ्कोच होता है; शब्द अर्थकी परिधिको स्पर्श मात्र करता है, स्वर-प्रसार ही उसका लक्ष्य है। गीतोमे स्वर और लय, स्वर-सामञ्जस्य और ताल-पद्धतिका शास्त्रीय आग्रह नहीं। शब्द केवल स्वरके विस्तार-सङ्कोचके लिए नही आते। अर्थ-परिधि विस्तृत होने लगती है। सङ्गीतके लिए जहाँ वाद्य-यन्त्रोकी अपेक्षा है, वहाँ गीतोके लिए उनकी अनिवार्यता स्वीकृत नही। गीत काव्य और सगीत दोनोके शास्त्रीय विधानके विरोधमे वैयक्तिक आत्मनिष्ठताका आधार लेकर चला। लोक-गीतोका उन्नत रूप इस अवस्थामे मिलता है, जिसमे शब्द और अर्थ दोनोकी प्रधानता है किन्तु सङ्गीतकी नहीं बल्कि सङ्गीतात्मक एव रागात्मक अनुभूतिका प्रबल आग्रह है। लोक-गीतोकी स्वाभाविकतामे काव्यके स्वीकृत मानोकी कृत्रिमताके प्रति विरोधका भाव है। जो आत्मीयता, आत्मनिष्ठता और सवेदनशीलता उनमे है, वह शास्त्रीय काव्य-विधानमे नहीं। कविताका प्रभाव अनेक अशोमे वैयक्तिक सस्कार और रुचिके कारण है इसलिए जो काव्यत्वपूर्ण काव्यके पोषक है, वे नवीन कविताका आस्वादन नही कर पाते, यद्यपि उनके मानको ही कविताका अन्यतम मापदण्ड स्वीकार नहीं किया जा सकता। उनके सामने काव्यका परम्परागत स्वरूप-विधान रहता है और उसी कसौटीपर वे काव्यको कसते हैं। लोक-गीतोमें काव्यत्वका अभाव माननेवाले काव्यकी कृत्रिमताको ही महत्त्वपूर्ण मान बैठते हैं। कला यदि रागात्मक क्षणोकी आवेशपूर्ण अभिव्यक्ति है, ग्राम-गीत निश्चय ही कलात्मक है। उनमे भावना और सङ्गीतात्मकताका समन्वय है।

"हे सुन्दरि! तुमपर यह मेरा कैसा अनोखा मोह है जिसका पारावार नहीं। जबसे तुम्हारा वियोग हुआ है, जिसको देखता हूँ, वही तुम्हारा

रूप बन जाता है। चित्तमे जिसका विचार करता हूँ, वही तुम्हारे प्रेमका विचार बन जाता है। जो कुछ मै लिखता हूँ, वही तुम्हारा सुन्दर आकार प्रतीत होता है। नाम लेकर किसीको बुलाने लगता हूँ, तो मुँहसे तुम्हारा ही नाम निकल पड़ता है।"

एटुवंटि मोह मो कानि ओ एलनाग इंतति अनंग रादे।
मटु माय दैवमी मनसु देलियग लेक मनल नेड़ बाये।
नय्यो-ओ मगुवा॥

कलिकि निन्नेड़ वासिनदि मोदलु नीरूप कनुल कट्टिनट्टुलुंडने।
चेलिय ने नोकटि दलचेद वन्न नीसेषु चोलिमि तलयै चुंडुने॥
सोलसि ने नेमैन त्राय नीयाकार शोभन मै कनुपिंचुने।
पिलिचि पेरुन नो कटि विलब बोलचिन नीदु पेरु मुंदुग॥
दो चुने-ओ मगुवा॥

[तेलगूका एक लोक-गीत, कविता कौमुदी (ग्राम-गीत) पृ० ३८]

कारिक पियरि बदरिया झिमिकि दैव बरसहु।
बदरी जाइ बरसहु उही देस जहाँ पिय कोड़ करै॥
भीजै आखर बाखर तम्बुआ कनतिया।
अरे भितरासे हुलसै करेज समुझि घर आवै॥

इन गीतोंमे कल्पनाकी विशद उडान नही; सङ्गीतका शास्त्रीय विधान नही; छन्द और अलङ्कारका कृत्रिम आग्रह नही, बल्कि साधारण शब्दोमे अन्तर्दशाकी सहज, स्वाभाविक, मार्मिक अभिव्यक्ति है।

सङ्गीत और काव्यके इस विच्छेद-युगके कला-गीतोंमे सङ्गीतका अधिक आग्रह देखा जाता है यद्यपि भावोन्मेषके लिए भी कम स्थान

नहीं। यहाँ भाव और सङ्गीतमे पारस्परिक सम्बन्ध है। सङ्गीत लय-विस्तारद्वारा भावना प्रसारमे सहायता देता है। राग-ताल-लय विशेष द्वारा विशिष्ट अनुभूति और भावनाकी अभिव्यक्तिका प्रयास इसकी सूचना देता है। इस अवस्थामे सङ्गीतका, किन्तु, मोह छूटा नही है, सङ्गीतकी प्रधानता क्रमशः कम होती गयी और भावाभिव्यक्तिका प्राधान्य हो चला। वर्णन-विधान अलङ्कृत रूप-विधानका हेतु न रहकर आत्माभिव्यक्तिका साधन हुआ। सङ्गीतशास्त्रका विरोध ऐसी अवस्थामे न हुआ किन्तु उसकी रक्षामे सतर्कता भी कम नहीं हुई।

विकास-क्रमकी तीसरी अवस्थामे भाव और सङ्गीत समान स्तरपर आ गये, एकके लिए दूसरेकी हत्या नही की जा सकी। भाव और सङ्गीत, विषय और विधानके एकीकरणद्वारा गीतोंकी कलात्मकताका विकास हुआ। इस अवस्थामे गीति-काव्य अपनी प्रकृत भूमिपर आता हुआ दीख पडता है। दूसरी अवस्थामे सङ्गीत और काव्यकी दो विभिन्न शाखाओंका रूप मिलता है। काव्य छन्द-बन्धन स्वीकारकर सङ्गीतका आग्रह मान लेता है किन्तु इस अवस्थामे सङ्गीतात्मकताकी भावना परम्परागत और सास्कारिक है। छन्दोका सङ्गीत अपने बँधे नियमोके अन्तर्गत चलता है जैसा सङ्गीतका विकास अपने शास्त्रीय नियमोके आधारपर। तीसरी अवस्थामे सङ्गीत और काव्य एक दूसरेकी सीमामे साधिकार प्रवेश पाते है। वैसे काव्यमे भाव-प्रसारणकी योजनाके साथ सङ्गीतकी रक्षाका आग्रह भी रहता है। शब्द-मात्र लय-विस्तारके साधन न रहकर अर्थाभिव्यक्तिके माध्यम बनते है। मध्ययुगीन हिन्दी-साहित्यका इतिहास इसका साक्षी है। सूर, तुलसी, मीराके पद एक ओर जहाँ भाव-भूमिके प्रसारमें सचेष्ट हैं, वहाँ सङ्गीतात्मकताकी पूर्ण रक्षामे भी। गवैयोंद्वारा 'क्लासिकल' सङ्गीतके लिए इन पदोकी स्वीकृति इसका प्रमाण है। सङ्गीतकी रक्षाके लिए काव्यत्व-

की हत्या नही हुई है। काव्यत्व और सङ्गीत एक स्तरपर स्थित है अवश्य, किन्तु ऐसा लगता है, जैसे सङ्गीतकी प्रमुखता नष्ट-सी हो- रही है यद्यपि सङ्गीतकी हत्या नही की गयी। सूरदासके पदोके शब्दोके विकृत रूपका कारण सङ्गीत-तत्त्वकी रक्षाका आवेश नही बल्कि भाषा और छन्दका विरोधी तत्त्व था। लिखकर रखनेकी प्रथा प्रचलित रहनेपर भी काव्य उस समयतक श्रव्य ही था। छापेकी कलोके कारण कविताके अन्य रूपोके साथ उसका पाठ्य रूप सामने आया। कविता-पाठकी जगह मौन-पाठका प्रचलन हुआ। इस प्रकार सङ्गीतसे अधिक प्रधानता उसके विषय अथवा विचारको मिली। इस तथ्यने कविता और विशेष रूपमे गीति-काव्यके स्वरूप-विधानमे अन्तर उपस्थित किया। चाक्षुष होना काव्यगत परिवर्तनो-के कारणोमें एक प्रमुख कारण है। जहाँ पहलेका कवि मुख्यतया श्राव्य एव-चाक्षुष-बिम्बोके समन्वयमे सलग्न रहा वहाँ उसका मूर्त विधान अधिका-धिक रूपोमें चाक्षुष होने लगा। अत. सङ्गीत-तत्त्वकी प्रमुखताका कम होना स्वाभाविक हो गया। छन्द-विधान-त्यागमे यही प्रवृत्ति परिलक्षित हुई यद्यपि मुक्त छन्दोमे भी कवि छन्द-बन्धनसे पूर्ण मुक्ति-लाभ नही कर सका।

इस प्रकार गीत-काव्यके विकासकी परम्पराकी चौथी अवस्थामे आकर गीति-काव्य सङ्गीतके शास्त्रीय विधानका पल्ला छोड़ देता है यद्यपि सङ्गीतात्मकताका आधार वह छोड नही सकता। सङ्गीत यहाँ अनुभूतिका अनुचर मात्र है। राग-ताल विशेषमे ही विशेष प्रकारकी अनुभूतिकी अभिव्यक्ति नही की जाती। सङ्गीतके शास्त्रीय विधानकी उपेक्षाके साथ ही उसी अनुपातमे आत्मनिष्ठता, आत्मानुभूति और आत्माभिव्यञ्जनका आग्रह बढ़ता जाता है। गीति-काव्य परम्पराकी तीसरी अवस्थामे भावानुकूल सङ्गीतकी योजना की जाती थी। छन्द और राग विशेषद्वारा भावप्रकाशन-की क्षमता प्रदर्शित की जाती थी। अतः छन्दशास्त्रके आचार्योंने इसका

विचार रखकर विशिष्ट रसोके लिए तदनुकूल छन्दोकी व्यवस्था की। श्रृगार के लिए शार्दूल विक्रीडित, वसन्ततिलका, मन्दाक्रान्ता, मालिनी, द्रुत विलम्बितः छन्दोका विधान किया गया। विरह-वर्णनके लिए मन्दाक्रान्ता अपनी रुक-रुक कर चलनेवाली गतिके कारण अद्वितीय है। सवैया और कवित्तके अत्यधिक प्रचारके मूलमे स्वर-विस्तारकी शक्तिके साथ विषयोका सीमित होना भी है। सङ्गीत-विधानकी रक्षाका प्रयत्न तीसरी अवस्थामे रहा किन्तु प्रत्येक स्थानमे इसकी रक्षा सम्भव न हो सकी। चौथी अवस्थामे आकर सङ्गीतके शास्त्रीय-विधानका मोह एकदम छूट जाता है, शब्दोमे अपना सङ्गीत-तत्त्व है और शब्दोके पारस्परिक सङ्घटन और मेलद्वारा उनके अन्तर्निहित सङ्गीतका समन्वय अनुभूतिकी अभिव्यञ्जनाके साथ होता है। ऐसी अवस्थामे सङ्गीत-विधान, काव्य-विधानसे भिन्न कुछ नही रह जाता बल्कि शब्दोका स्व-संगीत ही भावना-प्रसारकी उपयुक्तता ग्रहण कर लेता है। मौन-पाठका अर्थ है मन-ही-मन आवृत्ति। इस प्रकार विचार करते समय भी मनुष्य उच्चारण-प्रक्रियामे सलग्न है, कारण मानसिक बिम्बोके साथ उनका ध्वन्यात्मक साहचर्य भी लगा रहता है। शब्दोके उच्चारणमें प्रयुक्त वाक्-क्रिया और तदनुरूप भावोके चित्रोके समन्वयसे ही विचारोकी स्थिति जान पडती है। गीति-काव्यके पाठमे भी यह प्रक्रिया कार्य करती है। संक्षेपमे मन-ही-मन पढ़नेके समय भी सङ्गीतात्मकताका आग्रह बना रहता है, इस प्रकार गीति-काव्य सङ्गीतके शास्त्रीय-विधानसे विभिन्न सङ्गीतात्मकताका आवेश ग्रहण करता है। उसमे सङ्गीत नही सङ्गीतात्मकता है जिसके द्वारा विशिष्ट प्रभावकी योजना होती है और उसमें तीव्रता आती है। सङ्गीत वहाँ वाह्य आरोप नही अन्तर्निहित प्रवाह है। यह गीति-काव्यकी चरम परिणति है। गीति-काव्यको राग-तालके घेरेमे डाल कवि-सम्मेलनोके गायक कवि गीति-काव्यकी प्रकृतिका अपमान करते हैं। **सजीव**

भाषामें व्यक्तिके आन्तरिक भावोंकी सक्षम अभिव्यञ्जना सङ्गीतात्मकताके आग्रहके साथ जिसमें होती है, वह गीति-काव्य है।

गीति काव्यकी भारतीय परम्परा

गीति-काव्यकी प्रकृति और उसके स्वरूप-भेद-निरूपणमे भारतीय गीति-परम्पराका सक्षिप्त परिचय सहायक होगा। वैदिक-युग सामूहिक सस्कृति और सभ्यताका युग था। आनन्द-विषाद सभी सामाजिक थे, अतः उनकी अभिव्यक्ति भी सामूहिक थी। वैयक्तिकताके क्रमशः विकासके लक्षण उसी समय प्रकट होने लग गये थे। यज्ञ आदि क्रियाएँ सामूहिक थी। जिसे एकान्त साधना कह हिन्दू धर्मकी विशेषताकी व्यवस्था दी जाती है, उस एकान्तिक धर्म, साधना और पूजाका उस समय अभाव दीखता है। दुःखवादी बौद्ध धर्ममे वैदिक अवैयक्तिकताके विरुद्ध वैयक्तिकताका विकास दीख पड़ता है। 'बहु जन हिताय बहु जन सुखाय' भ्रमण करनेपर भी भिक्षुकोमे ऐकान्तिक साधना दीख पड़ती है। इतिहास-क्रमसे वैदिक और बौद्ध युगोका वर्गीकरण सुविधा-जनक होनेपर भी वैज्ञानिक नही कहा जा सकता। युगान्त और युगारम्भकी स्पष्ट विभाजक रेखाएँ नही खींची जा सकती। दुखःवादी, नियतिवादी बौद्ध दर्शनका मूल आनन्दवादी मध्यदेशीय आर्योंकी दार्शनिकताके साथ ही साथ स्थित था। सामाजिक, राजनीतिक, बौद्धिक एवं भौगोलिक कारणोसे प्रतिक्रियाके रूपमे बौद्ध दर्शनका स्वरूप स्पष्ट हो गया किन्तु ऐसा समझना भूल है कि काल-क्रमके अनुसार इन भावनाओका जन्म हुआ। बहुत सम्भव है बौद्धोके इस दर्शनपर मगध देशीय अनार्योंका, जिन्हे 'व्रात्य' कहकर याद किया गया है, प्रभाव पड़ा हो। मध्यदेशीय आनन्दवाद जहाँ सामूहिक चेतनाका फल है वहाँ दुःख-

वादमे वैयक्तिकताका समावेश अनेक अशोमें हो जाता है, चाहे दुःख सामाजिक कारणोसे ही क्यो न उत्पन्न हुआ हो ।

वैदिक ऋचाओमे उदात्त, अनुदात्त और स्वरित उच्चारणोका विधान है । यास्कने अपने निरुक्तमे इनकी व्याख्या की है । वैदिक ऋचाएँ सामूहिक रूपमे सम्भवतः वाद्य यंत्रादिके साथ गायी जाती थी । सामवेदमे सगीतपूर्ण पाठके लक्षण स्पष्ट हैं । ऋग्वेद और वेदानुयायी ब्राह्मण और सूत्र-ग्रन्थोमे भी यज्ञो और सस्कारोके अवसरपर वीणा-वादन-गायन और विशिष्ट स्वरोंका विधान है । अपस्तम्भने अपने गृह्-सूत्र (१४-४) मे 'सीमान्तम् संस्कार' के लिए 'गायमिति वीणा गाथिनौ सग्शास्ति' की व्यवस्था दी है । यजुर्वेद-कालमे भी वेदगायकोके अस्तित्वका पता चलता है—

उदकुंभानधिनिधाय दास्या मार्जालीयं
परिनृत्यन्ति पथो निघ्नतीरिदं मधु
गायन्त्योमधु वै देवानां परममन्नाद्यं
परमेवान्नाद्यमवरुंधे पथोनिघ्नन्ति महीयामेवैषु दधति ।।

यजुः सहिता (७-५)

स्त्रियॉ इन गायकोके प्रति अधिक आकृष्ट होती थी—

"अगायन्देवस देवाग् गायत उपावर्तत तस्माद्गायन्तग् स्त्रियः
कामयन्ते कामुका एनग्गूं स्त्रियो भवन्ति ।।"

यजुः सहिता (६-१)

सामवेदका सम्बन्ध सगीतसे है, एवं ऋक् और यजुर्वेदोंमे अर्थका ध्यान अधिक । वेदोमे आर्योंके अनेक वाद्ययंत्रोका वर्णन मिलता है, जैसे:— दुन्दुभी, अदम्बर, भूमि-दुन्दुभि, वनसपति, अघाति, कंधवीणा, वन और

वीणा तथा तुनव, नदि नामक स्वरयंत्र। सामवेदका उपवेद गधर्ववेद है जिसमे नाट्य और सगीतका विवेचन है। सामवेदमे उदात्त और अनुदात्त स्वरोका उल्लेख है, क्रमशः इनके बीचके स्वरोंकी कल्पना हुई। ऋक् प्रतिशाख्यमे प्रथम, द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ स्वरका उल्लेख मिलता है। मद्र और अतिस्वरका भी आगम हुआ। तैत्तिरीय प्रतिशाख्यमें 'क्रुष्ट' का नाम आया है और इस प्रकार नारदीय शिक्षाके अनुसार सामगानके सातस्वरोका संगीत-शास्त्रके सात स्वरोसे सम्बन्ध है—

यस्सामगानां प्रथमस्स वर्णोमध्यमस्स्मृतः।
योऽसौ द्वितीयो गान्धारस्तृतीयस्त्वृषभस्स्मृतः।
चतुर्थष्षड्ज इत्याहुः पञ्चमो धैवतो भवेत्।
षष्ठो निषादो विज्ञेयस्सप्तमः पञ्चमस्स्मृतः।

साम सहिताकी प्रथम ऋचा इस प्रकार गायी जा सकती है—

ओग्न इ। आयाहि इवो इतो या आयि। तो या आ इ।
सा सा स। गा गा ग रि मा म मा मा गा ग। मा मा गा ग।

इस विवेचनका इतना ही अर्थ है कि सामूहिक रूपसे वाद्य-यन्त्रोके साथ वेदोके गाये जानेके प्रमाण मिलते हैं। वेदोको अपौरुषेय कहकर मानवीय तत्त्वोंका निराकरण नही किया जा सकता। वैदिक ऋचाओंके पाठ द्वारा सामूहिक रागात्मिका अनुभूतिका उद्रेक होता था, उनके बहुदेववादके भीतर एकत्व स्थापितकर पुष्ट दार्शनिक आधार देनेका प्रयास बादमे चलकर हुआ। संगीतका यह प्रभाव प्रत्येक साहित्य अथवा जातिके उद्भव-कालमें देखा जाता है। प्राचीन मिस्री अपने उत्सवोमे धार्मिक गीत गाते थे। इलियडके पाठके समय सगीत एवं वाद्य-यन्त्रका साहाय्य अनिवार्य था। चीनी, तातारी यहाँतक कि नीग्रो

जातिके लोग उत्सव अथवा धार्मिक समारोहमे नृत्य और गीतका उपयोग करते हैं। वाद्य-यन्त्रो और संगीतके द्वारा धार्मिक कृत्योका विस्तार सम्भव था, एवं सामूहिक रागात्मिका चेतनाके विकासमे इनसे सहायता मिलती थी। बौद्ध-युग दुःखवादी है अतः व्यक्तिगत आचरणपर अधिक जोर देकर नैतिकताके अधिक आग्रहका प्रदर्शन उसमे होता रहा। निवृत्ति-मार्गका अवलम्बन करनेके कारण नैतिक आचारोका जो निरूपण हुआ उसमे संगीत, नाट्य आदि सामाजिक आचारसे विच्छिन्न हो पडे। बौद्ध और जैन वाङ्मयमे अतः गीत अथवा गेय काव्यकी रचनाको प्रेरणा नहीं मिली। यद्यपि पीछे चलकर महाकाव्योकी परम्परामे बुद्ध-चरित्रका आधार लेकर रचनाएँ हुईं किन्तु इस युगकी सबसे बडी देन वैयक्तिक चेतनाका विकास है। भिक्षुणियाँ सौन्दर्यकी नश्वरताका उल्लेख कर आत्म-निष्ठाका परिचय देती हैं जिसमे गीति-तत्वका उन्मेष मिलता है—

'कालका भमरवण्णसदिसा वेल्लितग्गा मम मुद्धजा अहु,
ते जराय सालवाक सदिसा सच्चवादि वचनं अनञ्ञथा।
काननस्मि वनखण्डचारिणी कोकिला व मधुरं निकूजितं
तं जराय खलितं तहिं तहिं सच्चवादि वचनं अनञ्ञथा।

(थेरी गाथा, २५२-६१)

[भ्रमरावलीके समान सुचिक्कण काले और घुँघराले मेरे अलक-गुच्छ जराके कारण आज सन और वल्कल-जैसे हो गये हैं परिवर्तनका चक्र इसी क्रमसे चलता है। सत्यवादीका यह कथन मिथ्या नहीं।]

इस प्रकार इसमें वैयक्तिक भावनाके विकासके लक्षण दीख पड़ते हैं।

वेद-गानकी विकसित परम्पराके रूपमे ही सङ्गीतके शास्त्रीय विधानकी ओर ध्यान गया। इस प्रकार सङ्गीत और काव्यके स्वरूप-विधानमें

अन्तर आने लगा। ग्रीसमे पिथागोरसने सप्त ग्रहोकी सख्याके आधारपर सङ्गीतके सप्तस्वरोकी कल्पनाकर सङ्गीत-शास्त्रको गणित-शास्त्रकी पद्धतिके अनुकूल बनाना चाहा, एव इस कल्पनाके साथ ग्रहोंकी गतिके सङ्गीतका समन्वय उपस्थित करनेकी चेष्टा की। भारतीय परम्पराके अनुसार नट-राज शङ्कर स्वरोके आदि स्रोत है। डमरू (ढक्का) के शब्दसे ही भाषाके स्वरो और सङ्गीतके 'सुरो'की उत्पत्ति हुई है। हिन्दू शास्त्रकारोके अनुसार वाणीके साथ वीणा—विद्याके साथ सगीत—की परिकल्पना हुई। बौद्ध–और जैन–आगमोके अतिनैतिकतावादका विरोध अवश्यम्भावी था। बौद्धमतकी विकृति एव नव हिन्दू-धर्मके उत्थानके साथ ही सङ्गीत-की पुनः प्रतिष्ठा होती है और इस प्रकार नवीन काव्य और सङ्गीतका उन्मेष भारतीय सास्कृतिक क्षेत्रमे होता है। नाटकोके अन्तर्गत सङ्गीतका जो विधान है, उसके भीतर यही भावना कार्य कर रही थी। भरतने नाट्य-शास्त्रमे नृत्य और वाद्यकी विवेचना की है। नाटकीय गीतोंकी भाषाके सम्बन्धमे जो व्यवस्था है, उससे स्पष्ट होता है कि गीतोंका जातीय जीवनपर विशिष्ट प्रभाव था। दूसरी, प्राकृतके कालसे अपभ्रशोके कालतक गीत और काव्यका पार्थक्य देखा जाता है। हिन्दी-साहित्यके प्रारम्भिक कालमे ही वीर-प्रबन्ध-काव्य और वीर-गीतो (ballads) की परम्परा मिलती है। प्रबन्ध-काव्योमे भी यत्र-तत्र गीतात्मकता बिखरी पड़ी है। वीर-गीत गाथाओका आधार लेकर चले। आल्हा-ऊदल खण्डके प्रारम्भकी सरस्वतीकी प्रार्थना किसी महाकवि-कृत ग्रन्थकी निर्विघ्न समाप्तिके लिए की गयी प्रार्थना जैसी लगती है, बल्कि अनेक अशोमे ग्रीकोके Innovation of the Muse जैसी जान पड़ती है। जगनिकके गीत विभिन्न स्थानीय रूपमें गाये जाते हैं। स्थान-विशेषका इसके स्वरूपपर रङ्ग होता है। इसके साहित्यिक रूपका पता न रहनेपर भी अनेक अशोमें सङ्गीत-तत्व

और काव्यत्वकी इसमें रक्षा हुई है। इसके गीतोपर ग्राम-गीतोकी छापके स्पष्ट लक्षण हैं। वीर-प्रबन्ध-काव्यके मूल वर्ण्य-विषय है—प्रेम और युद्ध। आगे चलकर केवल प्रेमका आधार लेकर गीतोंकी रचना हुई जिसके रचयिताओमे विद्यापति विशिष्ट स्थान रखते है। लोगोने विद्यापतिको जयदेवकी परम्परामे माना, यहाँतक कि उन्हे 'अभिनव' जयदेवकी उपाधितक दे डाली। जयदेवके गीतोके सम्बन्धमे विचार करते समय देखा गया है कि वस्तुतः वे गीत वर्णन-प्रधान और गीति-नाट्य एव गीति काव्यके बीचकी कड़ियाँ है। विद्यापतिमे भी नाटक-तत्त्वका नितान्त अभाव नही है किन्तु गीतोकी स्वतन्त्र परम्पराका आरम्भ विद्यापतिके गीतो द्वारा अवश्य हो जाता है। वर्णन-मोह विद्यापतिमे उतना नहीं जितना जयदेवमे है, एवं शुद्ध रागात्मक आवेशकी अभिव्यक्ति विद्यापतिने की है। मुक्तककी भाँति गीति-काव्यके पदो अथवा पद्योका निरपेक्षमात्र होना ही पर्याप्त नही बल्कि एक रागात्मक आवेशकी सङ्गीतात्मक अभिव्यक्ति भी अपेक्षित है। अपभ्रंश कालके अन्य लेखकोमे इसकी विभिन्नताका आभास मिलता है। विद्यापतिके पद इस अवस्थामे आकर शुद्ध गीतोके उपयुक्त हो जाते है।

जयदेवमे एक ओर जहाँ वर्णनका विशेष आग्रह है, वहाँ विद्यापतिमे रागात्मक आवेशकी अभिव्यक्ति। अतः विद्यापतिके गीत गीति-काव्यके अधिक समीप है। वैष्णव कवियोमे शृङ्गारकी यह भावना आदर्श बनकर उपस्थित हुई जिसे मनोवैज्ञानिकोकी भाषामे उन्नयन (Sublimation) कहते है। सगुण शृङ्गारके मूलमे मानवीय सौन्दर्यका आग्रह है। इस प्रकार मानवीय वृत्तिके प्रकाशके माध्यम और प्रतीकके रूपमे राधा-कृष्णका चित्रण साहित्य-क्षेत्रमे हुआ। राम-काव्यके भीतर आदर्शकी भिन्नताके कारण यह सम्मिलित नही हो सका। साहित्यमे राधाका प्रादुर्भाव अपेक्षा-

कृत आधुनिक है। श्रीमद्भागवतमे राधाका कही उल्लेख नही। ब्रह्म-वैवर्त्त पुराणमे राधाका वर्णन मिलता है। इस प्रकार सस्कृतके ग्रन्थोमे राधाकी चर्चा प्राकृतमे आ जानेके बाद आयी, इससे अनुमान किया जा सकता है कि राधाकी कल्पना लोक-गीतो एव कथाओके आधारपर आयी जो आभीरोकी जातिके साथ आयी। ऐतिहासिकोने कल्पना की है कि राधा आभीरोकी प्रेम-देवी थी और बाल-कृष्णका चरित्र उनसे ही सम्बद्ध था। पीछे चलकर साहित्यिक एवं धार्मिक-क्षेत्रमे इनका प्रवेश हो गया। राधा-कृष्णकी वृत्तियोका पीछे चलकर परम्परागत वर्णन होने लगा एव रूढि (convention) का आग्रह बढ़ता गया। निर्गुण उपासकोमे मानवीय वृत्तिके सहज प्रकाशपर जोर रहा यद्यपि सिद्धान्त-निरूपण एव आत्मा-परमात्माके रूढिगत सम्बन्धकी चर्चामे वैयक्तिक भावनासे अधिक उपदेश-का भाव है। हार्दिक वृत्तिके प्रकाशके कारण जहॉ सूरमे तीव्रता, गम्भीरता, मार्मिकता, विदग्धता है वहॉ तुलसीके गीतोमे नही। तुलसी वैयक्तिकता एव निजी व्यक्तित्वको अलग रखकर सामूहिक भावनाका चित्रण करना चाहते है। जहॉ नैतिकताका तीव्र आग्रह नही रह गया वहॉ तुलसीके गीत भी भावोन्मेषी हो उठे है। तुलसीमे भावुकताका अभाव नही बल्कि सामाजिकताका नैतिक आरोप अधिक है, अतः जहॉ उनका काव्य लोक-सग्रही, जन-कल्याणकारी, धर्ममर्यादाका संरक्षक, पाण्डित्य-एवं विवेकपूर्ण है, वहॉ वैयक्तिक रागात्मक अनुभूतिकी अभिव्यञ्जना करनेवाला कम है। सूरदासने ऐसा बन्धन स्वीकार नही किया। तुलसीकी भॉति प्रबन्धकता सूरने भी स्वीकार की किन्तु तुलसी जहॉ प्रबन्धको खण्डित नहीं होने देते, छोटे-छोटे काव्योमे भी इसका कम-वेश ध्यान रखते है, वहॉ सूर अपनेको धारामे छोड देते है, चाहे वह जहॉ ले जाय। अशोक-वनमे बन्दिनी सीता हनुमानसे कहती है—

कबहूँ, कपि ! राघव आवहिंगे ?
मेरे नयन-चकोर प्रीति-बस राकाससि मुख दिखरावहिंगे ॥
मधुप मराल मोर चातक है, लोचन बहु प्रकार धावहिंगे ।
अङ्ग-अङ्ग छबि भिन्न-भिन्न सुख निरखि-निरखि तहँ-तहँ छावहिंगे ॥
बिरह-अगिनि जरि रही लता ज्यों कृपा-दृष्टि जल पलुटावहिंगे ।
निज-वियोग-दुःख जानि दयानिधि मधुर बचन कहि समुझावहिंगे ॥
रावन-बध रघुनाथ-विमल-जस नारदादि मुनि-जन गावहिंगे ।
यह अभिलाष रैन-दिन मेरे राज-बिभीषन कब पावहिंगे ॥
तुलसीदास प्रभु मोहजनित भ्रम भेद बुद्धि कब बिसरावहिंगे ॥

—गीतावली, सुन्दरकाण्ड [१०]

सीताके इस विरह-निवेदनमे भक्तकी भावना है । आत्मा-परमात्मा-का पार्थक्य मोह-जनित भ्रमके कारण है जिस प्रकार सीता-रामका विरह । क्षणस्थायी रामके प्रति सीताका प्रेम गम्भीर तो है किन्तु अपार्थिवताके कारण चञ्चलता एव विदग्धताका अभाव-सा है । रामके महत्त्वके प्रति उत्सुक सीता मनकी निर्बलता प्रकट नहीं होने देना चाहती । तुलसीदासकी राधामे यह महत्त्व-बोध नहीं, उनमे हृदयकी निर्बलता है, प्रेममे विदग्धता एव तल्लीनता है ।

बिछुरत श्रीब्रजराज आजु इन नयननकी परतीति गई ।
उड़ि न लगे हरि संग सहज तजि, है न गये सखि स्याम मई ।
रूप-रसिक लालची कहावत , सो करनी कछु तौ न भई ॥
साँचेहु क्रूर, कुटिल सित मेचक, बृथा मीन-छवि छीनि लई ।
अब काहे सोचत मोचत जल, समय गये चित सूल नई ॥
तुलसीदास तब अपहुँसे भये जड़, जब पलकनि हठि दगा दई ॥

सीताकी भाँति महत्त्व-बोध नही, इस प्रेममे तल्लीनता है किन्तु विचार-शक्तिका एकदम लोप नही होता। प्रेमाधिक्य इतना नही कि सूरकी गोपियोकी भाँति जीवन भार मालूम पडने लगे, और न यही अवस्था आ गयी है कि 'निस दिन बरसत नयन हमारे' जिससे इन नयननके नीर सखि री, सेज गई घर नाऊँ' और 'चाहति हौं वाही पै चढ़िकै स्याम मिलनको आऊँ' वे कह उठे। एक ओर सूरकी यह विदग्धता जहाँ गोपियोकी ज्ञान-हीनताका परिचय देती है, वहाँ उनकी तल्लीनताका भी। ऐसी अवस्थाके ही लिए कालिदासके यक्षने कहा है—

'कामार्ता हि प्रकृतिकृपणाश्चेतनाचेतनेषु।'

सूरकी गोपियाँ इधर कहती हैः—

अब यह तनहिं राखि का कीजै!
सुन री सखि! स्यामसुन्दर बिन बाँटि विषम-बिस पीजै॥
कै गिरिये गिरिपै चढ़ी सजनी! स्वकर सीस सिव दीजै;
कै दहिये दा दावानल जाइ जमुन धँसि लीजै।
दुसह बिजोग बिरह माधवके कौन दिनहि दीन छीजै;
'सूरदास' प्रीतम बिन राधे सोचि-सोचि मन खीजै।

विरह-भावना इतनी अधिक हो गयी है कि उसके आगे मृत्युकी यन्त्रणा भी अधिक नहीं जान पड़ी। तिल-तिलकर मरना कौन मरे। जीवनका यह मधुर गरल अनुभव-गम्य मात्र है। कबीरमे साहित्यिकता कम, भावावेश, रागात्मक अनुभूतिकी तीव्रता और गम्भीरता अधिक है। धार्मिक भावनात्मकता गीति-काव्यका मात्र आवरण है। इस बालुका-राशिके भीतर मार्मिकताकी अन्तःसलिला सरस्वतीकी निर्मल जल-धारा है,

प्रेम-पूर्ण एवं जीवनके सुख-दुःख, विरह-मिलन, हास-रोदनके स्वादसे पूर्ण, हृदयके सवेगसे उच्छल।

साईं बिन दरद करेजो होय।
दिन नहीं चैन रात नहीं निदिया, कासे कहूँ दुख रोय।
आधी रतियाँ पिछले पहरवॉ, साईं बिना तरस-तरस रही सोय।
कहत कबीर सुनो भाई प्यारे, साईं मिले सुख होय॥

वैयक्तिक हास-रोदनकी सीमाको स्पर्श करती हुई सामाजिक अनुभूतिको वाणी मिली। इस वेदनाको प्रतीकात्मक (symbolic) भी कहा जा सकता है, कारण धार्मिक भावनाका आधार सामाजिक है और साधनाका वैयक्तिक। व्यष्टि और समष्टिका समन्वय यहॉ हमे मिलता है। इस अवस्थामे आकर सङ्गीत और अनुभूतिका समान प्रभाव लक्षित हो रहा है। सूर, तुलसी और मीराके पदोमे शास्त्रीय सङ्गीतका विधान हुआ है। गायक इन पदोको शास्त्रीय रागो और रागिनियोमे गाते हैं, किन्तु इनमेंसे अनेकके राग परिवर्तित कर दिये गये है। सङ्गीतके स्वर और छन्दकी मात्राका समन्वय यहॉ देखनेकी आवश्यकता नही। गायकको स्वरोके सङ्कोच-विस्तारका पूर्ण अवसर राग-रागनियोके भीतर है, किन्तु छन्दके प्रवाहमे यह सम्भव नही। मात्रिक छन्दोमे यह स्वतन्त्रता कुछ अंशोमे है। ह्रस्वको दीर्घ अथवा दीर्घको ह्रस्व करके पढा जा सकता है किन्तु मात्रा-कालका अन्तर एकसे अधिक नहीं हो सकता। तुलसी, सूर आदिने जो रागोंका निर्देश किया है, उसमे अनेक राग नही अपितु रागिनियॉ है। इतना होनेपर भी भाव और साहित्य यहॉ अपने स्वतन्त्र रूपमे प्रतिष्ठित है। रीति-कालमे दोहे, कवित्त और सवैया कवियोके अधिक प्रिय रहे। कवित्त-सवैयाकी गणानुसारिणी गति है और बॅधे शास्त्रीय विधानके भीतर

इनका गायन सम्भव है । अन्तराकी भाँति अनेक सवैया और कवित्तका उपयोग गायक करते है, किन्तु गीति काव्यका विकास रुक-सा गया । सत्य यह है कि इस युगमे आकर हिन्दी-कविता परम्परागत और रूढ हो गयी । वाह्य-रूप वर्णनमे कवियोने जितना श्रम किया उतना आन्तरिक वृत्तियोके उद्घाटनमे नही । विद्यापतिकी शृङ्गारिकता और काम-वासना-का शोध भक्तिकालमे हुआ, रीति कालीन काव्यको शृङ्गारी काव्य कहनेका इतना ही तात्पर्य है कि इसमे नायक-नायिका, उद्दीपन-सञ्चारीका वर्णन अधिक मिलता है । बँधी परिपाटीके भीतर रूप-वर्णन कर कवि सन्तोष-लाभ करता रहा । शृङ्गार-रसका पूर्ण परिपाक भी उसमे कही नही दीख पड़ता। सस्कृत शास्त्रकारोने जिन्हे रीति कहा है, उनका भी इन कविताओ-से सम्बन्ध नही । अलङ्कार और उनके द्वारा चमत्कार उत्पन्न करनेका शौक कवियोको इतना रहा कि हार्दिक वृत्ति, रागात्मक अनुभूतिके प्रकाशनकी समस्या उनके सामने खडी नही हुई । मेरे विचारमे हिन्दी-साहित्यका यह अलङ्कार-युग था कारण अलङ्कारका उदाहरण उपस्थित करनेके लिए ही कवियोने काव्य-रचना की । फलतः गीति-काव्यकी रचनासे काव्य-जगत् वञ्चित रहा । भक्ति-कालकी रचनाओके आदर्शपर कुछ पदोकी रचना हुई किन्तु उनका कोई विशिष्ट स्थान साहित्यिक दृष्टिकोणसे नही । काव्यके इस अधःपतनके बाद ही हिन्दी-साहित्यके आधुनिक कालकी सूचना देनेवाले भारतेन्दुका उदय होता है । भारतेन्दुने प्राचीन परिपाटीके अनुरूप कवि-ताएँ लिखी, फलस्वरूप भक्त कवियोकी परम्परानुसार और कुछ शृङ्गारपरक गीतो अथवा पदोकी रचना की । काव्य-दृष्टिसे इनमे कोई नवीनता नही किन्तु मनोभावोके चित्रणकी पुनर्स्थापनाके रूपमे गीति-काव्यके विकासमे भारतेन्दुका स्थान निश्चित है । स्वतन्त्र पदो अथवा गीतोको रचनाके अतिरिक्त नाटकोमे गेय गीतोके रूपमे इनको रचना मिलती है जिसमे देश-

भक्तिका राग है। यद्यपि शुद्ध गीतियोके अन्तर्गत इनकी गणना नहीं हो सकती किन्तु गीति-काव्यको नयी दिशाकी सूचना मिली। सूर और तुलसीके गीतोंको भाषा कृत्रिम रूपमे साहित्यिक है, तुलसामे सस्कृतका और सूरमे व्रजभाषाके परम्परागत रूपकी रक्षाका प्रबल आग्रह है। तुलसीकी भाषा, कहना चाहिये, अधिक पण्डिताऊ है। फल यह हुआ कि रामायण अपनी कथा, सरलता एवं जीवनके व्यापक रूप-निर्देशनके कारण जितनी जनादृत हुई, उतनी उनकी अन्य रचनाएँ नहीं। विनय-पत्रिका जो भक्ति-निरूपण, सिद्धान्त-दिग्दर्शनके रूपमे रामायणसे श्रेष्ठ है, भाषाके व्यवधानके कारण जन-समादृत नहीं हो सकी। भारतेन्दुमे भाषाकी इस कृत्रिमतासे छुटकारा पानेका प्रयास देखा जाता है। गानेके लिए लावनियाँ और ख्यालकी तथा देश-दशा आदि सम्बन्धी होली या वसन्तकी भी रचना इन्होने की। भारतेन्दुका उदय इस प्रकार नये मार्ग-का सकेत देता है।

पाश्चात्य प्रभाव

अग्रेजी राज्यकी स्थापनाके साथ ही भारतवर्षमे अग्रेजी भाषा और साहित्यकी शिक्षाका क्रम प्रारम्भ हुआ एव क्रमशः भारतीय चिन्ता-धाराको नव-प्रेरणा मिली। जिस क्रमसे अग्रेजीकी साहित्यिक प्रवृत्तियोका विकास हुआ, उससे ध्यान हटकर उनके परिपक्व रूपपर ही जाना स्वाभाविक था। अग्रेजी साहित्यमे गीति-काव्य स्वतन्त्र रूपसे विकसित हो रहा था, फलस्वरूप उसके विकसित रूपका प्रभाव कुछ तो सीधे और कुछ बङ्गलासे होता हुआ हिंदी गीति-काव्यपर पडा। अग्रेजीके विकसित गीति-काव्यपर सामान्य दृष्टिसे विचार कर लेना आवश्यक है; कारण आधुनिक गीति-काव्यकी भूमिकाके रूपमे पाश्चात्य-धाराका प्रभाव अधिक पड़ा है। पहले ही

इसका संकेत दिया जा चुका है कि पाश्चात्य विचार-धाराका उद्गम ग्रीक साहित्य और विशेषकर अरस्तूकी साहित्य सम्बन्धी चिन्तनाएँ है। प्लेटोने अपने आदर्श प्रजातन्त्रसे कवियोके निष्कासनका विधान किया है। सोफोके गीतोका अध्ययन करनेसे पता चलता है कि उस प्रारम्भिक युगके गीतोमे विकासकी सभी सम्भावनाएँ थी। गायकके अन्तरमे उठनेवाली भावनाके साथ सामूहिक रागात्मक वृत्तिका सामञ्जस्य उसमे है। विचारकी गौणता एवं कल्पनाके उद्रेकके लिए भी स्थान है और है उसमे प्रभावके सामञ्जस्यका विधान भी। शब्द और सङ्गीतके समन्वयकी चेष्टा भी है। विकास-क्रममे बीज रूपसे उपस्थित वस्तुओकी विशिष्टता एवं प्रधानताके कारण इसके स्वरूप-विधानमे अन्तर आता गया। वैयक्तिक अन्तर्दर्शनके विशिष्ट आग्रहके कारण गीति-काव्य सामूहिक सस्पर्श छोड समाज एवं वर्ग-विशेषका बनता गया यहाँतक कि आत्म-निष्ठता गीति-काव्यकी अन्यतम कसौटी-सी बन चली। गीति-काव्यके, कल्पना-तत्त्वपर क्रमशः अधिकाधिक जोर दिया जाने लगा और इसे गीति-काव्यका अन्यतम अङ्ग स्वीकार करनेमे किसी प्रकारकी द्विविधा या सङ्कोच नही रह गया। प्रभावकी इकाई (Unity of impression) लम्बे और मिश्रित गीति-काव्योके लिए भी आवश्यक समझी जाने लगी। प्राचीन कालमे गीति-काव्यका सङ्गीतके साथ अन्यतम साहचर्य था बल्कि यह कहना उचित होगा कि सङ्गीत-तत्वको प्रमुखता और भावना एवं विचार-तत्त्वोको गौणता प्राप्त थी। क्रमशः भावो और विचारोको इतनी प्रधानता मिलने लगी कि सङ्गीत ही गौण हो उठा। उत्तरोत्तर सङ्गीत इतना गौण होता गया कि काव्यका लयात्मक—सङ्गीत-संयुक्त नही—होना ही आवश्यक रहा और शब्द-सङ्गीतकी प्रतिष्ठा हुई जिसके अनुसार शब्दोमें अपना सङ्गीत है और शब्दोका समुच्चय विशेष प्रकारके सङ्गीतात्मक प्रभावकी सृष्टि करता है। अंग्रेजी

साहित्यके एलिजावेथ-युग (Elizabethan Age) मे यह प्रवृत्ति लक्षित हुई, जिसमे सङ्गीतात्मकताका आग्रह नही रहा बल्कि लयपर कविका ध्यान रहा। रोमाटिक युगमे इस प्रवृत्तिके दर्शन होते रहे। शैली, कीट्ससे लेकर स्विनबर्नतकमे यह प्रवृत्ति लक्षित होती है। जिसमे भाग्यवादिता एव निराशाकी प्रमुखता है, जिसकी काल्पनिक सामूहिक व्यथाएँ वैयक्तिक सुख-दुःख-प्रकाशनके मार्गमे बाधक थी, जिसमे रागात्मक अनुभूतिकी अभिव्यक्तिके उपयुक्त अवसर न था वैसे ऐंग्लो-सैक्सन युगके गीति-काव्यका—आकस्मिक परिवर्त्तन ईसाई धर्मके लैटिन गीत और फ्रेंच साहित्य द्वारा हुआ। इग्लैण्ड नारमन विजयके पश्चात् गीतोसे भर गया किंतु ये गीत फ्रेंचमे थे। प्रारम्भिक युगमे फ्रेंच-पद्धतिपर ही गीतोकी रचना होती रही। फ्रेंच गीतोका अग्रेज़ीपर सीधा प्रभाव कम पडा। चासर (Chaucer) पर इसके प्रभाव पड़नेके पूर्व ही फ्रेंच-गीत आल्प्स पार इटलीमे पहुँच चुके थे। पेट्रार्क (Petrarch) से इटालियन गीति-काव्यका नवोन्मेष अथवा नव-जागरण प्रारम्भ होता है। सानेट (Sonnet) का वह सिद्धहस्त रचयिता था जिसके स्वरूप विधान-को अग्रेजीमे शेक्सपियर द्वारा लोक-प्रियता प्राप्त हुई। शेक्सपियरके पूर्व इस प्रकारका काव्य बौद्धिकतासे बोझिल अतः रागात्मक अभिव्यक्तिका माध्यम कम रहा। ग्रीक और लैटिनके कवि प्रेमके गीत गाते रहे, किन्तु प्रेमके इस वर्णनमे अनुभूतिके स्थायित्वकी ओर इनका ध्यान न था। जिस प्रकार भारतीय कवि प्रेमको स्थायी, जाग्रत् और दैनन्दिन प्रभाव-बोधक मानता रहा, प्रेमके वैसे व्यापक रूपसे इनका सम्बन्ध अधिक नही रहा अपितु इन्होने प्रेमके क्षणिक आनन्द और अपनी प्रेमिकाके वाह्य सौन्दर्यका चित्रण किया। इनके विचारमे सौन्दर्य शीघ्र नष्ट होनेवाला है—कारण आन्तरिक सौन्दर्य देखनेका इन्होंने प्रयास नही किया—और

मृत्यु सौन्दर्य और द्रष्टामे व्यवधान उपस्थित करने वाली। अंग्रेजी साहित्यका नव-जागरण काल सौन्दर्यकी इस भावनासे ओत-प्रोत है किन्तु आवश्य-कतानुसार कविने इनका शोध कर दिया। नारी, शराब और पुष्पके सौन्दर्यका चिन्तन, कोमल और उदार वस्तुएँ एव भावनागत ऐन्द्रिय प्रभावोका सामञ्जस्य तथा शब्दकी सङ्गीतात्मक शक्तिका अद्भुत् समन्वय इस कालके कवियोमे है। कलात्मक अनुभूतिको सन्तुष्ट करनेवाले गीति-काव्योका अतः जन्म हुआ जिसमे जीवनके हास-अश्रुके क्षणोका मोहक चित्र उपस्थित किया गया।' कल्पनाके विस्तारको स्थान मिला। प्रकृतिके सौन्दर्य एवं उसके प्रभावसे कवि प्रभावित हो अपनी रागात्मक अनुभूतिका आरोप उसपर करने लगा। वर्ड्सवर्थने रहस्यवादीकी भाँति प्रकृतिके अन्तस्तलमें पैठनेकी शिक्षा दी जो परमात्माका अन्यतम निवास स्थल है। 'लिरिकल वेलैड्स'मे उसने गाया—

Of some thing for more deeply interfused,
Whose dwelling is the light of setting suns,
And the round ocean and the living air,
And the blue sky, and in the mind of man·
A motion and a spirit, that impels
All thinking things, all objects of all thought,
And rolls through all things.

परम्परा और रूढिका इतना प्रबल प्रभाव था कि स्वतन्त्र चेतना मर-सी गयी थी अतः इसके प्रति बाइरन, शेली आदिने विद्रोह किया। सौन्दर्य-प्रेमी बाइरनने ऐन्द्रिय अनुभूतिकी तीव्र अभिव्यक्ति की एवं मानव-जीवनकी व्यर्थताके शोक-विह्वल भाव अभिव्यक्त किये। शेलीके अस्पष्ट

आदर्श सुन्दर और आकर्षक थे। उसके काव्यत्वकी आत्माकी पुकार 'एशिया'के गीतमे मिलती है—

"Lamp of Earth! where'rer thou movest
Its dim shapes are clad with brightness,
And the souls to whom thou lovest
Walk upon the winds with lightness,
Till they fail, as I am failing,
Dizzy, lost, yet unbewailing!"

अस्पष्ट आदर्शोंकी अव्यावहारिकता अतः प्रभावहीनताके कारण निराशा-जन्य भावोका उद्गम मिलता है और वह शोकके आकर्षणका वर्णन करता है—

Out sincerest laughter
With some pain is fraught;
Our sweetest songs are those that
tell of saddest thought.

कीट्स्में सौन्दर्यने अपना अन्यतम पुजारी पाया था। सौन्दर्यका महत्त्व, उसके मूर्त्त-विधान एवं सौदर्यिक सामञ्जस्यका चित्र उसने दिया तथा ऐसे चित्रोंके अंकित करनेकी उसकी अभिलाषा उसे सदा बनी रही।

इन गीति-काव्योंके अन्तर्गत एक और भावना कार्य कर रही थी। मम्मटने काव्यको 'कान्ता-सम्मित-उपदेश' कहा है। कला और प्रचारमें इतना ही अन्तर रह जाता है कि प्रचार खुले शब्दोमे अपने मतका ढिण्ढोरा पीट लोगोको अपना मतानुयायी बनाना चाहता है एवं कला अपने मतको ठीक उसी भाँति रखती है जिसके लिए कविने कहा है 'झीन बसन मॅह झलकत काया'। प्रचार जब अपने मतको इसी प्रकार

प्रच्छन्न रूपमे रखता है, कलाकी सज्ञा प्राप्त कर लेता है। कवियोने भी अपने मतका प्रचार किया है यद्यपि उनके मतवादने सौन्दर्यको नष्ट नहीं होने दिया। काव्यत्वका आग्रह इस सौन्दर्यिक प्रभावमे है। वर्ड्सवर्थके निष्कर्ष बौद्धिक एवं रागात्मक अनुभूतिको विजड़ित करनेवाले है और बायरन एव शेली स्वातन्त्र्य-सिद्धान्तके प्रचारमे दत्तचित्त है। इतना होनेपर भी कल्पना-तत्त्वकी प्रधानता रही। कवि प्रातिभ-क्षणोमे नवीन किरणोका आलोक देखता है और अपनी आत्मानुभूतिको वाणी देनेका प्रयास करता रहा। इस प्रकार प्रकृतिने नवीन रूपमे उसे प्रभावित किया। इसके साथ ही छन्द-बन्धनकी मुक्तिका सन्देश भी मिला। छन्दोके नवीन प्रयोग नवीन प्रभाव व्यक्त करनेके लिए इन्होने किये। वर्ड्सवर्थने मिल्टनके समयसे प्रायः त्यक्त 'सानेट'को उसके पूर्ण महत्त्वके साथ उपस्थित किया और उसके बादसे इसकी लोक-प्रियता कभी कम नही हुई। कालिरिजने प्राचीन रोमासोके छन्दोको नवीन स्फूर्ति और सौन्दर्य प्रदान किया। स्पेसरियन स्टाजामे कीट्स और बायरनने नवीन प्रभाव भर दिया। शेलीने अंग्रेजी, फ्रेंच और इटालियनके प्राचीन छन्दोको नवीन सौन्दर्य और प्रभावके साथ उपस्थित किया। प्राचीन छन्दोका नव-विधान इन कवियोने संस्कार एवं परिवर्तन-परिवर्द्धनके द्वारा उपस्थित किया। केवल छन्दोके निर्वाचनमे इनकी स्वतन्त्रता नही बल्कि छन्दोके संस्कार और गठनमे इनकी प्रतिभाका पूर्ण विकास हुआ। विक्टोरियन युगमे रागात्मक अनुभूतिकी गम्भीरता अधिक न रही और साधारण वस्तुओंका प्रवेश हुआ। अति भावुकता (sentimentalism) का प्रभाव अधिक इस युगमे दीख पड़ा। इस युगके प्रतिनिधि कवियोने युग और युगकी समस्याओको व्यापक दृष्टिसे देखने और अपने विश्वास और मतको पुष्ट रूपसे प्रत्यक्ष रखनेका प्रयास किया। आरनल्डने

अपने चतुर्दिक् फैली भौतिक उन्नतिके प्रति अवहेलना प्रकट की। ब्राउनिंग जीवनकी विविधता एव सघर्षमे आनन्द पाता रहा। सत्यकी विजय और महापुरुषोंके जाग्रत् क्षणोके चरित्र-चित्रण एव भाव-प्रकाशनमे उसकी अद्भुत् क्षमता है। इग्लैण्डकी कवि-परम्पराकी भावनाओंको अपने आत्मसात् करनेकी चेष्टा की है। 'टेकनीक'का वह अद्भुत् कलाकार है। अंग्रेजीकी इस उन्नत परम्पराके साथ हिन्दी कवियोंका सम्पर्क होता है। हिन्दीके कवि वर्ड्सवर्थ, शेली और कीट्ससे जितना अधिक प्रभावित है, उतना अधिक और किसीसे नहीं। प्रगतिवादी बननेके पूर्व पन्तके गीतोंमे प्रकृति-दर्शन और जीवनकी सरलताका मोह है, यद्यपि रहस्यात्मकताका यत्र-तत्र संकेत भी मिलता है। चित्रमयी भाषामे कल्पनाके सुन्दर चित्र पन्तजीने खींचे है। सौन्दर्य और उसके आह्लादकारी रूपके वर्णनमे कविका विशेष आग्रह दीख पडता है। सौन्दर्य केवल वाह्य अथवा शरीरी न रहकर अशरीरी अथवा छायात्मक हो गया है। जीवनका सौन्दर्य नवीन रूपसे उन्मेष देता है।

एक ही तो असीम उल्लास
विश्वमे पाता विविधाभास,
तरल जलनिधिमे हरित विलास
शान्त अम्बरमें नील विकास
वही उर-उरमे प्रेमोच्छ्वास,
काव्यमे रस, कुसुमोंमे बास,
अचलतारक पलकोंमे हास,
लोल लहरोंमें लास!
विविध द्रव्योंमें विविध प्रकार
एक ही मर्म मधुर झंकार!

आधुनिक युगके गीतमे सौन्दर्यके प्रति आकर्षण, प्रणय-निवेदन, अतृप्त आकाक्षा, वेदनाकी व्यञ्जना, जीवनके अवसाद-विषाद एवं रहस्यात्मकताका उन्मेष है। प्रसाद जहाँ जीवनको दार्शनिक भूमिकामे रख आनन्दवादकी ओर चलते है, वहाँ महादेवीकी करुण मधुरता जीवनको नवीन मार्मिकताका सन्देश देती है। निरालाका उग्र दर्शन जहाँ जीवनको बौद्धिक रूपमे हलचल देता है, वहाँ पन्तकी सौन्दर्य-भावना हमे भावाकुल बनाती है। प्रसादके गीतोमे प्रातिभ चमत्कार और जागरूक भावुकताके साथ बौद्धिक विकासकी भावना है। शब्द-सौन्दर्य और शब्द-सङ्गीतकी झङ्कार अपरिमित है। प्रेमके मधुर विलास, यौवनके उन्मद सम्भारकी कलात्मक अभिव्यञ्जना है। अतीतकी स्मृतियोका मोहक चित्र 'आँसू'मे अकित है, उसमे जलन है, विषाद है और है उन्माद तथा बेसुधपन। प्रकृतिके मूर्त-विधानमे प्रसादको कम सफलता नही मिली है। सरल शब्दविन्यास द्वारा भावाकुलताकी दशाका चित्र 'बच्चन'के गीतोमे है। महादेवीकी कल्पना इतनी सूक्ष्म हो उठती है कि उसका चित्र साधारणतया पाठकके मानस-चक्षुओके सामने नही उतरता। शब्दोकी झकार समाहित प्रभाव व्यक्त कर मौन हो जाती है। महादेवीके गीतोमे शेली-जैसी अस्पष्टता है। महादेवीके चित्र जहाँ स्पष्ट अथवा अस्पष्ट रेखाओमे बँध पाते है, वहाँ उनकी मधुर पीडा व्यञ्जक कल्पना सङ्गीतके माधुर्यके साथ मिल नवीन लोककी सूचना देती है। महादेवीकी भाव-तन्मयता मीरा-जैसी है किन्तु दार्शनिक आधार भिन्न है। मीरामे ऐन्द्रियताकी जहाँ रेखाएँ स्पष्ट है, वहाँ महादेवी शरीर-धर्म और शारीरिकतासे ऊपर उठ गयी है। केवल शृङ्गार और प्रेम, विरह और मिलनसे ही परिपूर्ण नही बल्कि देश-प्रेम, मानवता-प्रसार, मानवीय दृष्टिकोणमे क्रान्तिके गीत आजके कवि गाते है। हिन्दीके गीति-काव्यका यह बहुमुखी प्रसार अपेक्षाकृत

नवीन है। इस प्रकार उस भूमिपर हम पहुँचते हैं, जहाँ गीति-काव्यके तत्त्वोका विश्लेषण निरूपण आवश्यक हो उठता है। विकास-क्रमकी इस स्थितिमे वैयक्तिक अनुभूतिकी सवेदनशील सङ्गीतात्मक अभिव्यक्ति ही गीति-काव्य है। गीति-काव्यके उद्भव और विकासके सक्षिप्त इतिहास द्वारा गीति-काव्यके इन तत्त्वोकी ओर हमारा ध्यान जाता है—

१. संगीतात्मकता !

२. जीवनके एक पहलूका कलाकारके मनपर पड़नेवाले कल्पना-गत प्रभावका सौन्दर्य-और कला-पूर्ण चित्रण।

३. रागात्मक अनुभूतिकी इकाई और समत्व।

४. अन्तर्दर्शन और आत्म-निष्ठता—सुख-दुःख, राग-द्वेष, आशा-निराशा जिसके आधार हैं।

५. लयात्मक अनुभूति।

६. समाहित प्रभाव।

सङ्गीतात्मकता

काव्य चित्र और सङ्गीतका समन्वित चित्रण है। काव्यका आधार शब्द, अर्थ, चेतना और रसात्मकता है। शब्द एक ओर जहाँ अर्थकी भाव-भूमिपर पाठकको ले जाते है, वहाँ नादके द्वारा श्राव्य मूर्त्त-विधान भी करते हैं। शब्दका महत्त्व उनके द्वारा प्रस्तुत मानसिक चित्र और ज्ञापित वस्तुके सामञ्जस्यमे है। जो वस्तु देखी नही गयी है उसका चित्र जो मानस-चक्षुओंके सामने उतरता है, वह काल्पनिक है और अनेक अंशोमे वास्तविकतासे भिन्न ; कारण ज्ञात वस्तुओके आधारपर ही उसकी कल्पना हुई है। मानव-विकासके आदिक्रममे अभिव्यक्ति नादात्मक रही। वैयक्तिक एवं सामूहिक अभिव्यक्तिका यह नादात्मक आधार पीछे चलकर

दो शाखाओं—स्वर और नाद—मे विभक्त हो गया। नादकी प्रधानता इस प्रकार प्रदर्शित की गयी है—

नादेन व्यज्यते वर्णः पदं वर्णात्पदाद्वचः।
वचस्ते व्यवहारोऽयं नादाधीनं मतं जगत्॥

भारतीय वाङ्मयमे नाद और ध्वनिकी उत्पत्तिका जो प्रतीकात्मक वणन मिलता है, उससे इस कथनकी पुष्टि होती है। नन्दिकेश्वरकारिकामें ध्वनिकी उत्पत्तिका वर्णन इस प्रकार मिलता है :—

नृत्यावसाने नटराजराजो ननाद ढक्कां नवपञ्चवारम्
उद्धर्तुकामस्सनकादिसिद्धानेतद्विमर्शे शिवसूत्रजालम्।

इसी प्रकार माहेश्वर सूत्रका उद्भव नटराज (महेश्वर) के नृत्योपरान्त चौदह बार ढक्का अथवा डमरूके बजानेसे हुआ और इस चौदह सूत्रोंकी उत्पत्ति हुई।

१. अइउ ण्	८. झभ ञ्
२. ऋऌ क्	९. घढध ष्
३. ए ओ ङ	१०. जबगडद श्
४. ऐ औ च्	११. खफछठथचटत व्
५. हयवर ट्	१२. कप य्
६. ल ण्	१३. शषस र्
७. ञमङणन म्	१४. हल्

रुद्र डमरूद्भव-सूत्र-विवरणमे शङ्कर नादके पिता एवं व्याकरण और सङ्गीत शास्त्रके जन्मदाता माने गये हैं। सृष्टि गतिशील है, इसकी गति नियमबद्ध अतः लय-ताल-अनुबद्ध है। प्रभामण्डलके द्वारा सृष्टिकी एवं

शङ्करकी इस ताण्डव नृत्य—सृष्टिक लयात्मक गीतिका प्रतीक उपस्थित किया गय है। नादका माध्यम स्वीकारकर सङ्गीत सदासे मानव-मनको आकृष्ट करता रहा है। भाषाका स्वरूप विभिन्न होनेपर भी रागात्मक अभिव्यक्ति-का मूल साधन प्रारम्भिक कालमें सङ्गीत ही था। प्राचीन धर्मोकी धार्मिक क्रियाओंमें सङ्गीतकी पूर्ण प्रतिष्ठा है। सामगानके सात स्वरोंका क्लासिकल (संस्कृत) सङ्गीतके सात स्वरोंके साथ सम्बन्ध नारदीय शिक्षामें दिख-लाया गया है :—

यस्सामगानां प्रथमस्स वेणोर्मध्यमस्स्मृतः।
योऽसौ द्वितीयो गान्धारस्तृतीयस्त्वृषभस्स्मृतः।
चतुर्थष्षड्ज इत्याहुः पञ्चमो धैवतो भवेत्।
षष्ठो निषादो विज्ञेयस्सप्तमः पञ्चमस्स्मृतः॥

सामगान	संस्कृत सङ्गीत
स्वर (१)	मध्यम (म)
,, (२)	गान्धार (ग)
,, (३)	ऋषभ (रि)
,, (४)	
,, (५)	धैवत (ध)
,, (६)	निषाद (नि)
,, (७)	पञ्चम (प)

ध्वनिके मूलकी कल्पना नादात्मक अभिव्यक्तिकी सूचना देती है—

षड्जं मयूरो वदति गावो रम्भति चर्षभम्
अजाविके तु गान्धारं क्रौञ्चो वदति मध्यमम्

पुष्पसाधारणे काले कोकिलो वक्ति पञ्चमम्
अश्वस्तु धैवतं वक्ति निषादं वक्ति कुञ्जरः ॥

एक दूसरेने कहा है—

स्वर 'षड्ज' को केकी कहें, पुनि 'ऋषभ' चातक जानिये ।
'गन्धार' मानहुँ छाग बोलत, 'क्रौञ्च' 'मध्यम' मानिये ॥
स्वर 'कोकिला' 'पञ्चम' कहें, ध्वनि होत 'धैवत' दादुरैं ।
मातङ्ग गरज निषादको सुनि, चतुर जन सब आदरैं ॥

ऊपरके श्लोकमें ऋषभको गायका रम्भाना कहा गया है ।

ध्वनिके इस प्रभावको व्याकरणने 'स्फोट' और काव्यने 'अभिधा-लक्षणा-व्यञ्जना'—मूला मानकर नवीन सिद्धान्तोंका प्रतिपादन किया । तन्त्र ग्रन्थोंमे सङ्गीतके इस महत्त्वका पूर्ण वर्णन मिलता है । यामलाष्टकतन्त्रमे लिखा है :—

गान्धर्ववेदः षट्त्रिंशत्सहस्रग्रन्थसम्मितः
यत्र सप्तस्वरोत्पत्तिकथनं परिकीर्त्यते ।
वीणातन्त्रं कलातन्त्रं रागतन्त्रमनुत्तमम्
मिश्रतन्त्रं तालतन्त्रं गीतिकात्तन्त्रमेव च ।
लासिकोल्लासिकातन्त्रं मेलतन्त्रं महत्तरम्
जातिग्रहलयस्थानं मार्गाङ्गप्रक्रिया क्रिया ।
कालज्ञानं वाद्यावल्लीत्रिभिन्नाध्याय एव च
तुरङ्गगतिसारङ्गसिंहलीलाविजृम्भणम् ।
अङ्गहारप्रविक्षेपाध्यायस्संक्षोभणक्रियाः
एवमादीनि गान्धर्ववेदे सन्ति सहस्रशः ॥

छन्दशास्त्रने 'वर्णप्रस्तार' के रूपमे संगीतका ध्वनि-तत्त्व स्वीकार किया है :—

दाम्पत्यवृत्त—

कालविशेषे कोकिल उच्चैः कूजति काकस्सन्तमेव ।
कूजन्तं पिकमालोक्यार्याः सन्तुष्यन्ति न काकं दृष्ट्वा ॥

सङ्गीतके इस व्यापक प्रभावका वर्णन साहित्यमे कम नही—

The man that hath no music in him
Nor is moved with concord of sweet sounds,
Is fit for treasons, stratagem and spoils
The motions of his spirit are dull as nigtht:

शेक्सपीयर : मरचेण्ट आफ वेनिस

जब मुरली हरि अधर धरत
खग मोहे मृगयूथ भुलाने निरखि मदन छवि छरत ।
पसु मोहे सुरभीहु थकीं तृण दंतहि टेक रहत
शुक सनकादि सकल मन मोहे ध्यानिउ ध्यान बहत ।—सूर
किती न गोकुल कुलबधू, काहि न केहि सीख दीन ।
कौने तजी न कुल गली ह्वै मुरली सुर लीन ॥—विहारी
सुन पड़ा ज्यों स्वर वेणुनिनादका सकल ग्राम समुत्सुक हो उठा
हृदय-यन्त्र निनादित हो गया तुरत ही अनियन्त्रित भावसे
वयवती युवती बहु बालिका सकल बालक वृद्ध वयस्क भी
विवशसे निकले निज गेहसे स्वदृगका दुख मोचनके लिए ।

—हरिऔध

भारतीय काव्य सङ्गीतका साहचर्य लेकर चला । काव्य और सङ्गीत-का शास्त्रीय विकास स्वतन्त्र रूपमे होता रहा, फलतः काव्य काव्यत्त्वको

और सङ्गीत सङ्गीत-तत्त्वके शास्त्रीकरणमे लगे रहे, इस प्रकार सङ्गीत और काव्य निज-कृत कृत्रिम बन्धनोमे बँधते हुए लोक-भावनासे दूर पड़ते गये। किसी भी नयी धाराका प्रारम्भ आकस्मिक नही होता। युग-विभाजनकी रेखाएँ भी स्पष्ट नही हो सकती। एक धाराके अन्तके बहुत पहले नयी धाराका बीजारोपण हो चुका रहता है अथच् प्राचीन परम्परा ही नवीन रूप धारणकर सामने आती है। गेय काव्य और गीत काव्यके पारस्परिक सम्बन्धकी चर्चा अन्यत्र की गयी है, यहाँ इतना ही कहना अलम् होगा कि लोकप्रचलित, शास्त्रीय सङ्गीत-कलाके विरोधी, स्वाभाविक लय-तान समन्वित, लोक-गीतोके काव्यात्मक रूपका विकास गीति-काव्यका आधार बना।

अरे अरे श्यामा चिरइया झरोखवै मति बोलहु
मोरी चिरई ! अरी मोरी चिरई ! सिरकी भीतर बनिजरवा,
जैगाइ लाइ आवउ, मनाइ लइ आवउ॥

सहज, स्वाभाविक गीत-धाराका जो आग्रह है उसमे अतल-स्पर्शिनी क्षमता है, गायकोके शास्त्रीय विधान द्वारा अलकृत नाद-विधान और भावाभाव नही। सगीत प्रारम्भिक अवस्थामे जहाँ मानवीय हर्ष-उल्लास अश्रु-रोदनकी अभिव्यक्ति था, वहाँ शास्त्रीय बनकर, अनेक कृत्रिम बन्धनोमे बँध सामूहिकता एव मानव-वृत्तियोका आधार खो बैठा। संगीत सस्कार एव शिक्षाका आधार ग्रहण कर वर्ग-विशेषका अतः शास्त्रीय बन गया। गीति-काव्यका प्रारम्भिक युग सम्भवतः इसी मुक्त सङ्गीतका आधार लेकर चला। कबीरके पदोमे इसी मुक्त सङ्गीतकी धारा है, स्वच्छन्द और निर्बन्ध। कबीरके गीतोंका सौन्दर्य उसके संगीतमे नही बल्कि भावात्मकतामे है। संगीत वहाँ केवल रागात्मक आवेशके उन्मेषके

लिए है भावको मार्ग दिखलानेके लिए। सङ्गीत गौण है, भाव प्रमुख। कबीरके गीतोकी सरसता मीराकी तल्लीनतामे है। सङ्गीतका अनुबन्ध स्वीकार करनेपर भी जो मार्मिकता, स्नेह-पिच्छल रस-धारा है, उसका समाहित प्रभाव मानवीय वृत्तिपर पड़े बिना नहीं रह सकता। कबीरके गीतोमे काव्यत्व—शास्त्रीय अर्थमे—कम है और मीराने भी अपने काव्यको अलकृत करनेका प्रयास नहीं किया। जो निश्छलता कबीरके मार्मिक उद्‌गारोमे है, उसकी पूर्ण परिणति मीरामे है क्योकि कबीरकी सरलता बुद्धिमूलक है और मीराकी भावाकुलता मिश्रित। मीराकी प्रेम-पीडा, भावोन्माद, मिलनोत्कण्ठा, आत्म-समर्पण, आत्म-विस्मृति अनुभूतिकी ठोस भूमि पार लोकोत्तर हो उठी है। सहजानुभूतिके क्षणोमे मीरा गा उठती है:—

जो मैं ऐसा जानती, प्रेम किये दुख होय।
नगर ढिंढोरा पीटती, प्रेम न कीजै कोय॥

गीति-काव्य और लोक-गीतके सम्पर्कका उदाहरण इनमे मिलता है—

कागा नैन निकाल दूँ, पिया पास ले जाय।
पहिले दरस दिखायकै, पीछे लीजौ खाय॥

—भोजपुरी ग्राम गीत

कागा नैन निकारके, ले जा पीके द्वार।
पहले दरस दिखायके, पीछे लीजौ खाय॥

—मीरा

कागा सब तन खाइयो, चुन-चुन खइयो मास।
दो नयना मत खाइयो, पिया मिलनकी आस॥

—ग्राम गीत

कागा सब तन खाइयो, चुन-चुन खैयो मास ।
दो नयना मत खाइयो, पिय देखनकी आस ॥

-मीरा

ग्राम-बधू आकाशमे उडते मेघ-मालाको देख कहती है:—

कारिक पियरि बदरिया झिमिक दैव बरसहु,
बदरी जाइ बरसहु उही देस जहाँ पिय कोड़ करै ।
भीजैं आखर-बाखर तम्बुआ कनतिया,
अरै भितराँसे हुलसै करेज समुझि घर आवै ॥

—ग्राम गीत

[काली प्यारी बदली रिमझिम कर बरसो, बदली उस देशमे जाकर बरसो जहाँ मेरे प्रिय केलि कर रहे है । घर-द्वार, तम्बू-कनात आदि गीले हो उठे । कलेजेमे उल्लास जग जाय और समझकर वे घर लौट आवे ।]

पद्मावतमे नागमती कहती है—

नहि पावस ओहि देसरा, नहि हेवन्त बसन्त ।
ना कोकिल ना पपीहरा, जेहि सुनि आवै कन्त ॥

—जायसी

अवस्थाका मार्मिकतापूर्ण स्वाभाविक वर्णन है । शायद इसी प्रकार-के गीतोंके मेघोका ध्यान कालिदासको मेघदूतकी रचनाके समय था । सूर और तुलसीके गीतोमे यह स्वाभाविकता नहीं । सूरमे अनुभूतिका भावात्मक वर्णन है । रामचन्द्र शुक्लके कथनानुसार भले गोपियोका विरह-

निवेदन बैठे-ठालोका व्यापार हो, किन्तु उसकी मार्मिकतामे किसीको सन्देह नही हो सकता। इतना मानना पड़ेगा कि सूरमे काव्यत्वकी प्रतिष्ठा और सङ्गीत-तत्त्वकी रक्षाका आग्रह है। तुलसीकी उ स्कृत-प्रियताने इस भावनाको और अधिक प्रभावित किया। अलङ्कार-विधान जहॉ अनुभूतिका चित्र उपस्थित कर उसे रसास्वादनके उपयोगी बनाता है, वहॉ कृत्रिमताका आरोपकर सहज अनुभूतिको सीमित भी करता है। अनेक स्थानोमे अलङ्कारोका मोह अनुभूतिके अभाव अथवा छिछलेपनकी सूचना देता है। तुलसीके काव्यत्वके आग्रहके भीतर अनुभूतिकी अपेक्षाकृत कम गहराईकी सूचना मिलती है और सङ्गीतके शास्त्रीय विधान उसकी पूर्त्तिके लक्षण है, यद्यपि इनका शास्त्रीय निर्वाह शायद सर्वत्र सम्भव नही हो सका है। सङ्गीत और काव्यत्वका सम्यक् निर्वाह किया गया है। सहज स्वाभाविक सङ्गीतके स्थानमे शास्त्रीय सगीत-विधानके कारण लोक-भावनाके साथ सामञ्जस्यका वह अवसर नही रहता। तुलसीके भक्ति-मूलक गीत लोक-कण्ठमे बसते है किन्तु प्रेम और विरहके गीतोके रूपमे मीरा और सूरके पद ही अधिक आदृत है। अनुभूतिके इसी तत्त्वके लिए मीरने कहा है—

'कब और गजल कहता मैं इस जमींमें लेकिन,
परदेमें मुझे अपना सुनाना था अहवाल।'

सङ्गीतकी शास्त्रीय राग-रागनियोकी संख्यामें नवीन राग-रागनियोका समावेश यथासमय होता रहा। तानसेनने कई नवीन राग-रागनियोकी योजना की किन्तु चिन्ता-धारा और प्रवृत्ति एक ही रही। परिवर्तनका क्रम अङ्गरेजी सभ्यता और सस्कृतिके साथ ही कलात्मक भावनाके कारण आया। भारतीय और पाश्चात्य सङ्गीत-पद्धतिमे आकाश-पातालका अन्तर

है। भारतीय सङ्गीत-चेतनाका मूलाधार लय ओर माधुर्य है और पाश्चात्य सगीतका तालैक्य (harmony)। प्रथममे रागोके स्वरोका सम्बन्ध निश्चित है और पाश्चात्य सङ्गीतका विधान अनेक सन्धानोमे होता है। भारतीय सङ्गीतकी स्वरमैत्रीमे जो वर्जित स्वर हैं, उनका प्रयोग भी पाश्चात्य सङ्गीतमे होता है। भारतीय सङ्गीत-पद्धतिमे भाव-प्रकाशनके लिए अधिक अवसर नही था किन्तु स्वरोकी स्वतन्त्रता और मैत्रीके कारण भावना-प्रसारका अवकाश अग्रेजी प्रणालीमे है। भारतीय राग-पद्धतिके भीतर लयकी समानता और एक ही 'मूड' की अभिव्यक्तिका विधान है, उसमे विभिन्नताकी गुञ्जायश नही। पाश्चात्य संगीतमे सम्पूर्ण गीतके सन्तुलित लयात्मक प्रभावका आग्रह है। भारतीय स्वर-मैत्रीमे इसलिए गानेका समय, रागोके चित्र और उनकी रागात्मक अभिव्यक्तिका स्वरूप निर्धारित है, उसमे किसी प्रकारका परिवर्तन नही हो सकता। राग, ताल, लय और स्वरमैत्रीका विधान परम्परागत है और उसमे अन्तर नही आ सकता। कलाकारको इस प्रकारकी स्वतन्त्रता नही। पाश्चात्य कलाकार स्वर-मैत्रीका निर्माता है अतः वह स्वरैक्यका अपना विधान खडा करता है, कलाकारको नवीनताके प्रयोगके लिए अवसर वहॉके सगीतमे है अतः स्वर-मैत्रीके समाहित प्रभावकी अभिलाषा कलाकार रखता है। भारतीय सङ्गीतमे गमक, श्रुति और मूर्च्छनाकी अपेक्षा है। भारतीय सङ्गीत जहॉ पूर्णता (accuracy)और निर्वाह (execution)पर जोर देता है वहॉ पाश्चात्य सङ्गीत नाद (tone) और (timbre) स्वर-कम्पनपर। भारतीय पद्धतिमें सङ्गीतके प्रभावका निश्चय उसके द्वारा उद्भूत रागात्मक वृत्तिसे नही होता बल्कि उसकी पूर्णता और प्रभविष्णुताके प्रमाणके लिए नियमोका अपरिवर्तनीय परिपालन ही यथेष्ट और आवश्यक समझा जाता है। रवीन्द्रनाथ ठाकुरने पाश्चात्य और भारतीय सङ्गीतकी तुलनामे कहा है—

"मुझे ज्ञात होता है कि भारतीय सङ्गीत धार्मिक व्याख्यासे परिपूर्ण मानवी अनुभवसे, दैनन्दिन अनुभूतिसे अधिक सम्बन्ध रखता है। सङ्गीतका आध्यात्मिक मूल्य है। यह दैनन्दिन घटनाओंसे आत्माको मुक्त करता है और आत्मा एव परमात्माके सम्बन्धका गीत गाता है। दिनका ससार पाश्चात्य सगीतकी भॉति है जिसमे तालैक्यका निरन्तर प्रवाह चल रहा है जो स्वर-मैत्री और स्वर-भङ्ग तथा असम्बद्ध अशोका समूह है और रात्रिकालीन ससार भारतीय सगीत है, एक शुद्ध, गम्भीर और कोमल राग। दोनो हमे प्रभावित करते है तद्यपि दोनोकी आत्मामे विरोधमूलक है। किन्तु कोई चारा नहीं। प्रकृतिका मूल दिन और रात, एकत्व और अनेकत्व, अनन्त और सान्त मे विभक्त है। हम भारतीय रात्रिके साम्राज्यमे वास करते है। हमलोग एकत्व और अनन्तकी भावनासे आविष्ट है। हमारा सगीत श्रोताको दिन-दिनके मानवीय सुख-दुःखसे दूर हटाकर विश्रान्ति और त्याग, जो सृष्टिका मूल है, की ओर ले जाता है और पाश्चात्य सगीत मानवीय हर्ष-शोकके उत्थान-पतनके विभिन्न नृत्यकी ओर उन्मुख करता है।"

भारतीय सगीतको जाति, राग और रागिनीमे विभक्त करनेका आधार उनकी बनावट (structure) था। ठाटकी अनिवार्यताके रूपमे लयका सकेत है और उसका विरोध अशास्त्रीय माना जाता है, यद्यपि एक ही ठाटके भीतर समान रागोके मिश्रणका विधान है। ध्वन्यात्मक शक्तिकी परिसीमाके कारण ऐसी स्वतन्त्रता मिली, इसके साथ ही कृत्रिम बन्धनोके तिरस्कारके साथ सहजानुभूति-प्रकाश और रागात्मक सवेदनाकी स्वीकारोक्ति थी। दरबारी कानडा और बहारके ठाटोका अन्तर पाटनेकी चेष्टा 'तान' द्वारा हुई। शास्त्रकारोको पीछे चलकर वास्तविकताका ज्ञान हुआ और इस प्रकारके मिश्रणकी छूट गायकोको मिली। दरबारके

प्रभावमे आकर गायकोके झिझिटकम्बोज, गौड-सारङ्ग, नट-केदार, पुरिया-धनश्रीके मिश्रण लोक-प्रिय हुए। रवीन्द्रनाथके प्रभावमे आकर नये मिश्रणका प्रचार बङ्गला सगीतमे हुआ। शास्त्रीय सगीतके साथ ही 'देशी'-का अस्तित्व बना रहा। यह लोक-गीतोसे यथासम्भव अधिक प्रभावित रहा। सगीतकी पूर्ण परिणति शब्द और अर्थके विस्तारमे थी। जीवन, और उसकी वास्तविकता, प्रेम और पुलकके प्रति जागरूकता और चेतना इसमे थी। इसमे वैयक्तिक और सामूहिक प्रेरणाका विकास था। इसके साथ ही इन गीतोमे जीवनका दर्शन समाहित था जो ठाकुरीय मनोदशाके अधिक अनुकूल था अतः भावावेश और अर्थका उन्मेष नवीन सगीत-धाराके साथ उनके गीतोमे हुआ। पश्चिमसे आयी हुई संगीतात्मक चेतना और भारतीय वैशिष्ट्यका मिलन हुआ। प्राचीन परम्पराके शास्त्रीय सविधानके अन्तर्गत भी रागात्मक आवेशका सन्निवेश हुआ। टोडी और मल्हारमे गम्भीर रागात्मक अनुभूतिकी अभिव्यक्ति, और कम्बोज और पीलमे कुछ चलते गीत आये किन्तु भाव और अर्थकी भूमि लेकर। प्रसादकी सगीत-चेतनाने लय-प्रसार और राग-विस्तारके भीतर अर्थभूमि की प्रतिष्ठा की। यहाँ काव्य और सगीतके सन्तुलनकी चेष्टा है। प्रसादके गीत शायद सगीतके शास्त्रीय विधानकी कसौटीपर कसे जानेपर शुद्ध नही उतरे किन्तु भाव-प्रसारकी सामर्थ्य उनमे अधिक है। रागात्मक अनुभूतिके विशिष्ट प्रभावको 'मूड' के साथ लयात्मक आवेश देनेकी चेष्टा प्रसादने की है। पाश्चात्य सगीत-धाराका प्रभाव उनपर नही पड़ा है। 'चन्द्रगुप्त' नाटकमे सुनासिनी गाती—

तुम कनक किरणके अन्तरालमें
लुक-छिपकर चलते हो क्यो ?

नत-मस्तक गर्व वहन करते
यौवनके घन रसकन ढरते
लाज भरे सौन्दर्य ! बता दो
मौन बने रहते हो क्यो ?

अधरोंके मधुर कगारोंमें
कल-कल ध्वनिकी गुञ्जारोंमें
मधु सरिता-सी यह हँसी तरल
अपनी पीते रहते हो क्यों ?

इस गीतमे लाज-भरे सौन्दर्यका चित्र है। लाज-भरा सौन्दर्य इन पक्तियोमे मूर्त्तिमान हो उठा है। सौन्दर्य कनक-रेखा-सा उज्ज्वल और प्रकाशमान है किन्तु यह सौन्दर्य खुलकर आविष्ट नही कर पाता, बल्कि इस सौन्दर्य ने लज्जा-मिश्रित लालिमाका बन्धन स्वीकार कर लिया है। मधुर स्मित रेखाओमे अभिव्यक्त लाज-भरा सौन्दर्य अपने-आपमे मग्न और बेसुध है। लज्जाभारावनत नवोढा किशोरी जैसा चित्रण है यहाँ। कुछ अशोमे कल्पनाके आग्रहके कारण रेखाएँ सुस्पष्ट और दृढ़ नही है फिर भी चित्रको स्पष्ट करनेवाले सकेत पर्याप्त मात्रामे है। कवि यहाँ पूर्ण चित्र नही देता, उसका कार्य अनेक अशोमे रेखा-चित्रकारकी भाँति है, जो कुछ रेखाओके द्वारा ही भावनाकी अभिव्यञ्जना करता है। लाज भरे सौन्दर्यके मौनके साथ कलकल ध्वनिकी गुञ्जारवाली मधु-सरितासे साम्य खोजनेके लिए कल्पनाको स्वतंत्र छोडनेको वाध्य होना पड़ता है, फिर भी सौन्दर्यका यह अद्वितीय चित्र है। इसके साथ ही शास्त्रीय संगीतकी रक्षाका प्रयास भी है। कविने स्वय जो स्वर-लिपि दी है, वह चन्द्रगुप्त नाटकके परिशिष्ट भागसे दी जाती है:—

[खम्माच—तीन ताल]

स्थायी

×	२	०	३
	रे ग	स रे स म	ग ग ग —
	तु म	क न क कि	र ण के ऽ
म — प प	— प म ग	म म प प	प ध सं सं
अ ऽ न्त रा	ऽ ल से ऽ	लु क छि प	क र च ल
नि ध प म	ग —		
ते ऽ हो ऽ	क्यों ऽ		

अन्तरा

×	२	०	३
	ग म	ध — ध ध	ध — ध ध
	न त	म ऽ स्त क	ग ऽ र्व व
ध नि ध नि	प — ग —	म म प —	प ध सं ध सं
ह न क र	ते ऽ यौ ऽ	व न के ऽ	घ न र स सं
नि ध प म	ग —		
क न ढ र	ते ऽ		

[स्वरके आगेकी बेड़ी पाई '—' और अक्षरके आगेके अवग्रह 'ऽ' दीर्घ-मात्रा-कालके सूचक है। × समका चिह्न, अङ्क तालका सूचक और ० खालीका द्योतक है, एव विभाजन खडी लम्बी रेखाओसे दिखाया गया है।]

प्रसादजीके इस गीतमे एक बड़ी विशेषता है कि अन्य गीतोंमें

मात्रा-कालकी पूर्त्तिके लिए गायकको एक ही वर्णके लिए दो-दो तीन-तीन मात्राओकी कल्पना करनी पडती है—आलापसे यहॉ तात्पर्य नही है—वहॉ प्रसादके गीतोमे ऐसी स्वतन्त्रता नही ली गयी है, छन्दके मात्रा-काल और गीतके मात्रा-कालमे अन्तर नही आया है। गीति-काव्यका अतः निखरा रूप हमे मिलता है, भाव-गाम्भीर्य, कल्पनाका मूर्त्त-विधान, अनुभूतिकी इकाई एव विस्तारके साथ सगीतका यहॉ पूर्ण सामञ्जस्य है एव सगीत और छन्दका लयात्मक मात्रा-काल समान है। अग्रेजी पद्धतिपर इसका निरूपण करनेपर इसकी सारी कोमलता नष्ट हो जाती है। गीति-काव्यकी संगीत धारापर विचार करते समय खडी बोलीकी प्रवृत्तिपर थोडा विचार करना आवश्यक होगा। खडी बोलीमे आकर छन्दकी लयात्मक गति कृत्रिम रूपसे बॅध गयी। छन्दोके मात्रिक होनेके कारण स्वर-प्रसार-का सुयोग छन्दकी गतिके भीतर नही रहा, सगीतके द्वारा चाहे उस बन्धनमे शिथिलता लानेकी चेष्टा जितनी की जाय। फिर उच्चारणके नियमोकी कठोरता भी साथ थी। बॅगला और हिन्दीके उच्चारण और छन्द-गतिकी भिन्नताके कारण स्वर-मैत्री द्वारा कोमलता-सञ्चारका जो अवसर बॅगलाको था वह हिन्दीमे नही। सस्कृत रूपोकी शुद्धता स्वीकार कर हिन्दी छन्दोके स्वरैक्यमे कठिनता उपस्थित हुई। सस्कृतके छन्दोमे समास और सन्धिके नियमके कारण शब्द निजत्व खो सामूहिक सगीतात्म-कताके भीतर प्रसार पा जाते है किन्तु हिन्दीमे ऐसा हो नहीं पाता। एक ओर छन्द और भाषाकी प्रतिभामे वैषम्य होनेके कारण जहॉ कुछ कठिनाइयॉ उपस्थित हुई वहॉ हिन्दीके स्वाभाविक सगीत और छन्दकी गति मात्रिक अनुबन्धपर चलनेके कारण मेल, आसानीसे हो सकता था। मात्रिक छन्दमे लघु-गुरुके उच्चारणमे जितना काल लगता है अथवा जितना विस्तार मिलता है उतना स्वाभाविक उच्चारणमे भी। सगीत और काव्य-

मे संगीत-तत्त्व स्वरका आधार लेकर चलता है किन्तु अर्थाभिव्यक्तिके लिए काव्य अभिव्यञ्जनका आधार ग्रहण करता है। सगीतके शास्त्रीय विधान एवं रवीन्द्र-कृत भारतीय एव पाश्चात्य पद्धतिके मेल द्वारा उपस्थित सगीतात्मक पद्धतिपर निरालाने प्रयोग किया। निरालाके निर्भीक व्यक्तित्व-जैसा व्यक्तित्व हिन्दी काव्य-जगत्मे नही, परम्पराके पोषक इससे भयाक्रान्त कम नही हुए। निरालाने गीतिकाकी भूमिकामे लिखा है—

134895

" यद्यपि मुझे पश्चिमके किसी प्रसिद्ध देशमे अधिक कालतक रहनेका सुयोग नही मिला, फिर भी मै कलकत्ता और बङ्गालमे उम्रके बत्तीस सालतक रह चुका हूँ और कलकत्तामे आधुनिक भावनाके किसी आकारसे अपरिचित रहनेकी किसीके लिए वजह न होगी अगर वह अपने कामसे ही काम न रखकर परिचय भी करना चाहता है। चूँकि बचपनमे औरोकी तरह मै भी निष्काम था, इसलिए सब प्रकारके सौन्दर्योंको देखने और उनसे परिचित होनेके सिवा मेरे अन्दर दूसरी कोई प्रेरणा ही न उठती थी। क्रमशः ये संस्कार बन गये। जिस तरह घरके अहातेमे घरके अवधी, बैसवाडी या कनौजिया सस्कार तैयार हो रहे थे, उसी तरह बाहर, बाहरी सस्कारके। अन्तमे वे मेरे अपने संस्कार बन गये। **वे मेरे साहित्यमें प्रतिफलित हुए, जिनसे हिन्दी-साहित्य और हिन्दू-संस्कृतिको मेरे साहित्यके समझदारोके कथनानुसार गहरा धक्का पहुँचा।**" प्रसादके गीतमे जैसा हमने देखा है छन्द और सङ्गीतके मात्रिक विधानमे समत्व अधिक है। निरालाने इस कठोरतासे छन्द और सङ्गीतका पिण्ड छुडाया और शुद्ध सङ्गीतके ढङ्गपर मात्राओके विस्तारका अवसर गायकोको दिया। दादरामे छः मात्राओकी ताल पड़ती है। निरालाका एक गीत है—

—"सखि, बसन्त आया
भरा हर्ष वनके मन,
नवोत्कर्ष छाया।
किसलय वसना नव वय लतिका
मिली मधुर प्रिय-उर तरु-पतिका
मधुप-वृन्द बन्दी—
पिक स्वर नभ सरसाया।"

छः मात्राओका विभाजन स्वयं निरालाके अनुसार इस प्रकार है—

"सखि, बसन्त । आया— ।
भरा हर्ष । वनके मन ।
नवोत्कर्ष । छाया— ।
किसलय वस । ना नव नय । लतिका— ।
मिली मधुर । प्रिय-उर तरु । पतिका— ।
मधुर-वृन्द । बन्दी, पिक— ।
स्वर नभ सर । साया— ।

पहले चरणके 'आया'मे चार मात्राएँ हैं और स्वर विस्तार द्वारा उन्हे छः मात्रा-काल मिल सकेगा । इस प्रकार 'छाया' 'लतिका' 'पतिका' और 'साया'के साथ भी । 'पिक'मे एक मात्रा-काल बढाना पडेगा । 'वमके मन' मे छः मात्राएँ हैं, किन्तु सङ्गीतात्मक लयके लिए 'के'का मात्रा-काल कम करके 'न'के मात्रा-कालको बढाना पडेगा । इन गीतोमे आकर छन्दके स्वतत्र लयको विस्तार मिलता है और सङ्गीत भावनाका अनुवर्त्ती होकर चलता है । छान्दस सङ्गीतसे इसे भिन्न समझना चाहिए । वसन्तके उल्लास-का चित्र केवल अर्थ-चित्र द्वारा ही नही, बल्कि सङ्गीतके रूपके कारण

वहाँ स्वतन्त्र नही रह जाते बल्कि सङ्ग-बद्ध होकर अपनी स्वतन्त्र चेतना और सत्ता खोकर एकाकार हो जाते है अतः गीति-काव्यका सम्बन्ध उस अन्तर्तालैक्यसे है जिसमे सङ्गीतकी आत्मा काव्यसे अन्वित हो उठती है। इस विधानके कारण शब्द-योजना, काव्यके अन्य विधानोसे भिन्न हो जाती है। अन्तर्तालैक्यके निर्वाह और अविच्छिन्न आन्तरिक धाराका सफल निर्वाह गीति-काव्यका लक्ष्य होता है। गीति-काव्यमे सङ्गीतके शास्त्रीय विधानका अन्वेषण करनेवाले साधारण गेय काव्य और गीति-काव्यका अन्तर भूल बैठते है जिससे अनेक भ्रमका कारण उपस्थित हो जाता है। रामनाथलाल 'सुमन'ने 'प्रसादकी काव्य-साधना' मे प्रसादके गीति-काव्यपर विचार करते समय लिखा है कि 'ऐसा नही कि कविके गीति-काव्य पूर्ण सङ्गीतकी कसौटीपर कसनेपर निर्दोष ठहरेंगे। यह कहना दम्भ होगा।' 'सुमन'ने सङ्गीतात्मकताके स्थानमे सङ्गीतमयता गीति-काव्यका आवश्यक अङ्ग समझ लिया है। गेय काव्यके लिए सङ्गीतमय होना आवश्यक है और गीति-काव्यके लिए सगीतात्मक। गीति-काव्यको सगीतकी कसौटीपर कसना गीति-काव्यके साथ अन्याय करना होगा।

संगीतमय अथवा सगीतात्मक होना गीति काव्यकी अन्यतम कसौटी नही। वर्णोंका नादात्मक आधार होता है और इस प्रकार छन्द सगीतका आधार लेकर चलता है। रामायणकी दोहा-चौपाईतक सगीतके लयमे बँधती है। सवैया और कवित्तके अन्तर्नादमे कम प्रभाव नही। वाल्मीकीय रामायण और जयदेवके गीत-गोविन्द गेय है अतः गीतिमत्ता एकान्त भावसे गीति-काव्यकी कसौटी नही हो सकती। इसका मानसिक और दार्शनिक स्तर भी है। गीति-काव्यकी पूर्णता उसकी अधिकरण-आत्मनिष्ठतामे है। अन्तर्दर्शन द्वारा आत्मनिष्ठताकी भावना वैयक्तिक सुख-दुःख, राग-द्वेष, हर्ष-शोक, हास-अश्रुके गीत गाती है। गेय काव्यकी विवेचनाने

स्पष्ट कर दिया है कि गीतका प्रभाव अधिक अंशोमे सामूहिक था, क्रमशः वैयक्तिक भावनाका विकास होता गया और आज यह आत्म-भावना इतनी प्रबल हो गयी है कि गीति-काव्यकी सीमा कुछ परिष्कृत रुचिवालो-तक ही सीमित हो जाती है। अधिकरणनिष्ठता आज गीति-काव्यका प्रमुख लक्षण बन रही है। कवि किसी वस्तुको देखता है, उसकी अनुभूति होती है और विशिष्ट रूपमें वह उसको प्रभावित करती है। कविकी वैयक्तिकता प्रधान हो जातो है यद्यपि वह सामाजिक प्राणी है और उसकी चेतना सामाजिक चेतनाका ही भिन्न रूप है। कवि केवल बाह्य वस्तुओसे ही प्रभावित नही होता, केवल सामाजिक, आर्थिक अथवा राजनीतिक कारण ही उसे क्षुब्ध नहीं करते बल्कि वह आन्तरिक कारणोंसे भी क्षुब्ध होता है; यद्यपि इन आभ्यन्तरिक क्षोभके मूलमे भी सामाजिक एवं मानसिक कारण है। यथार्थवादके आग्रहमे विश्वास रखने-वाले घटनाओको ही मुख्य मान लेते है, उन घटनाओके कारण उत्पन्न होनेवाली मनोदशाको नहीं। अचेतन मन मानवीय जीवनको कम प्रभा-वित नही करता बल्कि बलपूर्वक वह चेतन प्रदेशमे आकर मानसिक सन्तु-लनको विच्छिन्न कर देता है। मानवीय कर्मके मूलमे यह भावना-ग्रन्थि (Complex) काम करती रहती है लेकिन इस भावना-ग्रन्थिके मूलमें वैयक्तिक और सामाजिक परिस्थितियाँ है।

आत्माभिव्यक्ति

कलामे कलाकार अपने व्यक्तित्वका प्रक्षेप (Projection) करता है। एक ओर जहाँ वह अपने-आपको, अपनी वासना, भावना और आकाक्षाको अभिव्यक्त करना चाहता है, वहाँ दूसरी ओर सामाजिक, वैयक्तिक, नैतिक कारणोंसे अपने आपको प्रच्छन्न रखनेका भी वह अभिलाषी है। आत्मा-

भिव्यक्तिकी सफलता अपने-आपको प्रच्छन्न रखनेमे है। व्यक्तित्वके अधिक प्रक्षेपके कारण कलात्मकता नष्ट हो जाती है और आत्माभिव्यक्तिके अभावमे कला स्वरूप-निर्माण नही कर सकती। मनोवृत्तियोके पारस्परिक सङ्घर्षकी प्रवृत्ति मानसिक अचेतन स्तरकी सुप्त भावनाएँ और उनके प्रकट होनेके उपक्रम-जैसी है। प्रत्येक कलाकारके सामने उसका 'माडल' है,—'माडल' का तथ्यगत रूप नहीं बल्कि उसका समवेदन-अथवा क्षोभन-शील रूप। वस्तु गौण रहती है, उसके द्वारा उत्पन्न रागात्मक अनुभूति ही प्रमुख है। गीति-काव्यकी अधिकरणनिष्ठताका यही अर्थ है। प्राचीन कालका कलाकार अपनेको पृष्ठभूमिमे ही रखता था, वह सामने रङ्गमञ्चपर आना नहीं चाहता था। समूहमे अपनेको खो देनेका वह अभिलाषी था। तुलसीका 'स्वान्तः सुखाय' समाजकी सुखानुभूतिके लिए है। सूरदासकी गोपियाँ आँसुओंकी यमुना बहाती है, सूरदासकी गीली आँखे पाठकके समक्ष नही आती। मेघदूतमे यक्षका प्रियाके प्रति सन्देश है, कुछ कालिदासका प्रियाके प्रति नही। मीराके पदोमे जो वैयक्तिकता है, वह निर्गुनियोकी पद्धतिमे है। मीराकी प्रेम-भावना ईश्वरोन्मुख होनेके कारण मानवात्माका परमात्माके लिए आग्रहके प्रतीक रूपमे गृहीत हुआ है, जैसा कबीर, रैदास आदिका। समाजने परोक्ष रूपसे अपनी सीमाओं और प्रकृतिका प्रभाव आत्म-जागरूक और चेतन गीति-काव्यके विभिन्न कवियोपर विभिन्न रूपसे डाला है और कवि विश्वजनीन बनानेके लिए इस वैयक्तिक प्रभाव और चेतनाको आदर्श एवं भावात्मकरूप प्रदान करता है। आत्म-चेतनाकी जागृति गीति-काव्यकी अन्तरात्मा है। लयपूर्ण भाषामे आत्मानुभूति की अभिव्यक्ति गीति-काव्यमे अपेक्षित रहती है। प्रत्येक कलाकार विभिन्न माध्यमसे आत्माभिव्यक्ति करता है। साहित्य—मेरा तात्पर्य भावात्मक साहित्यसे है—इसी आत्माभिव्यक्ति-

का आधार लेकर चलता है। नाटकमे नाट्यकार अपनी अभिव्यक्ति चरित्र-निर्माणके द्वारा करता है। प्रत्येक नाटकमे कोई-न-कोई ऐसा पात्र अवश्य मिल जायगा जो कविके स्वरमे बोलता हो। प्रसादके नाटकोमे उनके पात्र कवित्वपूर्ण भाषामे बोलते है और प्रसादने प्रत्येक नाटकके नायकमे अपने भावोका आरोप किया है। 'शा' की बुद्धिवादिता उनके द्वारा निर्मितमे चरित्रो स्पष्ट है ; महाकाव्योमे भी कविकी स्वतन्त्र चेतना परोक्ष रूपसे आत्माभिव्यक्ति करती है।* यदि प्रत्यक्ष चित्रणका प्रश्न हो, गीति-नाट्यमे ऐसा नही होता। आत्माभिव्यञ्जनका अतः अर्थ लिया जाता है 'मनोरागोका आवेशपूर्ण आग्रह'। कविकी अन्तरमे जाग्रत अनुभूतिका सन्तुलित रूप गीति-काव्यमे प्रकट होता है। इस प्रकार कविके व्यक्तित्व और वैयक्तिकताका प्रक्षेप यहाँ मिलेगा।

क्या कवि गीति-काव्यका विषय और उद्देश्य दोनो है ? कवि स्वय उद्देश्य बनकर पाठकके साथ सहज सम्पर्क खो बैठेगा। कविताके प्रभावके लिए अनेक अशोमे समान अनुभूतिका तत्त्व चाहिए। कवि जिस प्रकारकी अनुभूतिका चित्र उपस्थित कर रहा है, यदि पाठकमे वैसी अनुभूति का अभाव है, उस कविताका कोई प्रभाव वैसे पाठकपर नही पड सकता। रसोद्रेकके लिए सस्कार रूपसे मनोरागकी स्थिति आवश्यक है। सामूहिक रूपसे अनेक मनोराग परम्परा-गत दायके रूपमे मानव-प्राणीको मिले है। वैयक्तिक अनुभूतिके अभावमे उनका क्षीण आभास व्यक्तिके मनमे रहता है। वैयक्तिक अनुभूति उसे गम्भीरता एव तीव्रता देती है। कविका उद्देश्य जहाँ आत्म-प्रकाश है, वहाँ वह परोक्ष रूपसे सवेदन-

---

* देखिये 'आधुनिक हिन्दी कविता' में 'काव्यमें आत्माभिव्यक्ति, शीर्षक लेख'—रामखेलावन पाण्डेय,

शीलताका भी अभिलाषी है, कारण 'कला कलाके लिए' वाले सिद्धान्तका सकुचित अर्थ मानकर भी इसे अस्वीकार नही कर सकता कि वह अपनी भावनाओको पाठकोतक पहुँचाना चाहता है। काव्यका विषय भी वह परोक्ष रूपमे ही हो सकता है। वह अपने व्यक्तित्वका प्रक्षेप अन्य लोगो-पर कर देता है। वस्तुतः घटनाओ और अनुभूतिको विच्छिन्नकर वह नव-निर्माणकी चेष्टा करता है। कवि उद्देश्य और विषय दोनो है, इसका अर्थ इतना ही लेना चाहिये कि गीति-काव्यमे कवि रागात्मक अनुभूतिका विशेष चित्रण करता है। जहाँ वह प्रत्यक्ष रूपमे अपना वर्णन करता है, वहाँ वह दूसरी परिस्थितियोकी कल्पना अपनी अनुभूतिके साथ कर लेता है। आजकल कवितामे सत्यताकी अधिक दुहाई दी जाने लगी है, जिसमे आलोचक जीवन और कला दोनोमे साम्य देखनेका अभिलाषी है। मनुष्य अपने विचारो और आकाक्षाओमे जीवित रहता है। घटनाएँ इसीलिए सत्य है कि वे विशेष प्रकारकी अनुभूति जाग्रत करती है। कला और जीवनमे भावात्मकता और यथातथ्यात्मकताका विभेद है। कला जीवनके भावात्मक पक्षका बोध है अतः सत्यताका केवल इतना ही अर्थ लिया जाना चाहिये कि वैसी अनुभूति कविमे है। इस प्रश्नको दूसरे प्रकार इस रूपमे उपस्थित किया जा सकता है कि क्या गीति-काव्यको कविके व्यक्तित्वसे विभिन्न करके देखा जा सकता है? इस सम्बन्धमे इतना स्मरण रखना होगा कि बाह्य रूप ही व्यक्तित्व नही, प्रत्यक्ष जगत् और चेतनाके कार्योमे ही उसकी वैयक्तिकता नही बल्कि उसके व्यक्तित्व-का मूल स्रोत उसका मानसिक द्वन्द्व है, जो चेतन और अचेतन मनमे सदा चलता रहता है। गीति-काव्यके स्रोतको देखनेके लिए उसको परि-स्थितियोके उतने दर्शनसे ही सम्बन्ध है जिससे मानसिक द्वन्द्वका सकेत मिलता है। इस मानसिक द्वन्द्वका विश्लेषण कलाकारका कार्य नही,

बल्कि उसका सन्तुलित चित्र उपस्थित करना ही उसका लक्ष्य है। इस आत्म-चेतना एव अधिकरणनिष्ठताका यह अर्थ कदापि नही कि कलाकार आत्म-चरितकी घटनाओका यथाक्रम वर्णन उपस्थित करता है बल्कि कल्पनाके द्वारा वह दूसरोकी मनोदशामे भी प्रवेश कर सकता है।

गीति-काव्यका सम्बन्ध कविकी गहरी रागात्मक अनुभूतिसे है, ऐसा ऊपर कहा गया है। स्वाभाविकतया यह प्रश्न उठ खडा होगा कि क्या अनुभूतिके क्षणोकी गम्भीरता ही काव्यकी सवेदनशीलताका कारण है? गहरी अनुभूतिके क्षणोमें कलात्मक अभिव्यक्ति सम्भव नही। कलाके लिए चिन्तन, सस्कृत-शास्त्री चर्वण कहेगे, आवश्यक है। जिस समय अनुभूति अपने तीव्रतम आवेगमे रहती है उस समय मानसिक स्थिति ऐसी नही रह जाती कि कलाकार तत्क्षण उसे वाणी दे दे। यदि ऐसा वह करना चाहे तो चित्रको चाहे स्पष्टता वह भले दे सके किन्तु सवेदनशीलता नही दे सकेगा। कारण वह उसकी इतनी अपनी होगी कि पाठकको आनन्दानुभूति नही हो सकेगी। गीति-काव्यका उद्भव अन्तर्ज्वालासे है, कविके आकुल प्राण जब गीतोमे बँधनेको व्याकुल हो उठते है, तभी वह गा उठता है—'गीतो-मे मन बाँध न पाता।' यह अन्तर्दहन क्षण विशेषका फल है। इसका कारण आलोच्य-विषय नही, बल्कि अन्तर्दहन स्वय विचारणीय है। अनु-भूतिके क्षणोका यह प्रकाश भिन्न-भिन्न रूपोमें होता है, वर्ड्सवर्थमे यह शान्त और गम्भीर है, बायरनमे तीव्र। शेलीमे थोडा-सा प्रकाश पहले होता है, सहसा आग जोरोसे भड़क उठती है और जिस तीव्रताके साथ भभक पड़ी थी, उसी तेजीसे बुझ भी जाती है। पन्तका अन्तर्दहन शान्त है, धीमा-धीमा जलता है।

मूँद पलकोमें प्रियाके ध्यानको,
थाम ले अब, हृदय! इस आह्वानको।
त्रिभुवनकी भी तो श्री भर सकती नहीं,
प्रेयसीके शून्य पावन स्थानको।
तेरे उज्वल आँसू सुमनोमे सदा,
वास करेंगे, भग्न हृदय! उनकी व्यथा।
अनिल पोछेगी; करुण उनकी कथा,
मधुप बालिकाएँ गायेंगी सर्वदा।

निरालामे यह शान्ति, यह गम्भीरता नही। निरालाका अन्तर्दहन पौरुष है, उसमे तीव्रता है, वेग-आकुलता है, एक बार ही आक्रान्त करनेकी उसमे शक्ति है। वह आलोक इतना तीव्र है कि उस समय और किसी वस्तुका ध्यान नही रह जाता। प्रवाह इतना तेज है कि मानव-मन उसमे टिक नही सकता। पन्तकी अन्तर्ज्वाला धीमी जलती है, कोमल है, मीठी है, जैसे प्रेमकी पीर; खोये गये प्रियतमकी याद, करुण मादक है किन्तु उद्वेगहीन। निरालाकी यह ज्वाला उद्दामवेगवाली है—

"मेरे स्वरकी अनिल शिखा से,
जला सकल जग जीर्ण दिशा से
हे अरूप, नव-रूप-विभा के
चिर स्वरूप पाके जाओ
मेरे प्राणो में आओ।"

—निराला

महादेवीमे यह आग शान्त भावसे जगती है, सहसा ज्वाला भभक पड़ती है और उसी तीव्रताके साथ बुझ भी पड़ती है। पन्तकी शान्त, स्निग्ध

ज्वाला भी नहीं, निरालाकी तीव्रता और आवेग भी नही। नवीन सौन्दर्य-मय नूतन गीति-उपहार है महादेवीका। उल्कापातकी भाँति सहसा प्रकाश हो जाता है। उत्थान जितना आकस्मिक है, अन्त उतना ही करुण। बौद्धिकता उस अनुभूतिकी आगको शान्त कर देती है।

प्रिय-पथके यह शूल मुझे अलि प्यारे ही हैं!

\+ + + +

ओढ़े मेरी छाँह
रात देती उजियाला
रज-कण मृदु पद चूम
हुए मुकुलोंकी माला!
मेरा चिर इतिहास चमकते तारे ही हैं!

\+ + + +

विरह बना आराध्य
द्वैत क्या कैसी बाधा!
खोना पाना हुआ जीत वे हारे ही हैं!

'**प्रिय-पथके यह शूल मुझे अलि प्यारे ही हैं।**' मे अन्तर्ज्वालाकी छिटकी चिनगारीके दर्शन हो रहे है। 'ही' के प्रयोगसे इस चिनगारी-की क्षणिक और अपेक्षाकृत कम तेज दहन-शक्तिका सकेत मिलता है। किन्तु दूसरी अवस्थामे आकर वह अन्तर्ज्वाला सर्वत्र व्याप्त हो जाती है। घोर अन्धकारमयी अमा भी उल्कापातके क्षणिक प्रकाशमे प्रकाशित हो उठती है। किन्तु तीसरी अवस्थामे 'द्वैत' 'खोना-पाना' आदितक आते-जाते वह आग दर्शन और दार्शनिकतासे उलझने लगती है।

अतः व्यक्तित्व, वैयक्तिकता अथवा अधिकरणनिष्ठताका आधार कविकी कलात्मक भावनामे है और गीति-काव्यत्वका मूल आधार भी यही है। कविकी कलात्मक भावना अनुभूतिकी प्रकृति और अभिव्यक्तिको अपने सॉचेमे ढालती है। गीति काव्यमे इसीलिए वाह्य घटनाओका नही बल्कि इन घटनाओ अथवा मानसिक कारणोसे उत्पन्न मानसिक मूर्त-विधानका मूल्य है। वह गीतिकार सफल नहीं जो अपना आत्म-चरित्र छन्द-बन्धनमे ढालता है बल्कि वह है, जो वैयक्तिक अनुभूतिके तीव्रतम क्षणोको कलात्मक रूप प्रदान करता है। यही मानसिक स्थिति गीति-काव्यका आधार है।

भुखवाके मारे बिरहा बिसरिगा भूलि गइ कजरी कबीर
देखिक गोरीक मोहनी मूरत अब उठै न करजेवामे पीर !

भूखके प्रभावका सच्चा और सजीव वर्णन है। गायक यह नही कहता कि उसे भूख लगी है किन्तु इतना सकेत अवश्य दे देता है कि कजली और कबीर दोनो भूल गये। कजली बर्षाऋतुका गीत है। आकाशमे काले-काले मेघ ऊधम मचाने लगते है, रह-रहकर किसीकी यादकी भॉति बिजली तड़प उठती है। प्रियाका मन ॲगियामे समाता नही, मचल पडता है और वह बादलोंसे प्रार्थना करती है :—

कारिक पियरि बदरिया झिमिकि देव बरसहुँ
बदरी जाइ बरसहु उही देस जहॉ पिय कोड़ करैं,
भीजै आखर बाखर तमुआ कनतिया।
अरे भितराँसे हुलसे करेज समुझि घर आवैं।

न तो हिय-हुलसावन सावन और न होलीका उल्लास ही कलेजेमें हुलास

उत्पन्न करते है, ऐसा व्यापक और तीव्र है भूखका प्रभाव। उद्देश्य और विषय दोनों एकात्म, एकाकार हो गये है।

प्रेम जीवनकी सरस किन्तु साथ ही कडवी अनुभूति है। 'मीठी पीर' जब आकुल प्राणोंमें बँध नही पाती, जीवन एक नये लोकमें प्रवेश करता है। जिसका प्रेमी मिलकर बिछुड गया, वह अभागा है किन्तु जिसने कभी प्रेम किया नही प्रेम की 'मीठी पीर' जिसमें जगी नही उसके जैसा महान् अभागा और कोई नहीं। प्रीतिकी यह अनुभूति इतनी तीव्र, व्यापक और मर्म-स्पर्शिनी है कि मनुष्य भूल जाता है, पाण्डित्यको, ज्ञान को। उसके लिए मात्र सत्य हो उठते है जीवनके अनमिल और अनचीन्हे सपने। यह जागरण अन्य सारी चेतनाओंको धो देता है, ज्ञानकी बाँध टूट जाती है और उस उद्दाम, खर-प्रवाहमें जीवन बह चलता है, लक्ष्यका पता नहीं, मालूम नही नाव कही घाट लगेगी अथवा नही? अभी तो जाने-पहचाने घाटपर लगी थी किन्तु न-जाने किस औघट घाटपर अनुभूति ले जा पटके। भगवतीचरण वर्माका गीत है—

आज ढीले पड़ रहे हैं
ज्ञानके विकराल बन्धन
आज सपनोंकी अवलियाँ
आँसुओंके तारमें बिंध
प्रेमकी जय-माल बनकर
रच रहीं सुकुमार सिहरन

सूरकी गोपियोंने एक दिन कहा था—

ऊधो मन ना भये दस बीस।
एक हुतो सो गयो स्याम सङ्गको आराधे ईस॥

मीराने मनकी इसी अवस्थाका वर्णन किया था—

साधुन सङ्ग बैठि-बैठि लोक लाज खोई
अब तो बात फैल गयी जानत सब कोई।
अँसुवन जल सींच-सींच प्रेमि-बेलि बोई,
मीरा प्रभु लगन लागी, होनि हो सो होई॥

इन पक्तियोमे विदग्धता है, विवशता है, लाचारी है, व्यथा है, पीड़ा है और है आत्मनिवेदनका तीव्र और गम्भीर भाव।] विषाद जीवनकी गम्भीरतम अनुभूति है, इसका इतना व्यापक प्रभाव है कि ससारके काव्यमे इसका प्राधान्य है। विषादका मूल अभाव है किन्तु इस अभावकी चेतना-के लिए भावका अभाव नही हो सकता। यह अभाव व्यक्तित्वकी विभिन्नताके कारण भिन्न रूप ले सकता है किन्तु उसकी आत्मा एक रहती है। अभावके गीतोंमे चाहे देश-दशापर, चाहे सामाजिक, आर्थिक अभावपर अथवा व्यक्तिगत अभावके ऐन्द्रिय अथवा उसके शोधित दार्शनिक रूपपर आँसू बहाये जायँ, अभाव अपनी सत्ता खो नहीं सकता। अभाव जीवन-का इतना बडा अङ्ग है कि वही जीवन है, जीवनका मूल स्रोत है। विषादकी यह व्यापकता देखकर ही भवभूतिने कहा था—

एको रसः करुण एव निमित्तभेदाद्
भिन्नः पृथक्पृथगिवाश्रयते विवर्तान्
आवर्त्तबुद्बुदतरङ्गमयान् विकारान्
अम्भो यथा सलिलमेव तु तत्समग्रम्॥

—भवभूति।

[रस एक ही है और वह है करुण। निमित्त-भेदसे वही भिन्न-भिन्न

रूपोमे प्रकट होता है। जलके एक रहनेपर भी, रूप-भेदके कारण वह भँवर, बुद्बुद, तरंग आदि नाम धारण करता है।]

ईसाने कहा है—"Blessed are they that mourn, for they shall be comforted." पाश्चात्य साहित्यपर ईसाके इस कथनका व्यापक प्रभाव है। अतः विषादकी गम्भीरतम रेखाके दर्शन वहाँ होते हैं। शेक्सपियर, गेटे और शिलरके नाटकोमे विषादरस पूर्ण है। शेलीकी कवितामे अर्द्ध-सुषुप्त, अर्द्धचेतन आदर्शकी विफलताके कारण विषादकी जो घनी रेखाएँ खिंच गयी हैं, वे अमिट है। बायरनकी निराशावादिताने 'बायरनिज्म' का जन्म दिया। मानव-मन विषादकी अस्पष्ट, धूमिल रेखाओसे सदा घिरता आया है। बुद्धके सर्वमनित्यम् और दुःखवादमे जीवनके इस गूढ विषादकी धारा प्रवाहित हो रही है। विषादके आँसुओमे आनन्दकी रेखाएँ है। मानवात्मा आनन्दानुभूतिके क्षणोके अन्वेषणमे सचेष्ट है। करुण मे आनन्दानुभूतिके सिद्धान्तोपर मतैक्य न होनेपर भी विषादका आधिक्य साहित्यमे है। सूरकी गोपियाँ आँसुओकी यमुना बहाती हैं और गुप्तकी उर्म्मिलाकी आँखे उन्हीं आँसुओसे गीली है, चाहे महात्मा गाँधीको इस युगमे आँसुओकी प्रधानता खटक रही हो। विषादका प्रभाव ग्राम-गीतोमे कम नही। माताके हृदयकी पीडाका करुण, व्यापक और सजीव चित्र है :—

सोनेके खरउवाँ राजा राम कउसिलासे अरज करइँ।
हुकुम न देउ मोरी मैया मैं बनके सिधारउँ॥
जौने राम दुधवा पिआवउँ घिऊ सेनि अवटउँ।
अरे मोरा भितरासे बिहरै करेजवा मैं कैसे बन भाखउँ॥

पोअउँ मैं घियेके सोहरिया दुधे करि जाउरि।
अरे रामा, एतना जेंवन मोर बिख भा राम मोर बन गये ॥
चारि मँदिल चारि दीप बरै हमरा अकेले बरई।
रामा मोरे लेखे जग अँधियार राम मोर बन गये ॥
भितरॉसे निकसी कउसिला नैनन नीर बहइ।
रामा राम लखन सीता जोड़िया कवने बन होइहै ॥
राम बिना सूनी अजोध्या लखन बिन मन्दिल।
मोरी सीता बिन सूनी रसोइयाँ कइसे जियरा बोधब ॥
मंदिल दीप जरइबै औ सेजिया लगइबै।
राम आधी रात होरिला दुलरबै जनुक राम घरहिन ॥
सवना-भदवनाके दिनवा घुमरि घन बरसई।
रामा राम लखन दूनो भइया कतहुँ होइहैं भीजत ॥
झिमिकि झिमिकि दई बरसइ मोर नाहीं भावइ।
देवा वोहि बन जाइ जनि बरिसहु जहाँ मोर लरिकन ॥
रामक भीजै मटुकवा लखन सिर पटुका।
मोरी सीताक भीजै सेंदुरवा लवटि घर आवउ ॥

—भोजपुरी लोक-गीत

[सोनेके खड़ाऊँ पर चढ़े रामचन्द्र अपनी माता कौशल्यासे निवेदन कर रहे हैं—माँ आज्ञा दो न ? मै बनको जाऊँ ।

कौशल्या कहती है—जिस रामको मैंने दूधमे घी औटकर पिलाया, मेरा भीतरसे कलेजा फटा जा रहा है, मै उसे वन जानेकी आज्ञा कैसे दूँ।

राम मेरे प्राण है, लक्ष्मण ऑखोकी पुतलियॉ है और सीता हाथोकी चूडी है, भला वन जानेकी आज्ञा कैसे दूँ ?

मैंने घीकी पूरी पोयी थी, दूधकी खीर पकायी थी। हाय, मेरे राम वनको चले गये। मुझे सारा भोजन विष-सा लगता है।

चारो मन्दिरोमे चार दीपक जल रहे हैं। मेरे मन्दिरमे केवल एक जल रहा है। पर मेरे लेखे मारा ससार अन्धकारमय लगता है, कारण मेरे राम वनको चले गये।

कौशल्या भीतरसे निकली। उनकी आँखोसे आँसू बह रहे है। वह विसूर रही हैं—हाय, राम, लक्ष्मण और सीता न-जाने किस वनमें होगे!

रामके विना सारी अयोध्या सूनी है; लक्ष्मणके विना मन्दिर और सीताके विना रसोई। भला मै कैसे धीरज धरूँ?

रातको मैं दीपक जलाऊँगी, सेज बिछाऊँगी, आधी रातको पुत्रको प्यार करूँगी जैसे मेरे राम घरमें ही हों।

सावन-भादोके दिन है। बादल घुमड-घूमडकर बरस रहे है। हाय, राम-लक्ष्मण कहीं भीग रहे होगे।

बादल रिमझिम बरस रहा है, मुझे अच्छा नहीं लगता। हे बादल, उस वनमे जाकर मत बरसना, जहाँ मेरे लडके हैं।

रामका मुकुट भीग रहा होगा, लक्ष्मणका दुपट्टा और मेरी सीताकी माँगका सिंदूर। तीनों घर लौट आओ।]

माताकी आँखोंका जल और हृदयका विषाद देखने योग्य है। कौशल्याने दस महीनेतक रामको गर्भमे धारण किया, पालन-पोषण किया, अपने हृदयके अमृतसे उन्हे सींच-सींच जीवन-दान दिया। राजाको न-जाने क्या सूझी, उन्हे वनवास दिया। राम उस मातासे वन जानेकी आज्ञा चाहते है, जिसके वे एकमात्र पुत्र ही नहीं, जीवन-प्राण हैं; आशा-उल्लास, हर्ष-आनन्द हैं। यह प्रेम, यह वात्सल्य इतना व्यापक है कि कौशल्या वनमे

विचरनेवाले रामकी कल्याण-कामनामे निमग्न है, 'मेध वहॉ जाकर न बरसना, जहॉ मेरे लडके हैं।' यशोदाके हृदयमे यही विषाद है—

यद्यपि मन समुझावत लोग,
शूल होत नवनीत देखि मेरे मोहनके मुख-जोग।
प्रातकाल उठि माखन-रोटी को बिन माँगे दैहे।
अब उहि मेरे कुँवर कान्हको छिन छिन अंकम लैहे।
कहियो पथिक जाइ घर आवहु राम कृष्ण दोउ भैया।
'सूर स्याम' कत होत दुखारी जिनकी मों सी मैया॥

राधाके हृदयके उसी मौन विषादका 'सूरदास' की तूलिका द्वारा चित्र है—

जब सन्देशा कहन सुन्दरी गवन मो तन कीन।
खसी मुद्रा चरन अरुझी गिरी भुवि बलहीन॥
कण्ठ बचन न बोलि आवै हृदय परिहस भीन।
नैन जल भरि रोइ दीनौ ग्रसित आपद दीन॥
उठी बहुरि सँभारि भट ज्यो परम साहस कीन।
'सूर' प्रभु कल्याण ऐसे जिवहि आसा लीन॥

एव—

निरखत अंक श्याम सुन्दर के बार बार लावति छाती।
लोचन-जल कागद मसि मिलिकै हो गई स्याम स्यामकी पाती॥

राधाकी व्याकुलता दर्शनीय है—

"बँधूकि आर बलिब आमि।
मरने-जीवने, जनमे-जनमे प्राणनाथ हइयो तुमि।

तोमार चरने आमार पराणे बाँधिल प्रेमेर फाँसि।
सब समर्पिया एक मन हइया निश्चय हइलाम दासी ॥

—चण्डीदास।

[हे बन्धु, और मै क्या कहूँ ? मृत्युमे, जीवनमे, जन्म-जन्ममे तुम्ही मेरे प्राणनाथ हो। तुम्हारे चरणोने मेरे प्राणोमे प्रेमकी फाँस बाँध ली है, सब समर्पणकर एक चित्त होकर निश्चय ही मैं तुम्हारी दासी हो गयी हूँ।]

मीरा भी गा उठती है—

जो मैं ऐसा जानती, रे, प्रीत किये दुख होय,
नगर ढिढोरा पीटती, रे, प्रीत न करियो कोय ॥

जीवनका यही विषाद रवि बाबूके गीतोमे रसका स्वरूप धारणकर फूट पडा है—

याचना

"भालो बेसे सखि निभृत यतने
आमार नामटी लिखियो—तोमार
मनेर मन्दिरे (१)
आमार पराणे जे गान बाजिछे
ताहार तालटी सिखियो—तोमार
चरण-मञ्जिरे (२)

[हे सखि, प्यार करके, एकान्तमे, यत्नपूर्वक, अपने मनोमन्दिरमे, मेरा नाम लिख लेना। १

मेरे प्राणोमे जो सगीत बज रहा है, उसकी ताल, अपने पैरोमे बजने-वाले नूपुरोसे सीख लेना। २]

प्राणोमे खोई वस्तुके लिए मौन प्रार्थना गूँज उठती है। वस्तु गौण हो जाती है, केवल आकाक्षामात्र बच रहती है। जीवन एक अनन्त मौन उदास बन जाता है। पता नही प्राणोके भीतर कौन आकुल बाँसुरी बज उठती है। मौन-सगीत नयी झङ्कार, नये कौशलसे जाग उठता है। पता नही प्राण क्या चाहते है, पर चाहते कुछ हैं अवश्य। इष्ट कभी मिलेगा अथवा नही, इसकी चाह नही। मात्र वासना, आकाक्षा ही सत्य है। जीवनकी यह करुण सरस अनुभूति रवि बाबूकी अन्तर्स्थित संगीत-धाराके विषादको मुखरित कर उठती है—

आजि शरत तपने, प्रभात स्वपने।
कि जानि परान कि जे चाय ॥१॥
ओइ शेफालीर शाखे कि बलिया डाके
विहग-विहगी कि जे गाय ॥२॥
आजि मधुर बातासे हृदय उदासे,
रहे न आवासे मन हाय!॥३॥
कोन कुसुमेर आशे, कोन फूल वासे,
सुनील आकाशे मन धाय ॥४॥
आजि के जेनो गो नाई, ए प्रभाते ताई,
जीवन विफल होयगो ॥५॥
ताइ चारि दिके चाय, मन केंदे गाय,
“ए नहे, ए नहे, नोय गो!” ॥६॥

कोन स्वप्नेर देशे, आछे एलो केशे,
कोन छायामयी अमराय ॥७॥
आजि कोन उपवने, विरह वेदने,
आमारी कारणे केंदे जाय ॥८॥
आमि यदि गायी जान अधिर परान,
से गान सुनाबो कारे आर ॥९॥
आमी यदि गाँथी माला, लये फूल डाला,
काहा रे पराबो फूल हार ॥१०॥
आमी आमार ए प्राण यदि करी दान,
दिबो प्राण तबे कार पाय ॥११॥
सदा भय होय मने पाछे अजतने
मने मनके हो व्यथा पाय ॥१२॥

[आज शरद् ऋतुके सूर्यातपमें प्रभातके स्वप्न कालमें न-जाने मेरे प्राण क्या चाहते हैं। १.

उस हरसिंगारकी शाखापर बैठे हुए विहङ्ग और विहगी न-जाने क्या कह-कहकर एक दूसरेको बुलाते है, पता नहीं उनके गानेका अर्थ क्या है ? २

आजकी मधुर वायु प्राणोंको उदास कर देती है। घरमें मन भी नहीं लगता। ३

न-जाने किस फूलको आशामें, किस फूलकी सुगन्धिके लिए मन नीले आकाशकी ओर भाग रहा है। ४

आज न-जाने वह कौन अपना मानो नही है, इसीलिए इस प्रभातकालमे जैसे मेरा जीवन विफल हो रहा है। ५

उसे ही मन चारो ओर ढूँढता है और जो कुछ पाता है उसे देख कर व्यथा-भरे शब्दोमे कहता है—यह नही, यह नही, वह (कदापि) नही। ६

न-जाने किस स्वप्न-देशकी अमरावतीमे वह मुक्तकेशी है। ७

आज न जाने किस उपवनमे वह विरहकी वेदनामे भरकर गाती है और मेरे लिए रोकर चली जाती है। ८

मै यदि गीत गाऊँ, यदि गीतोंकी रचना करूँ, तो फिर प्राणोके अधीर होनेपर उसे किसको सुनाऊँगा। ९

और अगर फूलोकी माला गूँथूँ तो वह हार किसे पहनाऊँ? १०

यदि अपने प्राणोका दान करना भी चाहूँ तो किसके चरणोमे इसे समर्पित करूँगा? ११

मनमे सदा भय लगा रहता है कि मेरी त्रुटिसे हृदयमे किसीको चोट न लगे। १२]

यह विषाद ही राग बनकर 'प्रसाद'का 'ऑसू' बन जाता है—

बस गई एक बस्ती है
स्मृतियोंकी इसी हृदयमे
नक्षत्र लोक फैला है
जैसे इस नील-निलय मे।

क्योंकि,

शशि-मुखपर घूँघट डाले
अन्तरमें दीप छिपाये

जीवनकी गोधूलीमें
कौतूहलसे तुम आये ।।

—आँसू

प्रेम-विभोर विरहिणीका एक गीत है—

आम मजरि महु तूअल
तैओ ने पहुँ मोरा घूरल
दीप जरिय बाती जरल
तैओ ने पहुँ मोरा आयल

[आममे बौर आ गयी । महुआ चूने लगा । लेकिन हे सखि, मेरे प्रियतम नही आये । दीयेकी लौ मन्द पड़ गयी । बत्ती जल गयी फिर भी मेरे प्रियतम नही आये]

इसी विषाद और वेदनाके लिए द्विजने कहा है—

अमर वेदना ही हो मेरे
सकल सुखोंका मीठा सार ।

—द्विज

कभी तो वह इस विषादको भी अपने अन्तरमे छिपा रखना चाहता है: —

विपतके जिस आँगनमें खेल,
काटता मैं दारुण दिन-रात—
दिखाऊँगा न तुम्हें वह; और
बताऊँगा न विपतकी बात ;

क्याकि दुखके ज्ञापनका भाव,
घटा देता पीड़ाका मोल;
लूट लेता अधीर उन्माद,
अतल अन्तर की निधियाँ खोल।
—द्विज

यही बिषाद आध्यात्मिकता और दार्शनिकताका आग्रह लेकर महा-देवीकी वाणी मुखरित करता है—

पूछता क्यों शेष कितनी रात ?
+ + + + + +
प्रणत लौ की आरती ले,
धूम—लेखा स्वर्ग-अक्षत
नील कुमकुम वारती ले,
मूक प्राणोंमें व्यथाकी स्नेह-उज्ज्वल भारती ले,
मिल अरे बढ़ आ रहे यदि प्रलय झञ्झावात !
कौन भय की बात ?

दर्दने कुछ ठीक ही कहा है—

दिल भी ऐ 'दर्द' कतरए-खूँ था
आँसुओंमें कभी गिरा होगा।

यही जलन दिनकरका परिचय है—

जलन हूँ, दर्द हूँ, दिलकी कसक हूँ,
किसीका हाय खोया प्यार हूँ मैं।

गिरा हूँ भूमिपर नन्दन-विपिनसे
अमर-तरुका सुमन सुकुमार हूँ मैं।
मधुर जीवन हुआ कुछ प्राण! जबसे
लगा ढोने व्यथाका भार हूँ मैं।
रुदन ही एक पथ प्रियका, इसीसे
पिरोता आँसुओका हार हूँ मैं॥

यही व्यथाका भार 'वनफूलोंकी ओर' मे भी मिलेगा—

बन-तुलसीकी गन्ध लिये हलकी पुरवैया आती है
मन्दिरकी घण्टा-ध्वनि युग युगका संदेश सुनाती है
'टिम टिम' दीपकके प्रकाशमें पढ़ते निज पोथी शिशु-गण
परदेशी की प्रिया बैठ गाती यह बिरह गीत उन्मन—
''भैया! लिख दे एक कलम खत मो बालमके जोग
चारों कोने खेम कुशल माझे ठाँ मोर वियोग।''

और वास्तवमे गीति काव्य 'दूतिका मैं बन जाऊँगी, सखी! सुध उन्हे सुनाऊँगी' का भार वहनकर आँखके आँसुओका मोल बतलाता है। और कभी 'परदेशी-प्रिया' की यादमे रोनेवाला कवि चीख उठता है—

सुनूँ क्या सिन्धु मैं गर्जन तुम्हारा
स्वयं युगधर्मका हुङ्कार हूँ मैं।

और वेदना एव विषादकी यह परम्परा भारतेन्दुसे आती हुई राष्ट्री-यताकी धारामे मिल जाती है; जिसके स्वरमे स्वर मिलाकर नवीनने गाया—

कवि, कुछ ऐसी तान सुनाओ
जिससे उथल पुथल मच जाये।

प्रसाद ने कहा—

हिमाद्रि तुङ्ग श्रृङ्ग से
प्रबुद्ध शुद्ध भारती ,
स्वयं प्रभा समुज्ज्वला
स्वतन्त्रता पुकारती ।

राष्ट्रीय कविताके मर्ममे अतीतके प्रति श्रद्धा, निजत्वसे प्रेम, वर्तमान अभावके प्रति जागरूकता एव क्रम-परिवर्तनका आभास रहता आया है। राष्ट्रीय गीतोके मूलमे विषादकी यही भावना जाग्रत् रहती है। वर्तमान-के प्रति असन्तोष अभावोके प्रति जागरूकताका लक्षण है। देश, जाति और सस्कृतिकी सीमाएँ तोड सम्पूर्ण मानव जातिके विषाद और अभावकी जो चेतना जग जाती है, वह अन्तर्राष्ट्रीय है, सार्वजनिक है, मानवीय है, बुद्ध ओर ईसामे यही मानववाद है। हृदयवाद जब वैयक्तिक सुखदुःखकी प्रेरणाको मानवताके साथ सम्बद्ध कर देता है वह मानवीय करुणाका उत्स बन जाता है , वैसे समय भी स्मरण रखना चाहिए कि उस उत्सका उद्भव कहॉ हुआ है ?

नीचे जलनेवाली पृथ्वी ऊपर जलनेवाला अम्बर।
औ' कठिन भूख की जलन लिये नर बैठा है बनकर पत्थर !
पीछे है दानवताका खँडहर, दानवताका सामने नगर !

यही विषाद 'मानव-प्रेम'का आदर्श है, यही विषाद राष्ट्रीय जागरणका उन्मेष है; भक्तकी अतुल भावना है, स्नेहका सागर है। मानव-प्रेमके आधार ऑसुओके सम्बन्धमे लावेलने (Lowell) कहा है—

Let our heart within us melt

To gentleness as if we felt
The dropping of our mother's tears.

विषादका यही राष्ट्रीय रूप 'प्रसाद'के 'हिमाद्रि तुग'मे फूट पडा है—मानवताकी इसी बौद्धिक प्रेरणाके कारण—

आह मेरा गीला गान
वर्ण-वर्ण है उरका कम्पन
शब्द-शब्द है सुधिका दंशन
चरण-चरण है आह
कथा है करुण अथाह

'बूँदमें वाडवका दाह'

गानेवाले पत कहते है—

खुल गये छन्द के बन्ध,
प्रासके रजत पाश,
अब गीत मुक्त,
औ' युगवाणी बहती अयास !
बन गये कलात्मक भाव
जगत के रूप-नाम,
जीवन सङ्घर्षण देता सुख,
लगता ललाम ।
× × ×

स्वानुभूति निरूपक आत्मनिष्ठ काव्यमे कवि अपने व्यक्तिगत अनुभव,

आकाक्षा, विचार, रागात्मक, आवेश तथा मूड (Mood) को अभिव्यक्ति देता है। कविका अस्तित्व स्पष्ट रूपसे उसके काव्यमे वर्तमान रहता है। आन्तरिक क्षोभ गीति-काव्यको जीवनी-शक्ति देता है और उसकी वृत्ति उसे नवीन रूप देती है। जिस प्रकार नदीके निर्मल जलके भीतर तलस्थ वाले पत्थर साफ झलकते रहते हैं, उसी प्रकार कविकी अन्तर्वासना गीति-काव्यमें झलकती रहती है। किसी भी कवितामें व्यक्तिगत आशा-निराशा, लालसा-आकाक्षा, अनुभूति, विचारका चित्र रहता है। वस्तुनिष्ठ, वाह्यार्थ निरूपक अथवा आब्जेक्टिव कवितामें कवि अपने व्यक्तित्व और आकाक्षाको गोपनीय बनाकर दूसरे पात्रके माध्यमसे अभिव्यक्त करता है, अन्तर केवल इतना होता है कि वह परोक्ष रूपमें ही रहता है। काव्यके इस प्रकार भेद व्यावहारिक और सुविधाके लिए हैं। हर्ष, शोक, प्रेम, घृणा आदि मानवीय वृत्तियोके उत्पन्न करनेवाले कारणों एव उनकी मात्रामें अन्तर रहता है। एक ही व्यक्तिमें भिन्न समयमें उत्पन्न अनुभूतिकी गहराई भिन्न होती है। उन अभिव्यक्तियोको एक ही कहना शायद मनोवैज्ञानिक भूल है। केवल उनकी समानताके कारण ही उन्हें एक माना जाता है। दो विभिन्न परिस्थितियोंमें उत्पन्न आकर्षणको सामान्य प्रेमकी सज्ञासे हम अभिहित करते हैं परन्तु दोनो प्रेममें अन्तर रहता है। केवल समानता ही उस अनुभूतिके एकत्वका आधार है। सामाजिक विकास-क्रमकी पूर्वावस्थामे वैयक्तिक विभिन्नताका रूप उन्नत नहीं हो सका था। व्यक्तित्व और वैयक्तिकताकी स्पष्ट विभिन्नताका उद्भव पीछे चलकर हुआ। आजकी चेतना व्यक्तिको विच्छिन्न करके देखनेका अभिलाषी है, यद्यपि सामाजिक प्रतिवेशसे हटाकर देखनेका अर्थ कृत्रिम वातावरणमे उसे रखकर देखना है। तुलसीकी स्वानुभूतिके सम्बन्धमें रामचन्द्र शुक्लने 'तुलसीदास'में (पृ० ८५) लिखा है, "तुलसीकी अनुभूति ऐसी नहीं जो एकदम सबसे न्यारी हो।" अनुभूतिकी समानताके

कारण किसीकी अनुभूति एकदम न्यारी नही हो सकती और दूसरी बात यह है कि तुलसीकी अनुभूतिके लिए 'विनयके पद' नही बल्कि उनके द्वारा चित्रित पात्रोके रागात्मक आवेशको देखना होगा। गीति-काव्यमे स्वानुभूतिका अर्थ अतः यह लेना चाहिये कि वह अनुभूतिको 'अपनी' कहकर उपस्थित करता है और अन्तर्वृत्तनिरूपक काव्यका तात्पर्य है कि कवि किसी अनुभूतिको 'अपनी' कहकर उपस्थित करनेमे सङ्कोच नही करता किन्तु उसके मानसिक उद्रेकका कारण वस्तु या आत्मनिष्ठ भावना है। अनुभूतिके मूलमे अतः पदार्थ (यहाँ वस्तु और भाव दोनोसे तात्पर्य है) हैं ऐसी अवस्थामे गीति-काव्यमे भी वाह्यार्थ निरूपक काव्य और स्वानुभूति निरूपक, वस्तुनिष्ठ और आत्मनिष्ठ, आब्जेक्टिव और सब्जेक्टिव कविताका भेद मिटता जाता है। सफल कवि अन्तर्दर्शन और सर्जनकी प्रक्रियामे दोनोको एकात्म रूपदेता है।

आह ! वेदना मिली विदाई;
मैंने भ्रमवश जीवन-सञ्चित
मधुकरियोंकी भीख लुटाई।

छल छल थे सन्ध्याके श्रमकण
आँसूसे गिरते थे प्रति क्षण
मेरी यात्रापर लेती थी—
नीरवता अनन्त अँगड़ाई।

चढ़कर मेरे जीवन-रथमें,
प्रलय चल रहा अपने पथमें,

मैंने निज दुर्बल पद-बलपर—
उससे हारी होड़ लगाई।

—प्रसाद

[स्कंदगुप्तमे देवसेनाका गीत]

निराशाभरा प्रेम-जीवनका चित्र है। 'प्रेम-पथिक'मे कविने प्रेमकी कसौटी दी थी—'अपने अस्तित्वको मिटा देना।' कविके प्रेम-जीवनका यह सदा आदर्श रहा है। आशा-उल्लासमे भरकर प्रेम-प्लावित, सरल कोमल नारी-हृदय आया था। चाह थी, जीवनको सरस, सुन्दर बना सकेगी किन्तु यहाँ वेदना विदाईमे मिली। जीवनकी जो आशाएँ युग-युगसे सञ्चित थीं, आज इस विदाईकी वेलामे खो गयी, कोई आशा नही, अवलम्ब नही। बदलेमे मिली वेदना, जिससे आविष्ट हो सन्ध्या आँसुओके मोती पिरोती है। एकाकी जीवन है, अनन्त पथ है, नीरवता ही आज सम्बल रह गयी है। मेरे जीवनको रथ बना प्रलय अपनी राह जा रहा है। जीवन आज प्रलयङ्कर वेदनाका वाहनमात्र है, उसपर नियन्त्रण नही, वह मनमानी करता है। हाय री बेबसी, जीवनपर भी अधिकार नहीं रहा। दुर्बल पैर हैं उधर प्रलय बह्निका आवेग है। यह अ-समान होड़ पराजयमे समाप्त होगी ही। जीवन इस प्रलयङ्कर व्यथाका आघात न सह सकेगा, न सह सकेगा। सब कुछ खो गया। जिसे पाकर सब कुछ पाया जा सकता था, जब वही नहीं मिला, फिर सम्बल कैसा, आशा कैसी? मनके द्वन्द्वका, सङ्घर्षका आशिक चित्र है। आत्म-निष्ठता और वस्तु-निष्ठताके समन्वयका कारण केवल यह नही मानता हूँ कि प्रसादने अपनी अन्तर्व्यथा देवसेनाके माध्यमसे प्रकट की है बल्कि इसलिए भी कहता हूँ कि वेदना व्यक्तिसे विभिन्न न होकर,

उसके आन्तरिक चेतनाका माध्यम बन बैठती हैं। वेदनाका कारण बाह्य अवश्य है जो सारी आशाओका केन्द्र है, वह बिछुड़ गया है फिर भी वह प्रियतम लक्ष्य नही, उपलक्ष्य मात्र है। वेदना इतनी आक्रान्त कर लेती है कि इसकी अनुभूतिके अतिरिक्त और चेतना बच नही रहती। इस वेदनाका स्रोत लालसा और हसरतके इस चित्रमें है। इसमे निराशा, आकुलता, पीड़ा, जलन, और दर्दकी करुण और वेदनायुक्त तस्वीर है—

चिर-तृषित कण्ठ से तृप्ति विधुर
वह कौन अकिञ्चन अति आतुर
अत्यन्त तिरस्कृत अर्थ-सदृश
ध्वनि कम्पित करता बार-बार
धीरेसे वह उठता पुकार
मुझको न मिला रे कभी प्यार।

स्वानुभूतिकी चर्चा करते समय 'फैशन' और प्रचलित परिपाटीपर विचार कर लेना आवश्यक-सा जान पडता है। परम्परागत काव्यकी सौन्दर्यहीनता देख प्रातिभ कवि उसका नया स्वरूप खड़ा करता है। इस प्रकार काव्य-क्षेत्रमें नवीन रूपात्मक आवेशका जन्म होता है। प्राकृत प्रतिभासे हीन नवोन्मेष का कारण काव्यकी रूपात्मक नवीनता समझ बैठते हैं, फल-स्वरूप जिस 'वाद' का जन्म होता है उसकी गन्दी धारा काव्य-जगत को आक्रान्त करने लगती है। गीति-काव्यकी नव-जागृतिके कारण साहित्य-स्फूर्तिकी जो चेतना मिली, 'फैशन' समझ अनेक हिन्दीके कवि (!) उसकी ओर लपक पड़े। साहित्यके किसी भी विद्यार्थीको इस प्रकारकी कविताओंके उदाहरण आजकी पत्र-पत्रिकाओमें मिल सकेंगे, ऐसा मेरा अनुमान है। ऐसे कवियोमें अनुभूतिकी तीव्रता और गम्भीरता

नही रहती, अनेक अवस्थाओमें तो सत्यता भी नही। अनुभूतीकी गहराई के अभावमे ऐसे कवि माध्यमकी अक्षमताकी ओट लेना चाहते हैं। उनका कथन सम्भवतः होता है,—'अभिव्यक्तिके माध्यमकी ओर न देखकर, अन्तर्वृत्तिको देखो।' संवेदन-शीलता का अभाव वहाँ माध्यम-की अक्षमतासे ही नही बल्कि अनुभूतिके अभाव अथवा छिछलेपनके कारण है। यह सम्भव है कि कविको उस अनुभूतिके छिछलेपन या अभावकी स्थितिका ज्ञान न हो और वह उसकी उपस्थितिको वास्तविक समझ रहा हो। अनुभूति और उसकी गम्भीरताके लिए अन्तःक्षोभकी तीव्रता अपेक्षित है। कला वास्तवमे न तो वस्तुगत हो सकती है और न आत्म-गत बल्कि दोनोके सम्यक् सन्तुलनमे ही कलाकी परिणति है, इस प्रकार विचार अथवा भावनामे तीव्र संवेदन शक्ति हो और कलाकारकी चेतना इतनी जागरूक हो कि वह उस संवेदनशीलताको आत्मसात कर सकनेकी अवस्थामें हो, कलाका जन्म होता है। सहसा यह हमे एक दूसरे प्रश्नके समक्ष ला खड़ा करता है। क्या कोई गीति-काव्यात्मक वृत्ति (Lyric mood) है?

गीतिकाव्यात्मक वृत्तिका अध्ययन और विचार इच्छा-शक्तिकी भूमिकामे रखकर करना होगा जो अनुभूतिको नियन्त्रित करते हैं और भावनाको बुद्धि-सम्मत आधार देते हैं। सहज विचारकी भाँति तर्कसम्मत विचार गीतिकाव्यके उपयुक्त नही। गीति-काव्य क्षणिक आवेश और अनुभूतिकी वाणी है। प्रकृत इच्छाशक्ति विवेक—शील इच्छा-शक्तिसे कहीं अधिक काव्यात्मक है किन्तु यह भी स्थूल भावात्मकता-के कारण देश-भक्तिकी कवितामे काव्यात्मक हो जाती है। सामान्य परि-स्थिति, विशेष वस्तु-स्थिति, अथवा मनुष्य वहीतक गीतितत्त्वके लिए उपा-देय है जहाँतक उनमें विशिष्ट अनुभूति उत्पन्न कर सकनेकी शक्ति है। यदि कविकी रागात्मक अनुभूति तीव्र और गहरी है, वह संवेदनशीलता

उत्पन्न करनेवाले विषयके प्रति उदासीन रहता है, उसके लिए मात्र उसकी अनुभूति ही सत्य होती है, कुछ वस्तु अथवा विषय नही। कुछ कम अन्तःक्षोभ उत्पन्न होनेपर सम्बद्ध वस्तु उसकी रागात्मक-अनुभूतिके अन्तर्बिम्बके साथ प्रतिफलित होने लगती है किन्तु यदि उसमे अत्यन्त क्षीण आवेग जग सका है, विषय और अनुभूतिके तारतम्यमे अन्तर आता रहता है। अन्तःक्षोभ या रागके अनुद्वेगके क्षणोमे यदि काव्य-रचना होती है कल्पना द्वारा रागात्मक आवेशके मौलिक क्षणोंसा अन्तःक्षोभ उत्पन्न नही होता; विषय स्पष्ट स्वरूप धारण कर उन गीतोमें प्रकट होता है, यद्यपि उसके अतिरिक्त कविकी अन्तर्वृत्तिके दर्शन भी उस काव्यमे होते है। जिस समय मनोविकार जगे नही रहते अथवा बहुत ही कम जगे रहते है, उस समयके काव्यमे काव्यगत मूर्त-विधान और वृत्तिमे विषय ही प्रधान रहता है। गीति-काव्यपर विचार करते समय साधारण रूपमे कविकी रागात्मिका वृत्तिको जाग्रत कर सकनेका सम्बन्ध देखना होगा। विषयकी अपेक्षा वहाँतक ही है जहाँतक उसमे इस सहज वृत्तिको जाग्रत और क्षुब्ध करनेकी शक्ति है। एक ही विषय विभिन्न व्यक्तियोमें विभिन्न प्रकारकी और विभिन्न मात्रामे अन्तर्वृत्ति क्षुब्ध करता है। पाठक अथवा कविके लिये अतः अथवा विषय वस्तु विशेष महत्त्व नही रखते। प्रेमीके लिए उसकी प्रेमिका अथवा प्रियतम ही मुख्य हैं, कारण उनके व्यक्तित्वका उसके लिये अधिक महत्वपूर्ण स्थान है। काव्यके लिए प्रियका व्यक्तित्व महत्त्वपूर्ण नहीं; बल्कि है रागात्मक (Content)। एक ही व्यक्तिमे एक ही वस्तु द्वारा विभिन्न रागात्मक वृत्ति जगती है। किसी अज्ञात वस्तुको देखकर पहले भय, बादमें विस्मय और तत्पश्चात् करुणा अथवा आकर्षणकी भावना जग सकती है। साधारण रूपमे सौन्दर्यके प्रत्यक्षीकरण द्वारा प्रेम, एवं उस

व्यक्तिकी मानसिक अस्थिरता द्वारा घृणा, उसे पीडामे देख करुणा, अपने आपपर क्षोभ आदि अन्तर्वृत्तियाँ जगती हैं। इस कथनका यह अर्थ नहीं कि प्रियतम द्वारा प्रेमीकी रागात्मक वृत्तियो अथवा शारीर गत वासनाओकी परितुष्टि नही होती बल्कि यह है कि वहाँ व्यक्ति महत्त्वपूर्ण है उसका रागात्मक तत्त्व गौण और गीतिकारमे यही प्रधान। इसके अतिरिक्त गीतिकारमे अभिव्यञ्जनाकी क्षमता है जिसका वर्णन अलग होगा। एक ही विषय अथवा वस्तु समान रूपसे सदा प्रभावित नही कर पाती किन्तु इतना स्पष्ट है कि मानसिक क्षोभ की चञ्चलता गीति-वृत्तिके लिए अपेक्षित है।

स्वानुभूतिके इस प्रसङ्गमे इसके कारणोके सम्बन्धमे विचार करना आवश्यक होगा। अनुभूतिकी तीन अवस्थाएँ है, पहली अवस्थामे यह सहजानुभूतिकी सूचिका है। दूसरी अवस्थामे इस सहजानुभूतिको स्वरूप देनेवाली शारीरिक एव मानसिक प्रक्रिया एव लक्षण प्रकट होते है। तीसरी अवस्थामे यह समाजके व्यक्तियोमे सह-अनुभूति अथवा विरोध उत्पन्न करती है और स्वयं उस व्यक्तिको अपनी वृत्तिकी नैतिक अवस्था, अपेक्षा अथवा तीव्रताका भान होता है। नैतिकता सभ्यता और संस्कृतिके फलस्वरूप है अतः कृत्रिम और अप्राकृतिक। इस प्रकार रागात्मिका वृत्ति वस्तुकी प्रकृतिकी सूचना नही देती बल्कि उस वस्तुसे क्षुब्ध हमारी मानसिक प्रतिक्रियाकी प्रकृतिकी। यह आत्म-बोध और नियन्त्रणका मार्ग खोलती है। गीति-काव्यमे अनुभूतिके इस आत्म-बोध और नियन्त्रणका कम प्रभाव नही है। प्राथमिक अन्तर्वृत्तिसे कम महत्त्व साहित्यमे प्रसुत (Derived) अनुभूतिका नही है। स्वानुभूतिकी कोटियोके कारण ही गीति-काव्य और उसके प्रभावकी मात्रामे अन्तर आता है। जिस कविमें अन्तःक्षोभ नही उत्पन्न हुआ है, वह वस्तुके अधिक-से-अधिक वर्णन द्वारा

पाठकमे अन्तःक्षोभ नही उत्पन्न कर सकता। प्रकृतिका अतः आलम्बन रूपमे वर्णन गीति-काव्यके उपयुक्त नही होता।

एक प्रश्नपर और विचार करना आवश्यक होगा। अनुभूतिका बौद्धिकतासे कितना सम्बन्ध है। गीति-काव्यके पहलूपर ही विचार करनेके कारण इस प्रश्नके दार्शनिक और मानसिक पहलुओपर विचार नही करूँगा। बौद्धिकताका मूल तर्क शक्ति है, इच्छा-शक्ति इसकी सहायिका होकर चलती है। मानसिक शक्तिको अनुभूति, इच्छा-शक्ति और बोध-वृत्तिके तीन विभागोमे विभक्त करनेका भ्रम सदासे होता आया है। व्यावहारिक अध्ययनके लिए सुविधाके विचारसे इस प्रकारका वर्गीकरण भले किया जाय वस्तुतः तात्त्विक रूपमे इन्हे एक दूसरेसे विछिन्न नही किया जा सकता। ऐसा वर्गीकरण mental abstraction (मानसिक आदान) मात्र है। 'गीति-काव्यमे अन्तर्वृत्ति passion मुख्य होती है, बोध-वृत्ति अथवा इच्छा-शक्ति गौण और उसका अंग मात्र। बोध-वृत्तिके द्वारा न तो अन्तःवृत्ति जग सकती है और न उसे तीव्रता ही मिल सकती है बल्कि रागात्मिका वृत्ति बोध-वृत्तिका प्रयोग अपने लक्ष्यतक पहुँचनेके लिए करती है। प्रेममे विचार-पूर्वक प्रियतमकी मङ्गल-कामना अथवा अपने प्रेमकी परितुष्टिका प्रयत्न हो सकता है किन्तु विचार और सोच करके किसीसे प्रेम नही किया जा सकता। आचार और नीति-शास्त्रका आधार यही बौद्धिकता है अतः रागात्मिका वृत्ति और इन शास्त्रोमे विरोध स्वाभाविक हो उठता है। अनुभूति आचार-नीति शास्त्रका बन्धन स्वीकारकर मृत हो जाती है, इनके द्वारा उत्पन्न नही हो सकती। केवल अपनी पत्नीसे प्रेम करनेका अदेश देनेवाला आचार-शास्त्र इस रागात्मिका प्रवृत्तिका ध्यान नही रखता। अनेक अंशोमे कवि काव्यमे अपने स्वप्न, आकाक्षा एवं प्रवृत्तिकी परितुष्टिकी चेष्टा करता है अतः आचार और नैतिकताका आग्रह उसके लिए बन्धन हो जाता

है। ऐसी अवस्थामे गीति-काव्यका आचार-शास्त्रीय आधार अनैतिक है किन्तु अनेक कवि सामाजिक मान्यताओको चरम समझकर उसका विरोध नही कर पाते, फलतः वैसे गीति-काव्यका जन्म होता है जिसे हम नैतिक कहकर पुकार सकते है। धार्मिकताका आग्रह नैतिकता और नैतिक भावनाके विरोधसे त्राण पानेका प्रयत्न है। राधा-कृष्णको काव्यगत आलम्बन स्वीकार करनेका अनेक अशोमे यही रहस्य है। नैतिक अनुभूति सहजानुभूतिका रूप धारण नहीं कर सकती अतः गीति-काव्यकी प्रकृत सीमाके अन्तर्गत नही पहुँच पाती। गीति-काव्यमे अनुभूति भावनाका रूप ग्रहण करती है निष्क्रिय बुद्धिवादिता वह वहन नही कर सकती।

स्वानुभूतिके सम्बन्धमे लिखा गया है कि सहजानुभूतिका उद्भव होता है, दूसरी अवस्थामे तद्सूचक मानसिक एवं शारीरिक लक्षण प्रकट होते है और तीसरी अवस्थामे सामाजिक प्रतिक्रिया तथा फलस्वरूप निजी दृष्टिकोणके विचारका तत्त्व प्राप्त होता है। अनुभूतिकी इन अवस्थओंके कारण गीति-काव्यके विकासपर बडा प्रभाव पड़ता है। गीति-काव्यमे समष्टिगत मानव-जीवनका जो व्यष्टिगत स्वरूप है, उसके पूर्ण चेतन क्षणोकी परिपूर्ण वाणी रहती है। उस अनुभूतिकी तीव्रताका कारण उसकी अन्विति और इकाई है। एक ही व्यक्तिमे एक ही वस्तु अथवा विषयके कारण क्रम-क्रमसे विभिन्न वृत्तियॉ जग सकती हैं। वृत्तिमे स्थायित्व नही होता, वे क्षणिक है, क्षणस्थायी है, किन्तु उनका व्यापक प्रभाव जीवन और उसकी चेष्टाओमे पाया जाता है। काल, देश और पात्रकी सीमामे आवृत्त जीवन क्षणोके इस निर्विशेष आवेशमे जीवित है। जिसे लोग पूर्ण विवेकशील जीवन कहते हैं, उसका पूर्णतः अभाव है। वर्ड्सवर्थने जीवनकी इसी अन्तर्वृत्तिका वर्णन किया—

We live by Hope......

जीवनके वास्तविक क्षणो और कलात्मक सृष्टिमे यही अन्तर है कि कलात्मक सृष्टिमे कलाकार उन क्षणोकी अनुभूतिको स्थायित्व और अपेक्षाकृत चिरत्व देनेका प्रयास करता है। गीति-काव्यमें अतः प्राथमिक अवस्थामे सकेत, व्यञ्जना अथवा प्रत्यक्ष कथन द्वारा विषय और विषय-जनित अनुभूतिके क्षणिक आवेशकी सूचना पाठकको मिलती है। ऐसी अवस्थामे अन्तःक्षोभ एव उसके कारणका स्पष्ट अथवा साकेतिक उल्लेख मिलेगा, इसे मैं 'प्रेरक' कहूँगा। प्रेरककी उपस्थितिमे कविकी अनुभूति जगती है। तर्क और विचार-शक्तियाँ लुप्त हो जाती है। विचार प्रेरणाका कारण नही रह जाता। सम्पूर्ण चेतना-शक्तिपर आकस्मिक अन्तःक्षोभ छा जाता है। अनुभूति, दूसरी अवस्थामे अपनी पूर्ण अवस्थामे पहुँचती है। इस अवस्थामे पहुँचनेके लिए वह कल्पनाकी सहायता ले सकती है। अनुभूतिका चरमोत्कर्ष क्षणिक होता है अतः पूर्णताके इन क्षणोके उपरान्त विचार-शक्ति क्रमशः लौटने लगती है और अनुभूति विचारका साहाय्य पाकर भावनाके रूपमे उपस्थित होती है। अनुभूतिकी अन्वितिका अर्थ यह है कि इन तीनो अवस्थाओंमें एक ही तारतम्यपूर्ण मानसिक स्थितिके दर्शन हो। साहित्य-शास्त्रोमे रस-दोषके प्रकरणमे वर्णित 'विरोधी रसके अङ्गभूत विभाव अनुभावादिकोका वर्णन करना, विभाव और अनुभावका कठिनतासे आक्षेप हो सकना, रसका अस्थान (अनुचित स्थान) मे विस्तार या विच्छेद करना, बार-बार उसे दीप्त करना*' आदि दोषोका आधार अनुभूतिकी

---

* परिपन्थि रसाङ्गस्य विभवादेः परिग्रहः।
आक्षेपः कल्पितः कृच्छ्रादनुभाव विभावयोः॥
अकाण्डे प्रथनच्छेदौ तथा दीप्तिः पुनः पुनः। —साहित्यदर्पण।

इकाई ही है। अनुभूतिकी इकाईमे तीव्रता लानेके लिए अन्य अनुभूतिका आक्षेप सम्भव है किन्तु उस अङ्गभूत अनुभूतिका चित्र सापेक्ष्यमूलक होना अनिवार्य है। गीति-काव्यकी इस अन्वितिसे तीसरी अवस्थाकी निष्णात भावनामे विचार, आस्था, सङ्कल्प और अन्तःक्षोभकी अनुद्वेग प्रवृत्तिका समन्वय हो पाता है। बुद्धि यहाँ अलग बैठी नहीं रहती अपितु भावना की सहचरी बन उसे स्थायित्व देती है।

प्रेरक—

प्रेरकके मूर्त्त-विधान द्वारा स्वल्प मानसिक प्रतिक्रिया	बह चली अब अलि, शिशिर-समीर ! काँपी भीरु मृणाल-वृन्त पर नील कमल कलिकाएँ थर-थर प्रात-अरुणको करुण अश्रु-भर लखती अहा अधीर !
तीव्र मानसिक उद्वेग और अनुभूतिकी गम्भी-रता	वन-देवीके हृदय-हारसे हीरक झरते हर सिंगारके, वेध गया उर किरण तारके विरह-रागका तीर !
भावना एवं बौद्धि-कताका सन्तुलित रूप	विरह परी-सी खड़ी कामिनी व्यर्थ बह गयी शिशिर यामिनी, प्रियके गृहकी स्वाभिमानिनी नयनोमें भर नीर।

प्रेरणाके लिए वाह्य उत्तेजनाकी ही चरम अपेक्षा नही। आन्तरिक कारणोसे अनुभूतिकी तीव्रता और अन्तःक्षोभ जग सकता है, किन्तु यह

अन्तःक्षोभ कल्पनाजन्य है, ऐसी अवस्थामे उस प्रकारकी पूर्वानुभूतिकी स्मृति उभर आती है। साहचर्यके नियमो द्वारा इसकी व्याख्या करनेकी चेष्टा की जाती है किन्तु प्रत्येक अवस्थामे उस 'मूड' अथवा वृत्तिकी उत्पत्तिका तर्कपूर्ण कारण बतलाया नही जा सकता। प्रत्येक मानसिक वृत्तिके उपयुक्त कायिक अभिव्यक्ति और परिवर्तन होता है। शोकमे आँखें गीली हो आती है। रक्त-सञ्चालन-क्रिया मन्द पड जाती है। चेहरा उदास हो जाता है। साँस जोरोसे चलने लगती है, मानसिक दीप्ति नही रहती। इस प्रकार मानसिक वृत्तिके अभावमे भी ऐसी परिस्थिति उत्पन्न कर लेनेपर कल्पना अपने उपयुक्त मानसिक वृत्तिका आधार खडा कर लेती है किन्तु उसके साथ यह शर्त सदा लगी रहती है कि वह पूर्वानुभूत हो अन्यथा कायिक स्थिति उत्पन्न कर लेनेपर भी मानसिक वृत्ति नहीं जगती। ऐसी अवस्थामे आकर वृत्तिका घटनासे साहचर्य छूट जाता है, और कल्पना उस वृत्तिके योग्य नवीन रूपकी योजना कर लेती है। अनुभूति-प्रधान रचना होनेके कारण ऐसी मानसिक वृत्तिमे रचित गीतिकाव्यमे इसका पूर्ण परिपाक हो पाता है, क्योकि जिस निस्सङ्गताकी अपेक्षा साहित्य-शास्त्रियोने मानी है, जिसे चर्वण भी कहते है, सम्भव है। इसी मानसिक वृत्तिको वर्ड्सवर्थने recollection in tranquility 'अनुद्वेगकी अवस्थामे अनुचिन्तन' कहा है। किन्तु सदा स्मरण रखने योग्य कि अनुभूतिकी तीव्रता और गम्भीरता नही आ पाती। इसलिए वर्ड्सवर्थमे गीति-काव्यात्मक प्रतिभाको अधिक उत्तेजना नहीं मिल सकी है। कबीर, तुलसी अथवा सूरके विनयके पदोमे इसीलिए तीव्रता नही आ सकी। सूर जहाँ गोपियोके विरहका चित्र उपस्थित करते है, वहाँ उनकी आत्मानुभूतिको गीतोमे विस्तार मिलता है, अतः जितनी प्रभविष्णुता उनमे है, उतनी अन्यत्र दुर्लभ है। जिन कवियोमें दार्शनिकताका मोह है, क्षणिक

स्वानुभूति प्रभाव डालती है किन्तु उनकी दार्शनिकता अन्तिम अवस्था तक पहुँचते-पहुँचते भावनाके स्थानपर आ उठती है और उनका गीत विचार-प्रधान हो उठता है। महादेवीमे ऐसा आवेश अधिक है। मै ऐसा नही कहता कि कवि जान-बूझकर चेतन अवस्थामें ऐसा करता है किन्तु ऐसा अचेतन रूपमें हो जाता है और स्वयं कविको इसकी सूचना नही रहती।

प्राण-पिक प्रिय नाम रे कह !
मैं मिटी निस्सीम प्रियमें,
वह गया बँध लघु हृदयमें;
अब विरहकी रातको तू,
चिर मिलनका प्रात रे कह !
दुख-अतिथिका धो चरण-तल,
विश्व रसमय कर रहा जल,
यह नहीं क्रन्दन हठीले !
सजल पावस मास रे कह !

\+ + + +

चल क्षणोंका क्षणिक सञ्चय,
बालुकासे विन्दु-परिचय,
कह न जीवन तू इसे
प्रियका निठुर उपहास रे कह !

—महादेवी

'चल क्षणो......उपहास रे कह'मे दार्शनिकताका यही मोह विहित है किन्तु एक बातका सदा स्मरण रखना चाहिए कि दार्शनिकताके आग्रह-से प्रारम्भकर दार्शनिकताकी परिणति दिखाना, दार्शनिकताका असत्य

आरोप अथवा क्रम-विकासकी हीनता और उसके स्वाभाविक विकासका अभाव यहाँ नही। ऐसा नही जान पडता कि महादेवीने बलपूर्वक दार्शनिकताका यह भार पाठकोके सिर लाद दिया है। जहाँ इस प्रकारका अस्वाभाविक आरोप होता है, वहाँ गीति-कविता कराह उठती है।

आकुलता साकार बन गयी
अन्धकार वसना सन्ध्याकी
सलज शिखाओंकी झिलमिलमें
सपनोंकी छविसे मदमाती
घुलमिल सुधके मलयानिलसे
पथकी अङ्कशायिनी कोमल
रज मोहन शृङ्गार बन गयी !
कहाँ शून्य अब रहा शून्य प्रिय !
छाया भर कैसे यह छाया ?
कहाँ द्वैत, जब मुझमें तुम
तुममें मैंने अपनेको पाया
आज सृष्टि मेरी श्वासोंसे
प्रलय-मुखर त्योहार बन गयी।

—प्रभात

प्रेरणाके रूपमे अन्तरवासिनी आकुलताका उद्रेक है। मन है उन्मन, उदास। कारण ज्ञात नही; यह उदासी तीव्र भी नही; मादक भी नही; लेकिन रह-रहकर कुछ खटक-सा उठता है, मन विरस हो जाता है; इस प्रकारकी मानसिक अवस्थामे कवि अनुभूति लानेकी चेष्टा करता है और उसकी यह उदासी आकुलतामे परिणत हो जाती है और कल्पना उस आकुलताको

और प्रगाढ़ बना देती है। 'अंधकार' से 'मलयानिल'तक उस अनुभूतिकी तीव्रता मिलती है, यह काल्पनिक आवेश टिकता नही और विचार उसे आक्रान्त कर लेता है। 'रज मोहक शृगार बन गयी' मे वह कहना चाहता है कि आत्माकी अ—रूपताको रज=मिट्टी=शरीरने रूप दिया और इस प्रकार परमात्मा-तत्त्व आत्मा रूपसे इस शरीरमे प्रतिष्ठित हो गयी। द्वैतमें आकर उसका दार्शनिकताका पूर्ण मोह प्रकट होता है, जहॉ अद्वैत-दर्शनकी प्रतिष्ठा करता हुआ वह दीखता है। इस प्रकारका दार्शनिक मोह स्वाभाविक विकासका फल न मालूम होकर सिद्धान्त रूपमे लदा हुआ बोझिल जान पडता है।

जहॉ अनुभूतिके साथ वस्तु अथवा उसकी अनुभूतिको जाग्रत करनेवाली वस्तु अथवा विषयका चित्र स्पष्ट रूपसे दीख पडे वहॉ समझना चाहिए कि उसकी अनुभूति अधिक तीव्र नही; अनुभूतिकी तीव्रताके समय मात्र अनुभूति सत्य रहती है, उसका साधन नही। साधनका चित्र ऑखोसे ओझल रहता है किन्तु अनुभूतिकी अपेक्षाकृत प्रशान्तावस्थामे विषय-चित्र भी उपस्थित हो जाता है।

> और चलीं तूफान फूँकती वे पथ-कन्याएँ सन्तप्त,
> जिनकी कृश जंघाओं पर संघर्ष मनाते थे उन्मत्त।
> जिनकी छातीके गड्ढोंपर दीप वासनाके जलते,
> जिनके नील कपोलोपर मतवाले गाहक मुख मलते॥

इन पक्तियोमे कविकी समवेदना और सहानुभूति-पूर्ण मनःस्थितिका सम्यक् परिचय मिलता है। इस वैयक्तिक अनुभूतिके मूलमे सामाजिकताका आरोप है किन्तु असवेदन-शील जीवनमे इस प्रकारकी पथ-कन्याएँ किसी प्रकारकी मानसिक प्रतिक्रिया नहीं उत्पन्न करती अतः कविके सवेदनात्मक

मनोवृत्तिमे किसी प्रकारका सन्देह नहीं हो सकता किन्तु इस मानसिक वृत्ति-के साथ ही विषयका स्थूल रेखाओमे घिरा चित्र यहाँ मिलता है। सवेदना कविकी अन्तर्वृत्तिको जहाँ समवेदना पूर्ण बनाती है, वहाँ दूसरी ओर तीव्रता के वेगको नियन्त्रित कर देती है। इसके मूलमे कविका दृष्टिकोण भी है, कारण दृष्टिकोण विचारमूलक है और विचार अनुभूतिको उद्वेगहीन करता है। लेकिन विषय और रागात्मिका अनुभूतिका सन्तुलन स्पष्ट सूचना देता है कि कविकी सहानुभूदि पन्तकी भाँति मात्र बौद्धिक नही बल्कि रागात्मक भी है। अन्तःक्षोभकी शान्तावस्थाके समय कल्पना द्वारा आवेश लानेमे कविकी वास्तविक प्रतिमाकी सूचना मिलती है, यदि इस प्रकारका सन्तुलित और संश्लिष्ट चित्र कवि दे सकता है जिसमे रागात्मिका अनुभूति विषयके अधीन नही हो पाती। यदि वस्तु अथवा विषय प्रधान हो उठे, उसे गीति-काव्य कहनेमें संकोच होना चाहिये।

भारत माता
ग्रामवासिनी।
खेतोंमें फैला है श्यामल
धूल भरा मैला-सा आँचल,
गङ्गा यमुनामें आँसू जल
मिट्टी की प्रतिमा
उदासिनी।

× ×

सफल आज उसका तप-संयम
पिला अहिंसा स्तन्य सुधोपम,
हरती जन-मन-भय, भव-तमभ्रम

जग जननी
जीवन विकासिनी ।

—पंत : भारतमाता

विषय-गत चित्र यहाँ इतना स्पष्ट है कि रागात्मिका अनुभूतिका उद्वेग उसके अधीन हो गया है, चित्र प्रधान है, अनुभूति गौण । वही पंतजी जब 'याद' मे—

"विदा हो गयी साँझ, विनत मुखपर झीना आँचल धर,
मेरे एकाकी आँगनमें मौन मधुर स्मृतियाँ भर !
× × ×
एक मधुरतम स्मृति पलभर विद्युत सी जलकर उज्वल
याद दिलाती मुझे, हृदयमें रहती जो तुम निश्चल !"

—गा उठते है अनुभूति प्रधान हो जाती है और संध्याका—

"वह केशरी दुकूल अभी भी फहरा रहा क्षितिजपर,
नव असाढ़के मेघोसे घिर रहा बराबर अम्बर'

—यह चित्र गौण ।'

अन्तःक्षोभ और रागात्मिका वृत्तिके अभावमे मात्र चित्र ही रह जाता है ।

रागात्मिका अनुभूतिकी इकाई और समत्व

गीति-काव्यके सम्बन्धमे विचार करते मैने ऊपर लिखा है कि **गीति-काव्यमें रागात्मिका अनुभूतिकी इकाई और समत्व अपेक्षित हैं** अन्यथा उसमें न तो संवेदनशीलता रह जाती है और न उससे उत्तेजना प्राप्त हो सकती है । इसके फलस्वरूप हम दूसरे निष्कर्षपर पहुँचते हैं ।

गीति-काव्य अतः जीवनके केवल एक पहलूका भावनात्मक चित्र उपस्थित करता है। सम्पूर्ण जीवन निष्क्रिय और शिथिल अभ्यासमात्र है। जीवन-क्रममे दो-चार क्षण ही ऐसे आते है, जब मनुष्यकी वृत्ति उन क्षणोके आवेशमे अन्तर्मुखी हो उठती है जिससे अन्तर्दर्शन और आत्म-निष्ठ चेतना-का उसमे विकास होता है। जीवनके लिए ऐसे क्षण ही महत्त्वपूर्ण हैं बल्कि मै तो ऐसा समझता हूँ कि जीवनमे ऐसे ही क्षण सत्य है और वे ही जीवन है, अन्यथा जिस क्रमको हम जीवन कहनेका मोह रखते है, उसमे अर्द्ध-चेतना अथवा चेतन-हीनताके अतिरिक्त और रखा ही क्या है? मार्क्सके उस आर्थिक सिद्धान्तका प्रभाव मुझपर है; कारण मै मानता हूँ आर्थिक समस्याओकी पेचीदगीमे पड़कर मनुष्य पिस रहा है, उसकी मान-वता मर रही है। आत्मोन्नतिके साधनो एवं अवसरकी अ-समानताके कारण प्रकृत-शक्ति-सम्पन्न व्यक्ति पूर्णतया विकसित न होकर समाजका आवश्यक अङ्ग नही बन पाता। आर्थिक समस्याको हस्तगत कर छोटा-सा समुदाय सम्पूर्ण मानवीय जीवनको आक्रान्त कर रहा है। मानवीय त्राणके लिए ऐसी आर्थिक समस्याका हल आवश्यक है। इसी जन-क्रान्तिमे मानव-जीवनका कल्याण निहित है किन्तु इसके साथ यह भी मानता हूँ कि आर्थिक विषमता ही मानव-जीवनकी एकमात्र समस्या नहीं और न केवल एकाङ्गी दृष्टिकोण रखकर मानव-कल्याणके पथपर आगे बढा जा सकता है। उसके जीवनमे अन्तश्चेतना और अन्तर्वृत्तिका प्रभाव है। मानसिक प्रति-क्रियाएँ सामाजिक आधार रखकर भी वैयक्तिक है। सहसा दीप्त हो उठनेवाले क्षणोके सवेदनशील आवेशमे ही मानवीय वृत्ति जीवित रहती है। गीति-काव्यमे कवि इन्ही क्षणोकी आवेग और उत्तेजनापूर्ण अनु-भूतिको कलात्मक रूप देता है। उपन्यासकी भाँति महाकाव्यमे सम्पूर्ण जीवनका विविध रग-रंजित चित्र रहता है। कथाका प्रवाह पाठकको क्षणो-

की ओरसे हटाकर नवीन दिशाकी ओर ले जाता है। अलङ्कारोकी योजना, चरित्र-निर्माणकी कुशलता, प्रकृति-सौन्दर्यके प्रत्यक्षीकरण, और शब्द-चमत्कारके कारण पाठकको मुग्ध करनेका पर्याप्त अवसर कविको मिलता है। कथा-प्रवाहमे बीचकी पक्तियाँ रह-रहकर चमक उठे, पाठकके रसास्वादनके लिए इतना ही पर्याप्त है। गीति-काव्य कहानियोकी भाँति है जिसमें जीवनके एक अङ्ग, कुल एक पहलूका चित्र है। उस विचार अथवा दृष्टिकोणको रूप देनेके लिए कहानी-लेखक कथानक और चरित्रका निर्माण करता है, गीतिकारके पास यह साधन भी नही; उसकी अनुभूतिको कथाका आधार प्राप्त नही। गीति-काव्य अनेक अशोमे रेखा-चित्रकी भाँति है। चित्रकी सम्पूर्णता उसे प्राप्त नही होती, मात्र कुछ रेखाएँ ही अभिव्यक्तिका माध्यम हैं। उन रेखाओमे इतना सङ्केत है कि आकृति स्पष्ट हो जाय, जहाँ एक रेखाके अभावमे चित्र अधूरा रह जाता है, वहाँ एक अधिक रेखा चित्रको विरूप कर देती है। प्रभविष्णुताके लिए कलाकारको अत्यन्त सजग रहना पडता है। जो लोग रेखा-चित्रकी कलाको आसान समझते है, वे भ्रममे है। केवल कुछ सस्पर्श ही चित्रको जीवन दे सकते है। उसी प्रकार गीति-काव्यमे अनुभूतिकी व्यञ्जना कुछ सङ्केतो द्वारा होती है। इन सङ्केतोंके प्रयोगमे अत्यन्त सावधानीकी आवश्यकता है, कही ऐसा न हो कि अधिक सङ्केतोके कारण रूप-विरूप हो उठे, अथवा पर्याप्त सङ्केतोके अभावमे चित्रका स्वरूप-विधान ही न हो सके। आज हिन्दीमे गीति-युग चल रहा है, जिसे देखिये कलमकी कूँचीसे नये चित्र उत्पन्न (सर्जन नही) करनेके आवेशमे है। अधिकाश आजके गीति-कवि महादेवी-के चित्रोकी रूपहीनता देख वैसे चित्रोके निर्माण करनेका प्रयत्न करते है। महादेवीकी अस्पष्टता आयास-कृत नही। इस अस्पष्टताके कारणोका विस्तृत विवेचन उपयुक्त नही। मैने 'आधुनिक हिन्दी-कविता'मे इसके विवेचनाकी

चेष्टा की है। यहाँ इतना सङ्केत करना अलम् होगा कि अस्पष्टताके मूल कवि-वृत्ति-प्रयास नहीं बल्कि उस क्रमके निर्देशका अभाव है जिसके द्वारा महादेवी अन्तिम निष्कर्षतक पहुँच जाती है। सीमान्त रेखाओके स्पष्ट नही रहनेपर मूर्त्त-विधानमें अस्पष्टता तो आती है किन्तु इन चित्रोको व्यापकता एवं विस्तार भी मिल जाता है। रङ्ग हलके रहते हैं, किन्तु ग्रहणशील मानसके लिए अक्षुण्ण प्रभाव रखते हैं; इतना इसके साथ ही स्वीकार लूँ कि महादेवीके इन चित्रोको ग्रहण कर सकना प्रत्येक पाठककी मानसिक शक्तिकी सीमाके भीतर नही है। मैं केवल यहाँ इतना ही कहना चाहता हूँ कि जीवनके एक पहलूका कलात्मक चित्रण गीति-काव्यमे रहता है लेकिन ऊपरकी विवेचनासे स्पष्ट है कि गीति-काव्य व्यक्तित्व-प्रधान अनुभूतिशील रचना है। जीवनके पहलूका स्थूल वर्णन गीति-काव्य-का विषय नही हो सकता। **गीति-काव्य अतः कविके मनपर पड़ने-वाले जीवनके एक पहलूके प्रभावकी सौन्दर्य-पूर्ण कलात्मक अभि-व्यक्ति है।** जिस प्रकार सूर्यकी अरुणाभ किरणे अन्धकारमे चमक उठती हैं उसी प्रकार दृश्य अथवा परिस्थिति सम्पूर्ण रूपमे एक बार चमक पड़ती है, जीवनके इस क्षणिक किन्तु आलोकमय दर्शनका रूप-विधान ही गीति-काव्यमे मिलेगा। इसी लिए जीवनकी समस्याओका तात्त्विक विवेचन अथवा तर्कपूर्ण हल गीति-काव्यमे नहीं उपस्थित किया जा सकता; किसी भी प्रकारकी कवितामे इसे उपस्थित किया जा सकता है, इसमे सन्देह है। किन्तु गीति-काव्यमे ऐसा नही किया जा सकता, इसमे किसी भी प्रकारका सन्देह नहीं। गीति-काव्य अतः मुख्यतया अन्तर्वृत्ति-व्यञ्जक और अनुभूति-प्रधान है।

स्वानुभूति और रसानुभूतिके 'स्व' और 'रस'के समन्वयपर विचार करना अपेक्षित है। 'स्व'से तात्पर्य है कविके राग-द्वेषात्मक आत्म-बोधसे।

इस आत्म-बोधका परिचय अन्तःक्षोभ और तज्जनित कायिक, मानसिक अभिव्यञ्जनमे है, उसे हम चाहे अनुभाव कहे या सञ्चारी भाव। इस मानसिक अवस्थामे आकर जिस स्थितिकी कल्पना है, उसमे रस-बोधके लिए स्थायित्वकी अपेक्षा है इस प्रकार मनोवृत्तिके प्रकृति-विकासमे और रस-प्रकृतिमे विरोध उत्पन्न होता है। दूसरी वस्तु है कि रसानुभूतिके लिए स्थायी भावकी विभाव, अनुभाव, सञ्चारी या व्यभिचारी भावोद्वारा अभिव्यक्ति होनी चाहिये। गीति-काव्यके प्रकृति-विधानमे इनके पूर्ण समावेशका स्थान नहीं; किन्तु इनका सङ्केत अवश्य मिल सकता है, इस प्रकार शास्त्रीय दृष्टिमे जिसे साहित्य-शास्त्री रसानुभूतिकी अवस्था मानते हैं, वह सभी गीतियोमे सम्भव नहीं हो सकती। स्थायी भावोकी सख्या नौ-रसोकी संख्याके अनुसार मानी गयी है—शृङ्गार-रति, हास्य-हास, करुण-शोक, रौद्र-क्रोध, वीर-उत्साह, भयानक-भय, वीभत्स-जुगुप्सा, अद्‌भुत्-विस्मय, शान्त-निर्वेद (शम्)*। काव्यप्रकाशकार शान्तको न रस और न निर्वेदको स्थायी भाव मानते हैं। स्थायीभाव वासना रूपसे स्थित सस्कार रूप मनोवृत्तिको कहते है निर्वेद ऐसी अवस्थामे जाग्रत् होनेपर निर्वेद नही रह सकता। गीति-काव्यमे अनुभूतिकी उद्वेग-भरी अभिव्यक्ति है अतः शान्त रसका स्थान कम-से-कम गीति-काव्यमे नही हो सकता। भक्तिपूर्ण गीतोमें 'निर्वेद' नहीं रहता बल्कि 'रति' भावनाका शोधित रूप आगे आता है। विचार और बौद्धिकताका संस्पर्श भी गीतोमे निर्वेद नही लाता। आठ रसोमे भी हास्य, भयानक, वीभत्स और अद्‌भुत् गीति-

* शृङ्गारहास्य करुण रौद्रवीर भयानकाः
वीभत्सोऽद्भुत इत्यष्टौ रसाः शान्तस्थता मतः।
रतिर्हासश्च शोकश्च क्रोधोत्साहौ भयं तथा
जुगुप्सा विस्मयश्चेत्थमष्टौ प्रोक्ताः शमोऽपि च। साहित्य-दर्पण

काव्यके अधिक उपयुक्त नही। देश-भक्ति-पूर्ण गीतियोमे रति-भावना अथवा वीरका निक्षेप ही समझना चाहिये। इस प्रकार गीत-काव्यके अधिक उपयुक्त शृङ्गार और करुण है, वीर और रौद्रका प्रयोग किया जाता है, हास्यका प्रयोग हो सकता है। वासना रूपसे स्थित मनोविकार जिस समय सजग हो उठता है रसोद्रेककी सामग्री उपस्थित होती है। करुणके व्यापक प्रभावका दर्शन हमने ऊपरकी पक्तियोमे किया है। वेदनाकी इस विवृत्तिका कारण वैयक्तिक और सामाजिक जीवनकी भूमिका है। आजका हमारा जीवन विरोधी तत्त्वोपर निर्भर करता है। यदि वर्तमानके अभावकी चेतना अतः असन्तोष और तद्जनित विषादकी अनुभूति है, तो भविष्यकी आशा अतः नवोन्मेष और उत्साह भी। जीवनका यह विरोधाभास गीति-काव्यमे चित्रित मिलता है। रस-बोधके लिए शास्त्रियोंने रस-मैत्रीका जो विधान किया है उसका शास्त्रीय पालन अनेक स्थानोमे नही मिलेगा। रस-मैत्रीके मनोवैज्ञानिक अध्ययनसे नये तथ्योका ज्ञान आजके संसारको हुआ है अतः इस प्रश्नपर नये सिरेसे विचार होना चाहिये। शृङ्गारका करुणके साथ विरोध माना जाता है; किन्तु गीतोमे इसके समन्वयके अनेक उदाहरण मिलेंगे। इसे करुण विप्रलम्भ कहकर भी हम टाल नही सकते। रसानुभूतिके लिए **"विभावानुभाव व्यभिचारि-संयोगाद्रसनिष्पत्तिः"** (भरत-सूत्र) कहकर भी एकमे अन्यका आक्षेप कर रस-व्यञ्जना स्वीकार की गयी है। गीति-काव्यमे रस-बोध इसी रूपमे स्वीकार करना पड़ेगा। रस-निष्पत्तिमे विभाव, अनुभाव और व्यभिचारीका भिन्न-भिन्न बोध होना बाधक है; ऐसी अवस्थामे गीति-काव्यमे प्रत्येकका पूर्ण वर्णन न तो सम्भव है और न आवश्यक ही। स्वानुभूति रस-बोधके लिए आवश्यक ही नही अनिवार्य है। संस्काररूपसे स्थित वासनाका आस्वादन स्वानुभूतिके आधारपर ही हो सकता है। पाठक अथवा

श्रोताकी कल्पनासे आशय यह है कि बाह्य परिस्थितियोंसे अपनी मनोवृत्तिको विच्छिन्न कर कवि प्रेषित अनुभूतिके उपयुक्त वह मानसिक स्थिति बनानेमे समर्थ है, यदि पाठक ऐसा नही कर सकता तो उसके लिए गीति-काव्य नाद और ध्वनिका समूहमात्र है। सवेदनशीलताके लिए पाठक और कविके बीच सम्बोध-सम्बन्ध रहना चाहिए। कविकी स्वानुभूति 'स्व' तक सीमित न रहकर 'पर' की सीमाको स्पर्श करने लगे, गीति-काव्यकी पूर्ण सफलता है। दृश्य-काव्यमे कथा-वस्तु, नाट्य-संगीतत्व, अभिनय, वेश-भूषा एव नाटकीय परिस्थितिके कारण रसोद्रेकमे कविको पर्याप्त सहायता मिल जाती है। सामाजिकमे रसोद्रेक स्वाभाविक हो उठता है। गीति-काव्यको यह सुविधा नही, उसे सारी परिस्थिति कुछ शब्दोके सहारे उत्पन्न करनी पड़ती है। ऐसी अवस्थामे शब्द-चयनमे उसे सावधान रहना पडता है, एक ओर जहाॅ उसके शब्दोसे झङ्कार द्वारा नादात्मक मूर्त्त-विधान होना चाहिए, वहाॅ उसमे चाक्षुषरूप-विधानका माध्यम बनानेकी शक्ति भी रहनी चाहिए।

क्या भूलूँ, क्या याद करूँ मैं!

अगणित उन्मादोंके क्षण है,
अगणित अवसादोके क्षण हैं,
रजनीकी सूनी घड़ियोंको, किस-किससे आबाद करूँ मैं!
क्या भूलूँ, क्या याद करूँ मैं!

याद सुखोंकी आँसू लाती,
दुखकी, दिल भारी कर जाती,
दोष किसे दूँ जब अपनेसे, अपने दिन बर्बाद करूँ मैं!
क्या भूलूँ, क्या याद करूँ मैं!

दोनों करके पछताता हूँ,
सोच नहीं पर मैं पाता हूँ,
स्मृतियोंके बन्धनसे कैसे जीवनको आजाद करूँ मैं!
क्या भूलूँ, क्या याद करूँ मैं!

—बच्चन : 'निशा-निमन्त्रण'से

इस गीतमे आलम्बन या उद्दीपन विभाव अथवा अनुभावका अभाव है। केवल सञ्चारियो द्वारा करुणरसकी व्यञ्जना हो रही है। सञ्चारियोका स्पष्ट कथन रसदोष गिना जाता है। ("रसस्योक्तिः स्वशब्देन स्थायि सञ्चारिणोरपि—," दोषा रसागतामताः" साहित्यदर्पणः) इसमे 'उन्माद'के कारण स्व-वाचकत्व दोष शायद लोग मानें, किन्तु 'उन्माद'का उन्मादोके रूपमे प्रयोग अपने अर्थमे न होकर समान अवस्थाओके प्रतिनिधि रूपमे हुआ है। 'क्या भूलूँ, क्या याद करूँ'मे वितर्क, 'किस-किससे आबाद करूँ'में चिन्ता, विषाद, जडता, स्मृति, मोह, ग्लानि आदि सञ्चारियोकी व्यञ्जना द्वारा करुणरसकी ध्वनि यहाँ है।

रसबोध और उसका कारण

रस-बोधकी गहराई एवं चमत्कारका अनुमान 'आह' अथवा 'वाह'के आधारपर नही किया जा सकता। अद्भुत्को ही एकमात्र रस माननेवाले चमत्कारको ही सार रूपसे प्रतीत होना मानते है :—

रसे सारश्चमत्कारः सर्वत्राप्यनुभूयते
तच्चमत्कारसारत्वे सर्वत्राप्यद्भुतोः रसः।

[सब रसोमे चमत्कार, सार रूपसे प्रतीत होता है। और चमत्कार

(विस्मय)के सार रूप (स्थायी) होनेके कारण सर्वत्र अद्भुत् रस ही प्रतीत होता है।]

अद्भुत् रसको ही व्यापक रस माननेका कारण चमत्कार और विसय-का एकीकरण हुआ। चमत्कार विस्मयकारी हो सकता है किन्तु दोनो एक नही। व्यञ्जनाकी मूल भित्ति इस चमत्कारपर ही निर्भर करती है। गुण 'अर्थ'का चमत्कार है, रीति शब्दका चमत्कार है, अलङ्कार आवश्यकतानुसार शब्द और अर्थ दोनोका चमत्कार है, ध्वनि अथवा रस सम्पूर्ण काव्यका चमत्कार है। जिसे आधुनिक अर्थमे वाक्य कहा जाता है, उसमे इसकी प्रतीति नही हो सकती, अतः 'वाक्य रसात्मक काव्यं'मे वाक्यको विश्वनाथके शास्त्रीय अर्थमे ही लेना पड़ेगा। रसानुभूतिका आधार जहॉ एक ओर सस्कार रूप सस्थित वासना है, वहॉ दूसरी ओर सहृदयकी चमत्कृत हो सकनेकी क्षमता भी। इस प्रकार रस-बोध प्रत्येक व्यक्तिमे समानरूपसे नही होता बल्कि अनेक व्यक्तियोको रस-बोध होता है, इसमें भी सन्देह है। 'ब्रह्मानन्दका अनुभव बिरले योगिराज ही कर सकते हैं उसी प्रकार रसका आस्वादन भी सहृदय जन ही कर सकते है।'* [पुण्यवन्तः प्रपिरावन्ति योगिवद्रस सन्ततिम्]। सस्कार रूप-वासना प्रत्येक मनुष्यमे होती है, यह कोई आवश्यक नही कि सभी मनोविकार समान रूपसे हो। सहजवृत्ति मानवीय विकासकी परम्पराका फल है इन सहज वृत्तियोके आधारपर ही अनुभूति टिकती है। वासनाके स्थित रहनेपर भी चमत्कृत होनेकी शक्ति अपेक्षित है। चमत्कारके ही द्वारा रसकी प्रतीति होती है अन्यथा प्रेम, शोक आदि मनोविकारोकी सज्ञाओसे ही रसानुभूति हो जाती। स्व-वाच्यत्व दोषका मूल आधार यही है, कारण नामोच्चारण द्वारा किसी प्रकारका चमत्कार उत्पन्न नही होता। गीति-काव्यमे प्रभविष्णुता-

---

* काव्य कल्पद्रुम (प्रथम भाग) पृ० १७६

के लिए इसी चमत्कारकी आवश्यकता है यद्यपि इसका प्रयोग 'विस्मय'के अर्थमे नही हुआ है। पर चमत्कार, शब्दगत, अर्थगत, शब्दार्थगत और सम्पूर्ण वाक्य (शास्त्रीय अर्थमे)—गत हो सकता है। एककी प्रधानतासे उसी प्रधान वस्तुके अनुसार नामकरण किया जा सकता है। शब्द-चमत्कार नादात्मक है। संगीतमे यह चमत्कार गायककी कुशलतापर निर्भर करता है। शब्दोका नाद इस प्रकारका होता है कि शब्द झकृत मालूम पडते हैं और सुनायी पड़नेके बाद भी उनकी गूँज कानोमे बनी रहती है। अर्थगत चमत्कार सहृदयको इस मनोदशामे ला देता है जिसमे वाक्यगत चमत्कार उसकी पूर्ण मानसिक वृत्तिको आक्रान्त कर सके। यह चमत्कारका व्यावहारिक दृष्टिकोणसे विश्लेषण है, मै इसे स्पष्ट रूपसे स्वीकार करूँगा कि उच्चकोटिके गीति-काव्यमे इनका प्रभाव भिन्न-भिन्न न पडकर एक साथ पडता है, और यह अन्य काव्यके लिए भी उतना ही सत्य है। रसानुभूतिका मूल तत्त्व यही है। काव्यमे व्यापक प्रभावका कारण भिन्न-भिन्न प्रकारके मानसिक बिम्बोका समन्वय है। शब्दोकी आवृत्ति द्वारा चाक्षुण और शब्दोके नाद द्वारा श्राव्य मूर्त्त-विधान होता है ; अतः इन दोनो बिम्बोका समन्वय काव्यको नवीन उत्तेजना देता है।

सौन्दर्यिक कल्पना और सौन्दर्य-बोध

सौन्दर्य जैसे पारिभाषिक शब्दोका प्रयोग अनेक स्थानोपर हुआ है, अतः इसकी विवेचना अध्ययनके लिए उपयोगी सिद्ध होगी। सौन्दर्यके सम्बन्धमे मैंने 'कलाका मूल्याङ्कन' शीर्षक निबन्धमे लिखा है—

"सौन्दर्य क्या निरपेक्ष है? सौन्दर्य-बोधको विज्ञानके क्षेत्रमे प्रवेश दिलानेवाले क्रोसेके अनुसार राग-द्वेषात्मक, सुख-दुःखात्मक अनुभूतिके

अतिरिक्त सौन्दर्य-बोधकी अनुभूति मनुष्यमे है। कलावादी सत्य और शिवको परे खींचकर सौन्दर्यको समक्ष उपस्थित करता है। प्रश्न यह नही कि मनुष्यमे सौन्दर्य-बोध है अथवा नही ; अथवा सौन्दर्य-विषयक स्वतन्त्र सहज-ज्ञान उसमे है अथवा नही, बल्कि यह है कि अन्य अनुभूतिके अन्तर्गत इसकी अन्तर्भावना है अथवा नही , एव इसकी स्वतन्त्र स्थितिकी सम्भावना है क्या ? अथवा इस प्रश्नको इस प्रकार भी उपस्थित किया जा सकता है कि सौन्दर्य साधन है अथवा साध्य ? सौन्दर्यकी हेतुक वासना अथवा अन्यथा है। उषाका स्वर्णिम हास, ज्योत्स्नाका रजत-विलास, निर्झरीका उन्मुक्त सगीत अथवा रूपसीके विह्वल अंग-विलासमे सौन्दर्यकी भावना आनन्दोद्रेकका आधार है, सौन्दर्यके सहज-बोधके आधारपर टिकी सौन्दर्यानुभूतिमे स्थायित्व नही (किसी भी प्रकारकी अनुभूतिमे स्थायित्व नही) ; चिन्तन और कल्पनाके द्वारा ही आनन्दोपलब्धि सम्भव है, और इसे ही सस्कृत साहित्य-शास्त्री 'चर्वण' कहते है और वर्डस्वर्थका Recollection in tranquility सम्भव है, इसके साथ व्यक्तिकी निजी अनुभूति सम्बद्ध है, जिसके कारण सौन्दर्यानुभूतिमे तीव्रता आती है। सौन्दर्यानुभूतिके निरपेक्ष सिद्धान्तको स्वीकार करनेमे हमे किसी प्रकारकी द्विधा नही होती, यदि सौन्दर्यकी स्थिर भावना होती और सुन्दर कही जानेवाली वस्तुसे सभीको समान रूपसे अनुभूति होती। देश-काल-पात्रकी विभिन्नतासे सौन्दर्य-भावनामे अन्तर होता है।" सौन्दर्यकी स्थिर भावनाके अभावमे भी सौन्दर्य-बोध स्वतन्त्ररूप रख सकता था किन्तु "सौन्दर्यानुभूति वस्तुतः रसानुभूति और आनन्दानुभूतिका मूल है ; इस आनन्दानुभूतिका विश्लेषण हमे करना पडेगा। आनन्द मनकी एक अवस्थामात्र है। आनन्दको उच्च और निम्न श्रेणीमे विभाजित करनेका कारण आनन्दकी मात्रा एवं गहराई नही,

उसके गुण नही, बल्कि नैतिक तत्त्वोका आगम है। नैतिकताकी भावनामे सामाजिकताका आरोप है। सामाजिक भावनाएँ, जो राजीनतिक, धार्मिक, आर्थिक कारणोसे उत्पन्न हुई है, नैतिकताको ऊपरी सतहपर लाती है। इस प्रकार आनन्दानुभूतिका विचार करते समय पात्र विशेषकी स्थिति —दिक् और काल—का ज्ञान आवश्यक होगा। आनन्दानुभूति मनुष्यकी चेतनाका फल है और स्वयं चेतनाकी सृष्टि- स्वच्छन्द और अनियन्त्रित नही।" इस प्रकार सौन्दर्य-बोध किसी भिन्न रूपमे सामने नही आता। सौन्दर्य-बोध और सौन्दर्य-भोग दोनो एक ही नहीं है। भोगके क्षणोमे वृत्तिकी एकाग्रता सौन्दर्यके स्वरूप-निरूपण अथवा व्याख्या एवं रसानुभूति नही होती। भोगके क्षणोंका आनन्द मानसिक कम शारीरिक अधिक है। शारीरिक tension तनावके शिथिल होनेके कारण शिथिलताजन्य आनन्द एक और ही प्रकार है। कल्पना-जगत्मे सम्भोगेच्छाकी सम्पूर्तिमे कायिक उपस्थितिकी परिकल्पना एवं उस प्रकार उस तनावमे शिथिलीकरणका सन्निवेश हो जाता है। किसी वस्तुमे सौन्दर्य है इसका केवल इतना ही अर्थ है कि उस वस्तु-विशेष द्वारा हमारी सौन्दर्यात्मक वृत्तियाँ परितुष्ट होती है। सौन्दर्य विषय और द्रष्टाके सम्बन्धपर निर्भर करता है। निराकाक्ष सौन्दर्यकी कल्पना भी सम्भव नही। रागात्मक आवेश आनेपर ही सौन्दर्यकी कल्पना सम्भव हो सकती है। इस प्रकार गीति-काव्यमे सौन्दर्य-बोधका आधार इतना ही है कि मानवीय सौन्दर्य-वृत्तिकी परितुष्टि इसके द्वारा होती है। गीति-काव्यका विधान सौन्दर्यिक है; किन्तु इस सौन्दर्य शब्दका प्रयोग इसके व्यापक रूपमे हुआ है। सौन्दर्य केवल विषयमें ही नही; बल्कि शब्द, संगीत, अर्थ, भावना आदि सभी वस्तुओमे है और उसे प्रत्यक्ष करना गीतिकारका लक्ष्य है। कलाकार

---

१ पारिजात (प्रथम संख्या) पृ० ९२

और साधारण व्यक्तिमे मात्र इतना अन्तर होता है कि कलाकार वस्तुके अन्तर्निहित सौन्दर्यको परख लेता है और उसे जन-साधारणके समक्ष उपस्थित करता है, उस समय पाठक अथवा दर्शक चमत्कृत हो उठता है और सहसा बोल उठता है, 'अरे यह सौन्दर्य तो मैने देखा न था !' इस प्रकार सहृदय और सौन्दर्य-बोधके बीच कलाकार माध्यम बन जाता है। सौन्दर्य-बोधकी सहज-वृत्ति और सौन्दर्यसे प्रभावित होनेकी क्षमताके अभावमे किसी सौन्दर्यका प्रत्यक्षीकरण नही हो सकता। साधारण भाषामे जिसे लोग कलाकारकी अभिनव सौन्दर्य-रचना कहकर प्रशंसा और स्तवनका ढेर लगा देते है, वह वास्तवमे उस वस्तुके अन्तर्निहित सौन्दर्य-का आत्मनिष्ठ प्रत्यक्षीकरण है, कारण सौन्दर्य वस्तुनिष्ठ नही, नितान्त आत्मनिष्ठ भी तो नही , किन्तु दोनोकी प्रवृत्तिके सामञ्जस्यके कारण है। इस प्रकारका निरूपण भी सौन्दर्यिक कल्पनाके अभावमे नही हो सकता। कला विषयको रहस्यात्मकता प्रदान करती है, रहस्यात्मकता शब्दका प्रयोग यहाँ रहस्यवादिताके अर्थमे नही हुआ है। रहस्यात्मकता प्रदान करनेका यह अर्थ होता है कि कला-विषयको apprehend अनुमित करना होता है। इतिहास जहाँ तथ्यका वर्णन कर चुप हो जाता है, कला सत्याभास उत्पन्न करती है। इस प्रकारके सत्याभासके मूलमे वही सौन्दर्यिक कल्पना है। गीति-काव्य अनुभूति और अभिव्यञ्जना-प्रधान है; आनन्दानुभूतिका आधार अभिव्यक्तिके चमत्कारमे है और चमत्कार सौन्दर्यका आधार है; जो साधारण है, सामान्य है, उसमे सौन्दर्य नही ; बल्कि सौन्दर्यकी स्थिति इस जन-रवसे भिन्न रहती है जो साधारण नहीं, जो सामान्य नही, वह सुन्दर है। सौन्दर्य-बोध चेतनागत आकाक्षाकी सम्पूर्ति और रागात्मक अनुभूतिके आधारपर होता है। 'Beauty is truth and truth beauty' 'सत्य सौन्दर्य है, और सौन्दर्य

सत्य'के मूलमे सत्यको सौन्दर्यात्मक रूपमे रखनेका अभिप्राय निहित है।

गीति-काव्यकी उपर्युक्त विवेचनामे रागात्मक आवेश और रसानुभूतिकी विस्तृत चर्चा की गयी है, इसमे हमने देखा है कि गीति-काव्यकी अन्विति और इकाईका आधार रागात्मिका अनुभूतिका अविच्छेद रूपमे एक रहना है। इसका प्रभाव अपेक्षाकृत क्षण-स्थायी है, कारण रागात्मक आवेशकी अवधि भी सीमित और परिमित है। गीति-वृत्तिका आधार पूर्णतः आत्मनिष्ठ है किन्तु इसका आवेश और आवेग वाह्यज हो सकता है। 'विषयकी विशिष्ट स्थिति गीतिकारके मानसमे विशिष्ट प्रतिक्रिया उत्पन्न करती है और उस मानसिक आवेशको बन्दी करनेका प्रयास गीति-काव्यमें होता है।

पीला चीर कोरमें जिसकी
चकमक गोटा - जाली
चली पियाके गाँव उमरके
सोलह फूलोंवाली ।

—दिनकर

सरकाती-पट
खिसकाती-लट—
शरमाती झट
नव नमित दृष्टिसे देख उरोजोंके युग घट !

—पन्त

\+ + +

वह मगमें रुक
मानो कुछ झुक

आँचल सँभालती, फेर नयन मुख
पा प्रिय की आहट;

—पन्त

परिस्थिति एवं वस्तु विशेष अथवा सादृश्यके कारण, जिनका कविके लिए और कोई दूसरा महत्त्व नही, कोई विचार, अथवा स्वानुभूतिके आलोकित क्षणका उन्मेष गीति-काव्यका सर्जन करता है। विषय-विशेषका अपना कोई महत्त्व नहीं होता, उसके महत्त्वका कारण कविकी सवेदनशीलता जाग्रत् करनेमे है; अधिकाश गीति-काव्यका जन्म इसी अवस्थामे होता है।

आज मुझसे दूर दुनिया !
+ + +
वह समझ मुझको न पाती,
और मेरा दिल जलाती,
है चिताकी राख करमें, माँगती सिन्दूर दुनिया !
आज मुझसे दूर दुनिया !

—बच्चन

शलभ मैं शापमय वर हूँ, किसीका दीप निष्ठुर हूँ !
ताज है जलती शिखा
चिनगारियाँ शृंगार-माला,
ज्वाल अक्षय कोष सी
अंगार मेरी रङ्गशाला;
नाशमें जीवित किसीकी साध सुन्दर हूँ !

—महादेवी

अथवा

अलि, घिर आये घन पावसके ।
लख ये काले-काले बादल,
नील सिन्धु में खुले कमल-दल,
हरित ज्योति, चपला अति चञ्चल
सौरभ के रसके—
अलि घिर आये घन पावस के ।
× × ×
छोड़ गये गृह जबसे प्रियतम
बीते अपलक दृश्य मनोरम,
क्या मैं हूँ ऐसी ही अक्षम,
क्यों न रहे बसके—
अलि घिर आये घन पावसके । —निराला

पावसके घनकी यथार्थता एकाकीपनके भाव, ग्लानि, शोक, तर्क आदि भावोंके जाग्रत् कर सकनेमे है । जहाँ विषय स्वतन्त्र रूपमे उपस्थित होता है, अथवा जहाँ विचार रागात्मक प्रभावके विरुद्ध आ खड़ा होता है वहाँ गीति-काव्यकी अन्विति नष्ट हो जाती है । यहाँ रागात्मक साहचर्यका अर्थ केवल उसकी समानतासे नही लेना चाहिये । साहचर्यके नियम (Law of Association) द्वारा यह प्रभाव नियन्त्रित होता है । साधर्म्य, सारूप्य और वैधर्म्य द्वारा चित्रोमे प्रभाव आता है और रागात्मक अनुभूति जाग्रत् होती है ।

रविने अपना हाथ बढ़ाकर
नभ-दीपोंका तेज लिया हर,
जगमें उजियाला होता है, स्वप्नलोकमें तम छाता है ।

संसारका प्रकाश स्वप्न-लोकके अन्धकारका कारण बन जाता है। यहाँ प्रभाव वैपरीत्यके कारण है। इस प्रकार गीति-काव्यकी परिणति रागात्मक आवेशकी अन्वितिमे है। सामयिक पत्र पत्रिकाओमे प्रकाशित गीति-काव्य-मेंसे अधिकाशमे इस अन्वितिपर ध्यान नही रखा जा सकता।

गीति-काव्यकी अनिवार्य प्रकृतिका सम्बन्ध अतः कविकी अन्तर्वृत्ति, अथवा आकाक्षासे है। कवि अपनी अन्तर्वृति रागात्मक अनुभूति एवं कल्पनाके सहारे विषय अथवा वस्तुको आदर्श, मुझे भावात्मक कहना चाहिये, बना देता है। वस्तुकी निरपेक्ष अपेक्षा कभी जीवनमे नहीं, आवश्यकता एव पूर्तिकी सम्भावनाकी मात्राके अनुसार वस्तुका मूल्य है। भावनाओ एवं विचारोके सम्बन्धमे भी यह कथन उपयुक्त है। ऐसी अवस्थामे विषयका महत्त्व कविकी भावनाका माध्यम बननेमे है। विषयकी अन्तर्भूत भावनाके दर्शनके लिए सूक्ष्म दृष्टिकी आवश्यकता है, किन्तु इस सम्बन्धमे सदा स्मरण रखने योग्य है कि वस्तुसे अनुभूतिकी ओर नही बल्कि कवि अनुभूतिके अनुरूप विषय चुनता है। प्रकृतिके विशाल प्राङ्गणमे अनेक उपकरण हैं, उसके सामने सारा ससार फैला है, उसकी दृष्टि इस विस्तृत भूमिकाकी किसी एक विशिष्ट वस्तुपर अटक जाती है, और उसकी अन्तर्वृत्तिको अभिव्यञ्जनाके लिए एक माध्यम मिल जाता है। यही कारण है कि एक ही वस्तुसे विभिन्न मानसिक प्रतिक्रियाएँ होती है। गोपालके विरहमे आनन्ददायिनी कुञ्जे 'बैरिन' हो जाती हैं। जल-धर जहाँ मिलनके क्षणोमे आनन्दाश्रु बहाते हैं, वहाँ वियोगके क्षणोमे अग्नि-वर्षा करते हैं, अतः स्पष्टतया कवि अपनी अनुभूति और भावनाके अनुरूप विषयको रँग देता है, ऐसी अवस्थामे आकर वाह्य, उत्तेजना—जी चाहे विषय कहिये—के साथ कविकी अन्तर्वृत्ति अभिन्न हो जाती है, वह उस तादात्म्यको प्राप्त कर लेता है जिसके कारण विषय और द्रष्टामे अन्तर नही रह जाता, जहाँ गायक

और गेय एकाकार, एकात्म हो जाते है । गीति-काव्यकी पूर्णता और सफलताका यही रहस्य है । जहाँ कवि विषयके साथ तादात्म्यका अनुभव नही करता, वहाँ गीतिकाव्य नही हो सकता, और किसी दूसरे काव्यकी रचना चाहे वह कर ले । गीति-काव्यकी सफलताका रहस्य जैसा मैने ऊपर लिखा है, अनुभूतिकी अन्वितिमे है, अतः अन्तर्द्वन्द्वका रूप इसमे प्रकट नही हो सकता । अन्तर्द्वन्द्वमे भावनाका भावनाके साथ द्वन्द्व है । भ्रम वश मनुष्य अपनेमे एक ही व्यक्तित्व मानता है, जिसे हम अन्तरात्मा कहते हैं, वह भिन्न व्यक्तित्वका सूचक है । अन्तर्द्वन्द्वमे अन्तरात्मा, या सस्कार अन्य-भावनाका विरोध करता है । अन्तरात्मा सस्कारका फल है । नाटकमे इस अन्तर्द्वन्द्वका प्रमुख स्थान है । वहिर्द्वन्द्वको उसकी पीठिकाके रूपमे होना चाहिए अतः नाटक, उपन्यास अथवा महाकाव्यमे इस सङ्घर्षका स्थान प्रमुख है बल्कि सङ्घर्षके अभावमे इनमेसे कोई टिक नही सकता । गीति-काव्य सङ्घर्षको नही समन्वय और सन्तुलनको देखता है, विज्ञान और काव्य-मे उद्देश्य लेकर विरोध नही बल्कि पद्धतियोका विरोध है । गीति-काव्य कविताकी कविता है, इसलिए इसमे अन्तर्द्वन्द्वकी अभिव्यञ्जना नही बल्कि भावनाके सामञ्जस्यका रूप उपस्थित होता है, रागात्मक उत्तेजना अथवा प्रेरणाके समय उसकी मीमासाका समय नहीं रहता, ऐसी अवस्थामें भावनाओके सङ्घर्षका अवसर कहाँ ?

गीतिकार आवेशके क्षणोको वाणी देता है, आवेशके क्षण स्थायी नही; आभ्यासगत जीवनमे ऐसे क्षणोका ही मूल्य है । ऐसे क्षण जीवनमें इसलिए आ पाते हैं कि मानसिक स्थिति प्रभावित होनेके लिए तैयार है । शान्त ज्वालामुखी पर्वत हलके कम्पनके द्वारा विक्षुब्ध हो उठता है और उसका विस्फोट समीपस्थ स्थानको आक्रान्त कर उठता है ; वहाँ भी ज्वाला उसे उभाडनेके लिए एक मधुर स्पर्श मात्रकी अपेक्षा थी, कविकी

मानसिक स्थिति उस रूपमे रहती है। वैसी अवस्थामे कविकी अनुभूति पूर्ण-तया आत्मनिष्ठ है और एकान्तिक है। ऐसी अवस्थामे पाठक या श्रोतापर पडनेवाले प्रभावका कारण क्या है? साहित्य-शास्त्रके अनुसार काव्यके व्यापक प्रभावका कारण साधारणीकरण द्वारा अनुभूति अथवा भावनाको व्यक्ति-विशेषका न बना, अधिक-से-अधिक लोगोका बनाना है। दोनोमे यहाँ विरोध नही विरोधाभास मात्र है। साधारणीकारण द्वारा कवि अपनी भावनाको विस्तृत क्षेत्र देता है, गीति-काव्यमे, अन्य उपकरणोसे प्रभविष्णुता मिलनेपर भी प्रभावका कारण रागात्मक आवेशकी अक्षुण्णताके साथ उसका सामान्य रूप ही है। अनुभूति वैयक्तिक होकर भी सहृदयकी है। प्रेम, घृणा, ईर्ष्या, द्वेष, शोकके कारणोमे भिन्नता होती है, अनुभूतिमे अन्तर रहता है किन्तु सामान्य धर्मके कारण अनुभूतिमे एकात्मभाव भी है। पाठक वहाँ दूसरेके प्रेम-व्यापारके कारण प्रभावित नहीं होता बल्कि कवि-द्वारा वर्णित विषय उपलक्ष्य मात्र हो जाता है और स्वयं उसकी अनुभूति आ जुटती है। इस प्रकार गीति-काव्यमे सामान्यको विशेष और विशेषको सामान्य रूप प्राप्त होता है।

विधान

कला अभिव्यक्ति है, मानवीय आकाक्षाओ, स्वप्नो और विचारोकी अभिव्यक्ति है। माध्यमके कारण इस अभिव्यञ्जनाकी अपनी सीमाएँ है, जहाँ विषयको अभिव्यक्ति प्राप्त होकर विस्तार पानेका अवसर मिलता है, वहाँ उसे सीमाओकी परिधिमें सिमटना भी पड़ता है। सीमाका बन्धन अङ्ग-सङ्कोचका कारण बन जाता है। विचार एवं अनुभूतिके सौन्दर्य और चमत्कारके लिए उसकी संवेदनशीलता और प्रभविष्णुताके लिए, इस सीमा-का विस्तार नही बल्कि इनसे स्वतन्त्रता अपेक्षित होती है। विचारोके लिए अतः कल्पना और सहानुभूति ही नही उनके उपयुक्त शब्द चमत्कार एवं

नाद-सौन्दर्यकी भी अपेक्षा है। यह विषय काव्य-विधानके अन्तर्गत आता है। भावना और विधानके सम्बन्धकी विस्तृत परीक्षा यहाँ अपेक्षित नही। छन्दोंके विरुद्ध हिन्दीमे एक आन्दोलन उठ खड़ा हुआ था, इस विवादका इतिहास भी हमारे अध्ययनके लिए आवश्यक नहीं। यहाँ इतना निर्देश कर देना आवश्यक है कि छन्द ही विधान नही है, यद्यपि उसका एक अङ्ग अवश्य है। विषय (matter) और विधान (form) के रूपमे काव्य अथवा साहित्यके दर्शन उसकी शव-परीक्षा है। किसी भावना अथवा विचारकी सफल अभिव्यञ्जनाके लिए एक ही विधान हो सकता है। काव्य, क्योकि यह कला है, अभिव्यक्ति है, और सहृदयके सामने अभिव्यक्ति ही रहती है। ऐसी अवस्थामे विधान विषयका अविच्छेद्य अङ्ग है यद्यपि इस रूपमे काव्यकी परीक्षाकी चेष्टाएँ सदासे होती रही हैं। जिस प्रकार विचार अथवा विधानके अभावमे अभिव्यक्ति नही हो सकती उसी प्रकार अभिव्यक्तिके अभावमे विचार या भावनाको विस्तार नही मिल सकता और न वह कलाका विषय बन सकती है। विधानका चुनाव जहाँ कविको क्षमता देता है, वहाँ छन्द-निर्माता अथवा पद्यकारकी राहमे रोड़ा अटकाता है। विधानके स्वरूप द्वारा ही अनेक अंशोमे कवि अथवा पद्यकारका अन्तर ज्ञात होता है। अनुभूतिकी तीव्रतामे चाहे अन्तर हो किन्तु अनुभूति सभीमे होती है। पद्यकार जहाँ अपनी उस भावनाके अनुरूप परिस्थिति और विधान नही चुन पाता वहाँ कवि, सच्चे अर्थोंवाला कवि—उस अनुभूति अथवा भावनाको साकार बना देता है। किसी गीति-कारकी विशेषता जाननेके लिए उसके सामान्य गुणोकी नहीं बल्कि सामान्यके अतिरिक्त उसकी विशिष्टताकी जानकारी चाहिए। व्यक्तिगत परिस्थिति और सस्कार विषयको भिन्न रूप देते हैं और विभिन्न रूपोके द्वारा कविकी अन्तर्वृत्तिका परिचय मिल सकता है। पन्तकी मधुर, कोमल, संयत शब्दावली और नाद-

सौन्दर्यके द्वारा, जीवन-चरित्रसे अपरिचित रहनेपर भी आन्तरिक कोमलताकी सूचना मिलती है। 'परिवर्तन' नामक कवितामे पन्त नया दृष्टिकोण उपस्थित करते है। प्रगतिशील कही जानेवाली कविताओमे पुरातन सस्कृति, परम्परा ओर विचारोके विरुद्ध उग्र विचार प्रकट किये गये है, वहॉ भी पंत-की कोमलता परिलक्षित है। 'ज्योत्स्ना' के गीतोमें पन्तका सहज, सुकुमार और कोमल व्यक्तित्व फूट पड़ा है।

जगमग-जगमग, हम जगका मग,
ज्योतित प्रतिपग करते जगमग।
हम ज्योति-शलभ, हम कोमल-प्रभ,
हम सहज सुलभ दीपोंके नभ!
चञ्चल चञ्चल, बुझ बुझ, जल-जल,
शिशु उर पल-पल, हरते छल-छल!

—पन्त

निरालाका भाषा- प्रवाह परुपता लेकर चलता है, उसमे पन्तकी नारी सुलभ कोमलता, सौन्दर्य और माधुर्य नही। स्वतन्त्र बौद्धिक चेतनासे सजग, सहज किन्तु दृढ व्यक्तित्वकी छाप शब्दावली और नाद-सौन्दर्यपर है। दार्श-निकताका आग्रह जहॉ उसमे परुषता उत्पन्न करता है, वहॉ जीवनमे सहज सहानुभूतिका उद्रेक भी करता है। शब्द-चयन स्पष्ट रूपसे निरालाके निर्भीक व्यक्तित्वकी सूचना देता है। पन्तजीके शब्द घिस घिसाकर शालिग्राम बनकर निकलते हैं। पन्तकी भाषामे शरत्कालीन गंगाकी स्निग्ध धीरे 'शान्त स्निग्ध' है, जिसमे 'ग्रीष्म-विरल' 'श्रान्त, क्लान्त निश्चल' की-सी गति है। निरालामे 'निर्बन्ध, अन्धतम-अगम-अनर्गल' बादलकी गरज है और 'बाधारहित विराट्, विप्लवके प्लावन' की तीव्रता और गति है।

शब्द आपसमें टकराते आगे बढते हैं, इस टक्करके कारण जहाँ उनकी गति रुक-रुककर बढ़ती है वहाँ उनके प्राणवान जीवनकी सूचना भी देती है। निरालाकी भाषा प्राणवन्त, सतेज और प्रखर प्रवाहमय है।

झरझर निर्झर-गिरि-सरमे,
घर, मरु, तरु-मर्मर, सागरमें,
सरित-तड़ित गति-चकित पवनमें
मनमे, विजन-गहन-काननमे,
आनन, आननमें, रव-घोर कठोर—
राग अमर ! अम्बरमें भर निज रोर !

—निराला

और महादेवी—

घुल गयी इन आँसुओमें देव जाने कौन हाला।
झूमता है विश्व पी-पी घूमती नक्षत्र-माला।

× × ×

शिथिल चरणोके थकित इन नुपूरोकी करुण रुनझुन,
विरहका इतिहास कहती जो कभी पाते सुभग सुन।

इस शब्दावलीमे मधुर किन्तु करुण व्यक्तित्वका आभास मिलता है। 'जगमग-जगमग'के-से सुलभ सलज चाञ्चल्यकी 'शिथिल चरणोके थकित' शिथिल गतिसे कोई तुलना नही; किन्तु महादेवीकी भाषाकी गतिमें 'निराशा' के मेघोंका गुरु-गम्भीर गर्जन भी नहीं। विरहमे आँसुओकी यमुना बहाने-वाली मीरां अथवा अन्य गोपियोंकी-सी अधीरता भी नहीं। निरालाका-सा स्वच्छन्द, और मुक्त प्रवाह भी नही। बौद्धिकता जैसे भावनाके साथ घुल-मिल गयी है। नाद-सौन्दर्य, शब्द-शौष्ठव, स्पष्ठ सूचना देते हैं कि

महादेवी हमसे दूर हैं, वह अस्पष्ट छायात्मक रूप है, जिसक आभास तो हम पाते हैं किन्तु जिसे स्पर्श नहीं कर सकते। धुँधले, अ-स्पष्ट किन्तु करुण व्यक्तित्वकी छाप इस भाषामे मिलती है।)

व्यक्तित्वका विषयके साथ अटूट सम्बन्ध है। मनुष्य अपनी भावना, अनुभूति और विचारोमे जीवित रहता है। विषयकी प्रधानतामे व्यक्तित्व ही बीजरूपसे है। अभिव्यक्ति ही विषयको रूप देती है ऐसी अवस्थामे अभिव्यक्ति व्यक्तित्वका स्वरूप प्रकट करती है। इस रूपमें विषयको अभि-व्यक्तिसे विच्छिन्न करके देखना अनुचित है। जो सामान्य तत्त्व है, उसे व्यक्तित्व नहीं कहा जा सकता है। जो असामान्य है, वही व्यक्तित्व है। प्रत्येक व्यक्तिका अपना भिन्न व्यक्तित्व है किन्तु उसका व्यक्तित्व पूर्णतया स्पष्ट हो, यह सम्भव नही। सामाजिकताके साथ व्यक्तित्वका परिपुष्ट रूप सामने रखनेमे ही कविकी सफलता होती है। छिछले व्यक्तित्वका कवि उच्छिष्ट वृत्तिसे काम चलाता है। ऐसी अवस्थामें हमारे लिए निर्णय करना कठिन होता है कि उसे कवि कहा जाय अथवा नही। काव्यत्वकी नकल सम्भव नही, कारण वह तो वैयक्तिक है अतः प्रभविष्णु कवियोके विधान-की नकल, उसे ही प्रभावका कारण समझ, ऐसे लोग करने लगते है। आजकी व्यक्ति-प्रधान सभ्यता और संस्कृतिमे विभिन्न व्यक्तित्वका विस्तृत रूप मिलता है अतः छिछले कवियोका सन्तोष केवल एककी नकलसे नहीं होता और वे कभी किसीके पास और कभी किसीके द्वारपर आ खड़े होते है। रवीन्द्रनाथ ठाकुर, शेली, कीट्स, पंत, निराला और महादेवीकी छाप क्रमशः उनके भिन्न-भिन्न तथाकथित गीतोमे उपस्थित होती है। यह निश्चित है कि सबमे समान शक्ति अथवा क्षमता नही होती; यह भी सम्भव नही कि सभी रवीन्द्रनाथ ठाकुर या निराला हो सकेंगे। कवि भी अपने युगकी देन है, वह समाज या युगको जो वरदान दे जाता है,

उसके मूलमे सामाजिक भावनाका विस्तृत किन्तु अस्पष्ट रूप मिलता है। साहित्य जहॉ समाजको प्रभावित करता है, वहॉ उसीसे जीवनी शक्ति और रस भी पाता है अतः विशिष्ट युगका प्रतिनिधित्व विशिष्ट ही व्यक्ति कर सकेंगे। कालिदासका युग रवीन्द्रनाथ नही पैदा कर सकता था और लाख चेष्टा कर आज कोई कालिदास नही हो सकता। युगकी चिन्ता-धारा, निरवधि काल तथा विपुला धरित्रीकी चिन्ता-धाराका विकसित रूप धर विशिष्ट रूप ग्रहण करती है। अतः चमत्कार एव प्रभविष्णुताके लिए नकलकी नहीं अपितु स्वतन्त्र चेतना और व्यक्तित्वके विकासकी आवश्यकता है। नकल द्वारा अधिक-से-अधिक असलतक पहुॅचा जा सकता है, नवीन और नूतन जीवनका संस्कार उत्पन्न नहीं किया जा सकता।

आजका कवि शब्दोकी महानताके सम्बन्धमे सशयालु है, वह शब्दोको भावो और भावनाओका बन्धन मानता है। मै स्वय मानता हूँ कि भावनाऍ शब्दोकी सीमामे बॅधकर मर जाती है, उनकी गति और गत्यात्मकता नष्ट हो जाती है किन्तु इसके साथ ही यह बन्धन उनके प्रभावका कारण है। यदि शब्दोकी सीमा वे स्वीकार नही करतीं, क्षणिकताके चरम आवेशको विस्तार नहीं दिया जा सकता। जिस प्रकार भावनाओंकी अभिव्यक्तिके लिए उपयुक्त शब्दावलीकी आवश्यकता है उसी प्रकार विशिष्ट शब्दावलीमें ही विशिष्ट भावनाओंकी अभिव्यक्ति हो सकती है। शब्दोकी भावनामे सूक्ष्म अन्तर होता है अतः कविका कार्य उपयुक्त शब्द-चयन है। अशक्त, अक्षम और अनुपयुक्त शब्दोका प्रयोग कविके वैसे व्यक्तित्व और अनुभूतिकी सूचना देता है। काव्य अधिक अवस्थाओमे अचेतन-क्रिया है, अचेतन-क्रियाका अर्थ यह नही कि कविकी चेतना काव्य-रचनाके समय सुप्त हो जाती है, बल्कि इसका अर्थ है कि कवि तत्कालीन चेतनामे इतना निमग्न हो जाता है कि उसकी अन्य चेतनाएँ उस समय लुप्त हो जाती है,

और वह उस समय आविष्ट-सा हो जाता है। आवेश-कालमे उसका व्यक्तित्व द्वन्द्वात्मक नही बल्कि पूर्णतया अन्वित और सन्तुलित है। ऐसी अवस्थाके चित्रमे शब्द और अर्थ-शक्तियोकी विच्छिन्नता उसके आवेशके-क्षणो का छिछलापन सिद्ध करता है, और यह भी सिद्ध करता है कि उस कविमे आवेशके क्षणोका अभाव है अथवा उसकी शक्ति भावनाको अभिव्यञ्जित करनेकी शक्तिसे शून्य है, ऐसी अवस्थामे काव्य-रचनासे विमुख हो जाना ही उसके लिए श्रेयस्कर हो जाता है। यहॉ मै शब्दको अर्थसे, भावना और अनुभूतिमे अधिक महत्त्व नही दे रहा हूॅ बल्कि शब्दके महत्त्वका मूल भावनाकी अभिव्यञ्जनामे है ; यदि शब्द-शक्ति इतनी पर्याप्त न हो, अनुभूति स्वरूप ग्रहण न कर सकेगी ; अतः शब्दका महत्त्व कम नही हो सकता।

पाठककी कठिनाईके मूलमे भावकी अ स्पष्टता है। काव्यका आनन्द केवल नाद-सौन्दर्य, अलङ्कार-विधान, अर्थ गौरव, कल्पनाकी उडान, अनुभूतिकी गहराई आदिमे अलग-अलग नहीं, बल्कि इन सबका समाहित प्रभाव पाठक अथवा श्रोतापर पडता है। गीति-काव्यमे अनुभूतिके प्राधान्यपर जोर दिया गया है। अनुभूतिकी अभिव्यक्ति एवं अपने अन्य उद्देश्यकी पूर्तिके लिए कवि भावको मनमाना रूप दे सकता है और इस प्रकार अपनी अनुभूतिकी व्यञ्जना वह करता है। इसमे चातुर्यका वह अवलम्बन करता है, उसीपर पाठक और कविका सम्बन्ध निर्भर करता है। पाठक भावोकी स्पष्टता चाहता है, और कवि चातुर्य द्वारा अपनी अनुभूतिको प्रभविष्णु बनाना चाहता है। यह कार्य सदा चेतन रूपमे नही होता, यह मानसिक प्रक्रिया अचेतन रूपमे चलती रहती है। कवि अपने उद्देश्यकी पूर्तिके लिए सगति(Coherence) का त्याग कर सकता है और अनियमित रूपमे उसकी भावना अभिव्यञ्जित होती है। पाठक इनका

तारतम्य जोड़ नही पाता जिससे कवि और पाठकमे व्यवधान उठ खड़ा होता है। शब्द-शक्ति और अर्थ-शक्तिका यह अर्थ नहीं कि छन्दको यदि गद्य रूपमे परिवर्त्तित कर दे, भाव स्पष्ट हो जाय। इस विषयमे कविको एक सीमातक स्वतन्त्रता मिलती है, यह स्वतन्त्रता पाठकका अमोघ अस्त्र और अ-कवि कविका आश्रय है। भाषा इस प्रकार कविकी क्षमता और सीमा दोनो है। काव्यमे प्रभावके लिए चमत्कारपूर्ण-शब्द-योजनाका आश्रय कवि लेना चाहता है जिसे काव्यात्मक अभिव्यक्ति (poetic eapression) कहा जाता है। काव्यात्मक अभिव्यक्तिका साधारण अर्थ अलङ्कार-विधानसे लिया जाता है। यह स्पष्ट है कि अलङ्कारोके समुचित प्रयोग द्वारा विषयके विशिष्ट पहलूकी ओर ध्यान आकृष्ट किया जा सकता है क्योकि वे एकाङ्गी होते हैं तथा अलङ्कारोके प्रयोग द्वारा नूतनता आती है किन्तु चमत्कार पूर्ण उक्ति वैचित्र्य केवल अलंकार-विधान तक सीमित नही रह सकता। उक्ति-वैचित्र्य द्वारा भी अर्थ स्पष्ट नही किया जा सकता। उक्ति वैचित्र्यमे कविका ध्यान भाव, अर्थ अथवा अनुभूतिसे अधिक उक्ति-चमत्कारपर रहता है जिसमे अनुभूतिकी तीव्रताका अभाव-सा पाया जाता है। इस उक्ति-वैचित्र्य-मे कविको अवकाश मिलना चाहिए जिसमे वह अपनी भावनाओको उक्ति-के चमत्कारपूर्ण चौखटेमे 'फिट' कर सके।

भावना प्रवहमान प्रवाहकी भॉति है और कविता उस प्रवाहमे बॉध लगा नहर काटनेके कृत्रिम प्रयास जैसा। भाषाका अतः कृत्रिम बन्धन स्वीकार कर भावना अभिव्यक्त होती है, ऐसी अवस्थामे शब्दावली और उसका सामञ्जस्य केवल ऐसा नही होना चाहिए कि अर्थ स्पष्ट हो जाय बल्कि भावना अपनी सम्पूर्ण कल्पना-क्षमताके साथ सहसा प्रकाशित और चमत्कृत हो उठे। इस प्रकारके चमत्कार उत्पन्न करनेमे शब्दोका विशिष्ट मिश्रण ही क्षम हो सकता है और इस क्षमताके सफल प्रयासमें ही

गीति-काव्यकी सफलता है। कथा प्रवाहके आग्रहके कारण प्रबन्ध-काव्योमे निस्तेज पक्तियॉ भी खप जाती है, गीति-काव्यमे ऐसा सम्भव नहीं क्योकि न तो इसमे कथा-प्रवाहके कारण वेग है और न कुछ पंक्तियोके निस्तेज होनेके कारण उनकी पृष्ठभूमिपर अन्य पक्तियोके अधिक चमत्कृत होनेका अवसर ही। गीतिकारको शब्दचयनमे अधिक सावधानीकी आवश्यकता पडती है। जिस प्रकार सुगन्धिका मादक और मधुर प्रभाव मनको अधिक देरतक प्रभावित रखता है, उसी प्रकार शब्दोकी झङ्कार गूँजती रहनी चाहिए। यह नादात्मक सौन्दर्य गीतिकाव्यमे अभिव्यक्ति भावनाको सबलता और भावुकताको विस्तार देता है। महादेवीके इस नादात्मक सौन्दर्यमे मन्द्र, मधुर वेग है-और निरालामें तेज किन्तु रुक रुककर आगे बढनेवाला वेग है किन्तु कोई वाधा उसे रोक नही पाती। बच्चनमे यह वेग तीव्र और अविच्छिन्न है, भाषा बच्चनके लिए व्यवधान नही, भावना जैसे स्वयं आगे बढ़ती जाती है, भाषा न तो उसके वेगमे व्यवधान डालती है और न उसे प्रभावित करती है। दिनकरकी भाषामे यह सहज प्रवाह नही, किन्तु निराला जैसा रुक-रुककर बढ़नेवाला वेग भी नही, महादेवीकी मन्द्र मधुर सहज स्वाभाविकता भी नहीं। जान पडता है, कवि भावनाओके लिए माध्यम ढूँढ रहा है, स्पष्ट है कवि भावनासे अधिक विचारोकी ओर ध्यान दे रहा है। विचार जहॉ स्वानुभूति और भावनाके पीछे-पीछे चलता है, वहॉ सहज मधुर गति आ जाती है। नेपालीके नाद-सौन्दर्यमे पहाड़ी झरनेका स्वर-नाद है किन्तु स्वाभाविक गति भी है। शब्द-शक्तिसे अनजान कवि जब भाषाके साथ खिलवाड करने लगते हैं, कवित्वके प्राण कॉपने लगते हैं।

कोयल, दुहरे स्वर मत छेड़ !
आः, मनके सुधि व्रण न कुरेद !

'सुधि'के बाद 'व्रण'के 'व्र' पर पहुँचनेपर मालूम पड़ता है, जैसे सहसा गति रुक गयी और 'न'के बाद 'कु'मे इतनी तीव्रता आ जाती है कि यह नादात्मक विधान भावनाको जागरित नहीं कर पाता बल्कि शब्द-झङ्कारके कारण विचारोकी ओर ध्यान लगा देता है, जहाँ, अतः, रागात्मक आवेश प्राप्त होना चाहिये वहाँ सुधि-व्रणके रूपकत्वपर हमारा ध्यान पहुँच जाता है। भाव-सामञ्जस्यमे किसी प्रकार व्यवधान न आनेपर भी अनुभूतिको तादात्म्यकी प्राप्ति नही हो पाती। रीतिकी जो प्रतिष्ठा संस्कृत साहित्यमे प्राप्त है — जिसे किसी-किसी साहित्य-शास्त्रीने काव्यकी आत्मातक मान लिया है (रीतिरात्माकाव्यस्य काव्यालङ्कार सूत्र) उसके मूलमे नाद-सौन्दर्यका वही महत्त्व है क्योकि विशिष्ट पद-रचना को रीति (विशिष्टपद-रचना रीतिः) कहते है।

शब्द-सौन्दर्यके साथ हमे छन्दका विचार करना पडता है। छन्द-विधान वाह्य स्वरैक्य और स्वर-तारतम्यकी रक्षाके लिए स्वीकृत था। भाषा जिस प्रकार भावनाको कृत्रिमताके बन्धनमें बाँधती है, उसी प्रकार छन्द कविताके लिए बन्धन है। काव्य और पद्य, कविता और छन्दका अन्तर साधारण पाठक नहीं समझ पाता। स्कूली दिनोसे छन्दबद्ध रचनाको ही कविताकी सज्ञा पाते सुन उसकी धारणा छन्दको ही कविता मान बैठती है। शृङ्गार-कालमें कवित्त और सवैया कवियोके कण्ठहार बने रहे, दोहा-का भी कम आदर नही था। कविताके प्राण इस बन्धनमे छटपटाने लगे और कवियोने इस सम्बन्धमे प्रयोग किया। वाल्ट विटमैनने इस दिशामे अधिक प्रयास किया और फल-स्वरूप 'मुक्त काव्य' (free verse)-का श्रीगणेश हुआ। 'मुक्त काव्य' और 'मुक्तक' मे कोई समानता नही। "मुक्त काव्य' छन्द-बन्धनको अमान्य कर चलता है और 'मुक्तक' छन्द-बन्धन स्वीकार करता है केवल अपने साथके किसी अन्य पद्यसे वह अपनी

मुक्ति घोषित करता है। 'मुक्तक' और गीति-काव्यमे पर्याप्त अन्तर है। गीति-काव्य समाहित प्रभाव उत्पन्न करता है और मुक्तकोमे छन्द निरपेक्ष हैं और सभी अपने प्रभावके क्षेत्रमे पूर्ण स्वतन्त्र। रवीन्द्रके द्वारा बंगलामे 'मुक्त काव्य'का प्रवेश हो चला था। अग्रेजीके प्रभावके लक्षण भी प्राप्त है। **हिन्दी-कविताको परम्परा मुक्त छन्द-बन्धनसे मुक्ति देनेका श्रेय निराला को है।** इस मुक्त काव्यने अन्तरैक्य और आन्तरिक स्वर सामञ्जस्यका आग्रह लेकर काव्य-क्षेत्रमे प्रवेश किया। गीति-काव्यमे छन्दबद्ध और मुक्त दोनो प्रकारके काव्य-विधान पाये जाते है। मुक्त काव्यमे भी प्राचीन छन्दोके भग्नावशेष मिलते हैं। संस्कार (Pattern) प्राचीन है, केवल योजना नवीन है। परम्परासे आते छन्दोमे विस्तार और सङ्कोचके द्वारा नव-विधान-का भी प्रयास देखा जाता है। इसके साथ ही मिश्र छन्दोकी सृष्टि भी हो रही थी। मिश्र छन्दोमे विभिन्न छन्दोके चरणोका समन्वय प्रकट किया जाता है। 'मुक्त काव्य'-गत गीति-प्रभावकी अभिव्यञ्जनामे निरालाको सफलता मिली किन्तु इतना स्वीकार करना पड़ेगा कि छन्द-बन्धनके द्वारा लयात्मक प्रभविष्णुताकी मात्रा बढ जाती है। तुकके कारण मालूम होता है जैसे कोई 'सम' पर आ गया हो। अन्त्यानुप्रासके प्रभावका कारण समत्व ही है यदि इस 'समत्व' से पदको स्वतन्त्र रखा जाय तो अन्त्यानुप्रासका जोर कम हो जाता है। गीति-काव्यमे छन्द और भाषाका भावना और अनुभूतिके साथ लयात्मक समन्वय अपेक्षित होता है। 'मूड' के साथ छन्दके लयात्मक सम्बन्धका अविच्छिन्न सम्बन्ध है। सतेज और उन्मुक्त भावनाके लिए—जिसमे चित्त विकासका माधुर्य और विस्तार है, प्रवाहशील छन्दकी आवश्यकता है और गम्भीर, विवेकशील एवं विषादपूर्ण भावनाके लिए मन्द गतिसे पूर्ण छन्दकी। इनके विभिन्न मिश्रणद्वारा भिन्न-भिन्न मनोवृत्तियोकी सूचना मिलती है। अनुभूतिकी तीव्रताकी निर्देशिका अवयव-जन्य

विभिन्न अभिव्यक्तियाँ हैं। मनोविकारोसे रक्त-सञ्चालन क्रियामे तीव्रता और मन्दता आती रहती है। विभिन्न मानसिक स्थितिकी सूचना विभिन्न आगिक विकारो द्वारा मिलती है उसी प्रकार लयात्मक उत्तेजना और आवेशके द्वारा अर्थ नही समझ पानेपर भी मनोवृत्तिकी सूचना मिलनी चाहिए। गीति-काव्यमे बुद्धि-तत्त्वका अभाव नही होता, होना भी नही चाहिए, अनुभूति और भावनाकी प्रधानता होती है, जिसकी सूचना नाद-विधान और छन्दकी गतिसे मिलनी चाहिए। जहाँ वृत्ति और छन्दकी गतिमे सामञ्जस्य नही होता गीति-कविता अपने आदर्शसे गिर जाती है। छन्द-विधान अतः गीति-काव्यकी रीढ-सी है। बच्चनके छन्दोमे अनुभूतिके विस्तारको सहज सुलभ माध्यम प्राप्त है और निरालामें शक्ति, पन्तमे माधुर्य है और मात्रा-विशेषमे इनका मिश्रण अन्य कवियोमे प्राप्त है। मन्दाक्रान्ताकी गति विप्रलम्भ शृङ्गारके लिए अधिक उपयुक्त है। कवित्त और सवैया छन्द शृङ्गार और नीतिके वर्णनके अद्वितीय माध्यम रहे। मुक्त छन्दका आधार कवित्त छन्द अनेक अवस्थामे है अन्त्यानुप्रासहीन , अथवा तुके चरणको छिन्न-भिन्न कर इतनी दूर रख दी गयी है कि अन्त्यानुप्रासहीनताका बोध होता है किन्तु पढ़नेके समय स्वाभाविक विराम उन्ही 'स्थलो'पर पडनेके कारण कानोमे खटक नही मालूम पडती। महादेवीके छन्दोकी गति करुण, विषाद पूर्ण किन्तु आशासम्बलित भावनाके उपयुक्त है और पन्तकी उल्लासपूर्ण भावोन्मेषके उपयुक्त। पन्तकी करुण पक्तियोमें क्षोभ है, चञ्चलता है, महादेवी-जैसी मन्दता और स्निग्ध प्रवाह नहीं। भगवतीचरण वर्मा प्रत्येक वस्तुको गति और परिवर्त्तन-शील मानते है, प्रेमको भी, आनन्दको भी। यह क्षणिकवाद जीवनको विशिष्ट गति देता है और भावोन्मेषकी यह गति उनके छन्दको मुक्त प्रवाह। रामकुमार वर्मामे विस्मयका आग्रह है और उनके छन्द उत्साह और जिज्ञासाकी गतिका अनुसरण करते है। दिनकरके छन्दोकी कोई स्पष्ट

दिशा नही। जहाँ दर्शनका आग्रह उमड़ जाता है, वहाँ दिनकरके छन्द दिन-भरके थके बनजारेकी अवस्थामे आ जाते है। उर्मिलाके गीतोके छन्दकी द्रुतगति अनेक अवस्थाओमे असामञ्जस्य खड़ा कर देती है, केवल भावनाके विस्तार और उर्मिलाकी अव्यवस्थित मानसिक दशाकी भूमिकामे कल्पनाके द्वारा ही उससे मानसिक सामञ्जस्य पाया जा सकता है। मात्रा, विराम अथवा यतिके विभिन्न मिश्रणसे सगीतमय नवीन प्रवाह उत्पन्न होता है।

अन्य कलाओकी भाँति काव्य भी एक कला है। कलामे स्वानुभूतिसे कम आवश्यक अभिव्यक्तिका माध्यम नही, कारण अभिव्यक्ति द्वारा ही अनुभूति स्वरूप ग्रहण करती है; जिस प्रकार चित्रके लिए चित्र-पट और रग, मूर्ति कलाके लिए प्रस्तर-खण्ड उसी प्रकार गीति-काव्यमे गति और नाद-सौन्दर्य-की अपेक्षा है। एक ही गीतमे छन्द-परिवर्तनके कारण स्वानुभूति प्रकाश और स्वानुभूतिमे व्यवधान पडता है। एक ही प्रकारके छन्द विधानके भीतर वैषम्यद्वारा प्रदर्शित प्रभावकी तीव्रता अपेक्षाकृत कठिन कार्य है। छन्द-की गतिसे मानसिक स्थितिमे परिवर्तन हो जाता है। बौद्धिक कवितामे इस प्रकार छन्द-परिवर्तन नये विचार या भावको ग्रहण करनेके लिए पाठककी मनोवृत्तिको तैयार करता है। गीति-काव्यमे अनुभूतिकी अन्विति और इकाईका आग्रह है। ऐसी अवस्थामे छन्द परिवर्तनके कारण विभिन्न प्रभाव पडनेकी आशका है। उसी छन्द-विधानके भीतर लय द्वारा रिक्तता पूर्तिके लिए वर्णोका त्याग प्रभावको बढ़ा देता है, और अनुभूतिकी चेतन गम्भी-रताके लिए पाठकको प्रस्तुत कर देता है। प्रत्येक भाषामे अपनी प्रतिभा और लयात्मक शक्ति होती है और कविकी शक्ति और सफलता भाषाकी इसी शक्तिकी पहचानमे है। आजके अनेक नौसिखुए कवि भाषाकी इस शक्तिसे अपरिचित रहकर इससे खिलवाड करनेका प्रयास करते है।

अनुभूतिका उद्भव और विकास क्रम-बद्ध होता है और क्रमशः वह

भावनाका रूप ग्रहण करता है। गीति-काव्यमे अनुभूतिकी विकास-परम्परा-का क्रम पाया जाता है। गीति-काव्यका सौन्दर्य चरणकी लयात्मक गतिमे है किन्तु छन्द-विधानके अन्तर्गत चरणोके समन्वयमे, जिसका अन्त्यानुप्रास मधुर अथवा तीव्र झङ्कारके साथ नवीन प्रभाव उत्पन्न करता है। इस प्रकार सन्दर्भ वा अवतरण इस क्रमविकासके सूचक हैं। 'बह चली अब अली, शिशिर समीर' (निराला) शीर्षक कवितामे इस प्रकार-के क्रम-विकासका निर्देश किया गया है। इस विधानका ध्यान न रखने-के कारण प्रभावकी अक्षुण्णता बनी नही रहती और सामञ्जस्य भी नहीं रह जाता यद्यपि इस सिद्धान्तका पालन सभी कवि सभी अवस्थाओंमे नहीं करते। उत्तेजनशील क्षणोमें कविकी जाग्रत् प्रतिभाके प्रयोगानुकूल अनेक प्रकारके छन्द-विधान और उनके स्वरूप है। विभिन्न छन्दो, लय और सन्दर्भके प्रयोग द्वारा वह भिन्न प्रभाव डाल सकता है किन्तु चतुर गीतिकार छन्दात्मक लय-विधान, स्वरैक्य, अविच्छिन्नता और तारतम्यके द्वारा तरल कोमलताका आवेश कविताके प्राणोमें फूँक देता है और इनसे समाहित प्रभाव उत्पन्न होता है। नाद-सौन्दर्यके साथ भाव-सौन्दर्यका सामञ्जस्य नव-सौन्दर्यका विधान उपस्थित करता है। उक्तिकी परुषता और तरल प्रसा-दकता और स्निग्धता, छन्दकी मन्दता और तीव्रता, अनुप्रास और लयका अस्पष्ट आवेश, संयत नादात्मकता और सामञ्जस्य, पाठककी कल्पनाको आक्रान्त कर रसानुभूति अतः आनन्दानुभूतिका उन्मेष करते हैं।

मम्मटने अलंकृत काव्यकी स्थिति स्वीकार की है। स्फुट न रहने-पर भी अलङ्कारत्वका अभाव नहीं रहता। अलङ्कारके प्रभावशील होने और फूहडपन प्रदर्शित करनेमें अधिकका अन्तर नहीं। मैंने अन्यत्र लिखा है कि अनुभूतिके अक्षम आवेशको उत्तेजना और प्रभाव देनेके लिए अलङ्कार-विधानका आग्रह कवि-विशेषमें दीखता है। चमत्कार उत्पन्न

करनेमे सामर्थ्य प्राप्त करनेके लिए स्वाभाविकतया कुछ अलङ्कारोका समावेश हो जाता है अथवा वृत्तियोका मूर्त्त-विधान उपस्थित होता है ; किन्तु जहाँ अलङ्कारका आग्रह तीव्र हो उठता है वहाँ वैचित्र्य उत्पन्न करने और भावनाके अक्षम क्षणोंको प्रभाव देनेका स्पष्ट प्रयास दीख पड़ता है । अतः अधिक अलङ्कृत भाषा अथवा अलङ्कार-विधानका भार गीति-काव्य वहन नही कर सकता । अलङ्कारके सम्बन्धमे पन्तने कहा है—

तुम वहन कर सको जन मनमें विचार,
वाणी मेरी चाहिए तुम्हें क्या अलङ्कार,

पन्तने अलङ्कारकी अनावश्यकता स्वीकार तो की है किन्तु अलङ्कारत्वका प्राधान्य उनकी कवितामें है । यहाँ मैं यह सङ्केत नहीं दे रहा हूँ कि जान-बूझकर पन्तने अलङ्कारका प्रयोग किया है यद्यपि अनेक अवस्थाओंमें अनायास और अचेतन रूपमें उनका समावेश हो गया है । पन्तमें चित्रात्मकता अधिक है, पन्त स्पष्ट चित्रोंके कवि हैं । चित्रमत्ताका यह आग्रह भावोंको स्थूल रूप देनेका आयास करता है और उदात्त कल्पनाकी उडान स्पष्ट रेखाओको अमान्य कर व्योम-कुञ्जोंकी ओर पर फडफड़ानेको उद्यत होती है ; ऐसी अवस्थामें अमूर्त्तके मूर्त्त-विधानकी प्रधानता होगी । चाक्षुष चित्रोंके साथ श्राव्य चित्रोका निर्माण कर पन्त अभिनव रूप-रेखा खड़ी करते हैं । अलङ्कार और अलङ्कार-ध्वनिमें अन्तर है । गीति-काव्यमें अलङ्कारसे अधिक अलङ्कार-ध्वनिमें सौन्दर्य होता है कारण वहाँ पाठकका ध्यान वाणीके चमत्कार और अलङ्कारकी ओर न जाकर अनुभूति और भावनाकी ओर जाता है । शब्द-झङ्कारका सम्बन्ध वृत्तिसे है और वृत्यानुप्रासके दर्शन गीतिकारकी भाषामे दीख पड़ते हैं । अलङ्कार काव्यकी आत्मा नहीं, इसमें किसी प्रकारकी द्विधा नहीं, किन्तु वाणीके अलङ्कारका महत्त्व है, कारण

ज्ञानका सारा श्रेय ज्ञातसे अज्ञातकी ओर जानेमे है। अलङ्कार इस प्रकार भावनाको स्पष्ट रूपरेखा देते हैं। अलङ्कारोंके बाहरी अथवा अलङ्कार-विशेष-का उदाहरण उपस्थित करनेका प्रयास जहाँ कविताको अति कृत्रिम बना देता है, वहाँ उसके प्रभावको भी कम कर देता है। कला (art) और कलाबाजी (artifices)में अन्तर है। अलङ्कारत्व नक्काशी नहीं; नक्काशी वह तब है जब कविका सारा प्रयास अलङ्कारके चमत्कार दिखानामात्र हो। मम्मटने भी अलङ्कारके इस महत्त्वको दबी जुबानसे स्वीकार किया है।

शब्द-झङ्कार और नाद-सौन्दर्यका सम्बन्ध भी विधानसे प्रत्यक्ष रूपमे है। क्या केवल झङ्कारसे भावनाकी व्यञ्जना हो सकती है? फ्रेंच कवितामें इस शब्द-झङ्कारका प्राधान्य अधिक समयतक रहा, इसके अनुसार अर्थ और भाव प्रधान होते हुए भी स्वानुरूप अनुभूति जाग्रत् करनेके लिए आवश्यक नहीं; कारण उनकी व्यञ्जना शब्द-झङ्कारसे होती है। 'वृत्तियों'—उपनागरिका, कोमला और पुरुषाका विधान कुछ-कुछ इसी दिशाकी ओर सङ्केत करता है यद्यपि कई रसोंके लिए भी एक ही वृत्ति स्वीकृत है। केवल शब्द-झङ्कार और नादात्मकतासे भावनाकी अभिव्यञ्जना हो सकती है, इस मतको पूर्ण-तया स्वीकार नहीं कर भी इतना स्वीकार करना पड़ेगा कि शब्द-झङ्कारद्वारा प्रभावकी विशिष्टता बढ़ अवश्य जाती है। वृत्ति (mood) के परिवर्तनके साथ शब्द-झङ्कारका परिवर्तन पन्तकी परिवर्तन कवितामें मिलती है।

'कहाँ आज वह पूर्ण-पुरातन, वह सुवर्णका काल?' की गम्भीर झङ्कार 'मिलनेके पल केवल दो चार, विरहके कल्प अपार' में कितनी द्रुत हो गयी है और वही 'अतलसे उमड़ अकूल, अपार' में कम्पनशील हो गयी है। शब्द-झङ्कार और श्राव्य चित्रोंके निर्माणमें पन्तकी प्रतिभा अधिक सजग रही है:—

धूम धुँआरे, काजर कारे,
हम ही बिकरारे बादर

×

चमक-झमकमय मन्त्रवशीकर
छहर-छहरमय विष सीकर

महादेवीमे अनुभूति और मनोवृत्तिकी तीव्रता संयत रूपमे आयी है अतः उनकी वाणीमे, झकार और नाद-सौन्दर्य भी संयत है। वर्षाके चाञ्चल्यको रूपकातिशयोक्तिद्वारा उन्होने रूप-विधान दिया है, वहॉ भी वह संयम टूट नहीं पाया है। स्वर-चाञ्चल्यमे भी मन्दता है, उग्रता नहीं, गति है, उद्दण्डता नही, अजस्र प्रवाह है किन्तु अनियत्रित नही। सम्पूर्ण गीत एक स्वर-सामञ्जस्यमे बॅधा है, जिसमें किसी प्रकारकी 'खटक' नही।

गीति-काव्य और प्रकृति चित्रण

मनुष्य प्रकृतिके क्रोडमे पला है। सभ्यताके विकासका रूप प्रकृतिके सङ्घर्षसे ही विकसित होता रहा है। प्रकृतिके उपकरण विस्मय, जिज्ञासा और रहस्यात्मकताकी सृष्टि करते रहे हैं। प्रकृतिपर जैसे-जैसे मानवीय विजय होती गयी, वैसे-वैसे प्रकृतिकी रहस्यात्मकताके भावोंमें भी परिवर्तन होता गया। साधारण मनुष्यके जीवनमें प्रकृतिका रागात्मक प्रभाव नही रहा। शीतके कारण वह ठिठुरता रहा, तापके कारण चञ्चल होता रहा किन्तु होली और वसन्तके कारण स्फुरण नहीं होता। कवि भावाकुलताके क्षणोमे अधिक सवेदनशील हो जाता है अतः प्रकृतिके साथ तादात्म्य अनुभव करनेकी उसकी प्रवृत्ति स्वाभाविक हो उठती है। वह समाज और सामाजिकताके बोझसे दबने-सा लगता है। वैयक्तिकता और व्यक्तित्वके आग्रहके कारण सामाजिक व्यवस्थासे उसका

मेल नहीं खाता और वह मानवीय बन्धनोको तोड़कर प्रकृत्तिके साथ अपना सामञ्जस्य स्थापित करना चाहता है। मनुष्य भी प्रकृतिक है और इसने अपने चारो ओर अस्वाभाविक बन्धन स्वीकार कर लिये है अतः वह इन बन्धनोंके प्रति भी विद्रोह करता है। गीति-काव्यमे अनुभूति और भावनाकी तीव्रता अपेक्षाकृत अधिक होती है। सवेदनशील क्षणोमें कवि-की चेतना इतनी सजग और सहज सक्षोभ्य होती है कि हलका-से-हलका स्पर्श उसे चञ्चल कर देता है। इस स्पर्शका जैसा ऊपर लिखा गया है, महत्त्व इस संवेदनशीलताके अनुसार होने और तीव्रता प्रदान करनेमे है। इसलिए मैने ऊपर लिखा है कि गीति-काव्यमें शुद्ध प्रकृति-चित्रणका स्थान नहीं। शुद्ध प्रकृति-चित्रणसे मेरा तात्पर्य प्रकृतिके यथातथ्य चित्रणसे है, बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव ग्रहण करानेसे है। यह कोई आवश्यक नही कि अपनी रागात्मक अनुभूतिके आरोपका वह स्पष्ट उल्लेख करे, मात्र संकेत भी पर्याप्त होगा; किन्तु बिम्ब-प्रतिबिम्बवाले चित्र गीतिकाव्यके उपयुक्त नही। रीतिकालीन कवियोंने प्रकृतिका चित्रण उद्दीपनके रूपमे किया है। उद्दीपनके शास्त्रीय अर्थका विस्तार सीमित है और गीति-काव्यके चित्रोसे उन चित्रोका अधिक मेल नहीं खाता। रीतिकालीन कवि जहाँ प्रकृतिके उपकरणोंमें परम्परागत उद्दीपनत्व मानता है, वहाँ अपनी वृत्तिको संस्कार रूपमे स्वीकार करते हुए उसकी तीव्रताका कायल नहीं रहता; वह मानता है, उन उद्दीपनोंके कारण ही वासनाकी उत्तेजना है। वैसी अवस्थामे चन्द्र, नदीका एकान्त कूल, वासन्ती वायु, आषाढके उमड़ते प्रथम मेघ अधिक प्रमुख हो जाते हैं। गीतिकार प्रकृतिके उपकरणोका महत्त्व तो स्वीकार करता है; किन्तु उन्हें वृत्तिसे अधिक प्रमुखता नहीं देता। वह अपनी वृत्तिका प्रतिबिम्ब प्रकृतिमें देखता है। इस प्रकार प्रकृतिकी आत्मा काव्यकी आत्माके साथ

घुल-मिल जाती है और आत्मानुभूतिकी अभिव्यक्तिको तीव्रता और उत्तेजना मिलती है। रीति-कालीन कवितामे जहाँ प्रकृति वासनाका उद्दीपन करती है, वहाँ प्रकृति गीति-काव्यमे काव्यात्मकताका ही। प्रकृति विभिन्न प्रकृतिसे दोनो प्रकारकी कविताओको प्रभावित करती है।

प्रकृतिकी मानव-सापेक्ष्य सवेदनशीलताके चित्र ग्राम-गीतोमे मिलते है। एक चित्र है—

झिलमिल बहेऽला बयार पवन भल डोलि रही।
डोले नवरङ्गियाक डार कोइलिया कुहक रही॥

अन्तरकी व्यथा इन पंक्तियोमे स्पष्ट है। एक गीत है—

गहिरी जमुनवाँके तिरवाँ चनन गछ रुखवा हो।
तिन डरिया परे हैं हिंडोलवा झुलहिं रानी रुकमिनी हो॥१॥
झुलतहि झुलत अबेर भा है औरो देर भा है हो।
मोरा टुटला मोतिन केर हार जमुन जल भीतर हो॥२॥
धावउ बहिनी चकैया तू हाली बेगि आवउ हो।
चकई! चुनि लेव मोतिक हार जमुन जल भीतर हो॥३॥
अगिया लगाओं तोरा हरवा बजर परै मोतिन हो।
बहिनी! सँझवैसे चकवा हेरान ढूँढ़त नहिं पावउँ हो॥४॥

गहरी नदी यमुनाके किनारे चन्दनका एक घना वृक्ष है। उसकी डालमे हिंडोला पड़ा है। उसपर रानी रुक्मिणी झूल रही हैं॥१॥

झूलते-झूलते देर हो गयी। सहसा उनका मोतियोका हार टूट गया और मोतीके दाने यमुनाके जलमे जा गिरे॥२॥

'रुक्मिणीने चकईसे कहा—हे चकई बहन! जल्दी दौड़कर आओ, और मेरे हारके मोतियोंको यमुनाके भीतरसे चुनकर निकाल दो'॥३॥

'चकईने कहा—तुम्हारे हारमे आग लगे, मोतीपर वज्र गिरे। साँझसे ही मेरा चकवा खो गया है। ढूँढ़ रही हूँ, किन्तु उसे पाती नही' ॥४॥

रुक्मिणी अकेले हिंडोलेपर झूल रही हैं। झूला सावन की सूचना देता है, बादल उमड़ते होगे, जिसके लिए किसी गॉवकी विरहणी कहती है—

अरे अरे कारी बदरिया तुहई मोरि बादरि।
बदरी ! जाइ बरसहु वहि देस जहाँ पिय छाये ॥

साँझके बीते देर हो गयी है नही तो 'सँझवै से चकवा हेरान' का तात्पर्य क्या रहेगा? रात हो आयी है, और आकाशमे है काले-काले उमड़ते मेघ। बिहारीको भले ही ऐसे समय "रात द्योस जान्यो परै लखि चकवा चकईन"का मजमून सूझ-पड़े, पर स्वाभाविकतया मनके सूनेपनको, यह अधिक तीव्र और विषादमय कर देता है। तुलसी इस स्वाभाविकतासे आकृष्ट हुए बिना नही रहते और 'घन-घमण्ड नभ गरजत घोरा प्रिया हीन डरपत मन मोरा' में मनकी व्यथा फूट न पडती। चकईका प्रियतम खो गया है; पावस-की गहरी अँधियारीमे विकलता फूट रही है। और सभ्य एव सुसंस्कृत समाजकी रानी रुक्मिणी आनन्दके साथ हिंडोलेपर झूल रही हैं। आकाश-के काले मेघ कृष्णकी याद नहीं दिलाते, वे कोई सूरकी गोपी तो है नहीं जो 'आजु घनश्यामकी अनुहारि' 'उमड आये सॉवरे सखि लेहु रूप निहार' गा सके। वियोगिनी चकईको इतनी फुरसत कहाँ जो उनके मोती चुन-सके। प्रियतमकी खोजसे बढ कर ससारमे और दूसरा काम है ही कहाँ? चकईका कथन सुनकर रुक्मिणीके हृदय की क्या अवस्था हुई, उसकी केवल कल्पना की जा सकती है। हारके मोतियोंके साथ नयनोके मोती भी यमुनामे बिखर गये होंगे, ऐसी आशा है। साथ ही सभ्यताकी कृत्रिमता,

जहाँ हार्दिक वृत्ति और रागात्मक अनुभूतिके निग्रहका आग्रह है—कितनी दयनीय है। इस कृत्रिमतापूर्ण सभ्यताके प्रति गम्भीर व्यग्यकी व्यञ्जना यहाँ है। "अगिया लगाओ तोरा हरवा बजर परै मोतिन हो"मे रोना, आक्रोश और तिरस्कारकी भावनाका सम्मिलित चित्र देखने योग्य है। चकई चकवा और साकेतिक सावनके उमड़ते मेघ उद्दीपन नही बल्कि पृष्ठभूमि हैं जिनकी भूमिकामे रखकर रागात्मक वृत्तिको देखनेका प्रयास है। भावना ही भावनाको जाग्रत करती है। सावनका प्रभाव उन्हीके शब्दोमें—

एक त गोरिया अँगवा क पातरि, दुसरे पिया परदेस।
तिसरे मेह झमाझम बरसै, सावन अधिक अँदेस।
कन्हैया नहीं आये
भादौं रैनि भयावनि ऊधो, गरजै अरु घहराय।
लवका लवकै ठनका ठनकै छतिया दरद उठि जाय।
कन्हैया नही आये

[एक तो गोरी अगकी पतली है, दूसरे पिया परदेशमे है, तीसरे झमाझम मेघ बरसते हैं। सावनमे प्राणोके जानेका अधिक अँदेशा है। हे ऊधो! भादोकी भयानक रात गरजती और घहराती है, मेघ गरजते हैं, बिजली चमकती है। छातीमें पीड़ा उठ खड़ी होती है। कन्हैया नहीं आये।]

सूरकी गोपियाँ भी कहती हैं—'कारी घटा देखि बादरकी नैन नीर भरि आये' किन्तु 'छतिया दरद उठि जाय' मे जो मनोव्यथा, जो वेदना है वह 'नैन नीर भरि आये'मे नही है। प्रकृतिके ऐसे चित्रणमे प्रकृति अपने रूपमे रहती है किन्तु कवि भावनाका विस्तार उसमें देखता है। उमड़ते मेघको देख उसे प्रियतमकी याद आती है। ज्योत्स्ना-

पुलकित रजनी सहज प्रेमभरे क्षणोकी याद दिला व्यथाको और तीव्रता, व्याकुलता और गम्भीरता देती है और वही प्रकृति उल्लासके क्षणोमे नूतन उन्माद, नवपुलक और नवीन चेतनाका सन्देश देती है। प्रकृति वहाँ मुख्य नहीं हो सकती, केवल अपने 'मूड' (वृत्ति)का चित्र कवि प्रकृतिके उपकरणोमे पाता है।

लखियत कालिन्दी अति कारी।
कहियो, पथिक ! जाय हरि सों जो भई बिरह जुर-जारी।
मनो पलिका पे परी धरनि धँसि तरँग-तलफ तनु भारी।
तट-बारू उपचार-चूर मनो, स्वेद-प्रवाह पनारी ॥
बिगलित कच कुस कास-पुलिन मनो पंकज कज्जल सारी।
भ्रमर मनो मति भ्रमत चहूँदिसि फिरति है अंग दुखारी ॥
निसि दिन चकई ब्याज बकत मुख, किन मानहुँ अनुहारी।
सूरदास प्रभु जो जमुना-गति सो गति भई हमारी ॥

इसमें केवल 'सूरदास प्रभु जो गति हमरी सो गति जमुना कारी' विचारणीय है, कारण वही यमुना सयोगके क्षणोंमे उल्लास, आनन्द और मनोविनोदका कारण थी। यमुनाका यह स्वरूप गोपियोकी मानसिक अवस्थाके कारण है। उसी यमुना-विहारका सुख एक दिन अवर्णनीय था—

विहरत हैं यमुना जल श्याम।
राजत हैं दोउ बाँह जोरी दम्पत्ति अरु ब्रजबाम ॥
कोउ ठाढ़ी जल जानु जंघलौं कोउ कटि हृदय ग्रीव।
यह सुख बरणि सकै ऐसे को सुन्दरता को सीव ॥

यह सुख, यह आनन्द मनोवृत्तिजन्य है। मन जब प्रसन्न है सारे संसार, विश्वके कण-कण, प्रकृतिके अग-अंगमे सौन्दर्य और आनन्दका लोक बसा है। जीवनका सौन्दर्य ही चारो ओर बिखरा पडा है और विषादके क्षणोमे प्रकृति भी उदास, मलीन, क्लान्त दीख पड़ती है।

एक दिन आकाशमे काली-काली घटाएँ छा गयी, बिजली चमकने लगी; आँधी-पानीमे कृष्ण और राधिका एक साथ चलते हैं। आकाशमें उमडते मेघ, घिरी हुई घटाएं और इन दो प्राणियोके उमड़ते हुए हृदय। उस दिन एक नयी घटना घटी। राधिका तरुणी हुई और कृष्ण तरुण। जीवनका सहज स्नेह प्रणयमे परिणत हो जाता है। आज-तक हृदयकी इस वृत्तिसे दोनों अनजान न थे। दोनोके मिलनका आधार बदल जाता है। वह बालापनका प्रेम भूलनेकी वस्तु नही, कारण उसीने नवीन रूप, नूतन आग्रह प्राप्त किया है। उस दिनके मेघ, क्या कहे कोई! कितना महत्त्व है उनका, कितनी सरसता है, कितना उन्माद है, उन बूँदोमें भीगना कितना सुखकर है!

गगन गरजि घहराई घटा जुरी कारी।
पवन झकझोरि चपला चमकि चहुँ ओर सुवन तनचितै नद डरत मारी।
कह्यो वृषभानुको कुँवरि सो बोलिकै राधिका कान्ह घर लिए जारी॥

और—

नयो नेह गेहु नयो नयो रस नवल कुँवरि वृषभानु किशोरी।
नयो पिताम्बर नयी चुनरी नयी नयी बूँदन भीजति गोरी
सूरदास प्रभु नवरस बिलसत नवल राधिका ज्यौं वन भोरी॥

नये स्नेह, नये रसकी सृष्टि करनेवाली वर्षाकी नयी-नयी बूँदे

नवीन वेदना, दुसह कष्ट और व्यथाकी सृष्टि करती है। आषाढ़के काले-काले मेघ कालिदासके दक्षको उन्मत्त बनाते है।

मघा लोके भवति सुखिनोऽप्यन्यथावृत्ति चेतः
कण्ठाश्लेष प्रणयिनि जने किं पुनर्दूरसंस्थेः॥
[जब सुहावनी घटा देखकर सुखी अनमने हो जाते।
तब आलिंगन-रसिक कभी क्या रह कर दूर चैन पाते॥]

पावसके उमडते मेघको देख सस्कृतमे एक कविने कहा—

पाथोवाह किमम्बुभिः प्रियतमा नेत्राम्बुसिक्तामही,
किं गर्जैः सुतनोरमन्दरुदितैरुज्जागराभूरपि।
वातैः शीकरिभिः किमिन्दुवदनाश्वासैः सवाष्पैरलं,
सर्वं ते पुनरुक्तमेतदपुनः पूर्वा पुनर्मद्व्यथा।

[रे बादल, तेरे जल बरसानेसे क्या लाभ ? क्या धरती वियोगिनीके आँसुओसे पहले ही गीली नही हुई ? प्रियाके जार जार रोनेसे सारी सृष्टि रो रही है, अतः तेरा गरजना भी व्यर्थ है। चन्द्रमुखीके मुँहसे आहे निकल रही हैं, वही जलकणसे पूर्ण वायुके लिए पर्याप्त हैं। हाँ, तूने एक बात नयी कर डाली है, वह है मेरी व्यथा। यह पहले कभी न हुई थी।]

सूरकी गोपियाँ भी कहती हैं,—'परम वियोगिनि गोविन्द बिनु, कैसे बितवैं दिन सावनके ?' भला कजरारे उमडनेवाले सावनके मेघ और वियोग ! भला सहन किये कैसे जायँ। विद्यापतिका भी यही रोना है—

सखि रे हमर दुखक नहिं ओर—
इ भर बादर माह भादर—
सून मंदिर मोर।

[हे सखि, मेरे दुःखका ओर-छोर नही, भादोंका महीना, भरे हुए बादल और मेरा मन्दिर सूना !]

सावनके बादल गाँवोमे कम ऊधम नहीं मचाते । नागकी नबल किशोरियोके हृदयमे ही नही बल्कि भोली-भाली ग्रामीण बालाओंके हृदयमें भी उथल-पुथल मच जाती है । आसमानसे झहरती और घहरती हुई बूँदें देख आँखोंमें बूँदे छा जाती हैं और धरती आर्द्र हो उठती है । गीतोकी इस दुनियामे दुराव नहीं, छिपानेका प्रमाण नहीं । भावनाकी उमड़ती गङ्गामें संस्कृति, सभ्यताका कृत्रिम बाँध नहीं, जीवनका उन्मुक्त विषाद कृत्रिम प्रस्तर-काराको तोड़ फूट पड़ता है, जैसे पत्थरके हृदयको चीरकर बहनेवाली पहाड़ी खर धारा, सहज स्वाभाविक आवेगसे पूर्ण, झहरती हुई, घहरती हुई । कोई बाधा नहीं, बन्धन नहीं, स्वच्छन्द और उन्मुक्त । यह उन्मुक्त धारा इन पंक्तियोंमें बह चली है—

साओन सनन पवन सनकय
दादुर टर-टर शोर यो।
बूँद झहरय भ्रमर भनकय
नयन टपकय नीर यो ॥

[सावनकी सनसन हवा सनक रही है, दादुरकी 'टर्र-टर्र' का शोर हो रहा है । बूँदें छटक रही हैं, भौरे भिनक रहे हैं और आँखोसे बूँदें टपक रही हैं ।] इसलिए अपने आँचलको फाड़-फाड़कर कागज बनाती है, और अपने प्रियतमके पास सदेश भेजती है—

अँचरा के फारि-फारि कगदा बनइतो,
लिखितो में पिया के संदेश ।

इतना ही नही, वह कोयलको संदेशवाहिका बना इस अनूठे प्रेम-पत्रको अपने पियाके पास भेजती है। वर्षा आ गयी। कोयल कहीं दूर देशमे जा बसेगी। वसन्तके साथ वह भी चली जायगी। प्रियतम दूर देशमें हैं। कोयल सम्भव है वहीं जाती हो, फिर उससे अधिक उपयुक्त संदेश-वाहक हो कौन सकेगा? कोयलका लौटना सूचना देता है, बसन्त बीत गया, अब पावस रानीकी कहानी अकथनीय है।

लयलिय लयलिय लिखलहुँ पाँति
बितय चहय पिक आधी राति
काजर मसि नख सँ लिख देल
हृदय क कागद फारिय देल
पवन पाँखि लय लहु-लहु जाय
मेघ चढ़ल अहँ अटि दै आय

[यह लो मेरे प्रवासी साजनके लिए लिखा गया पत्र जो मैंने लिखा है। कोयल, आधी रात बीतनेको आयी। हृदयका कागज फाड़कर आँखोंके काजलकी रोशनाईमे नखकी कलम डुबोकर मैने पाती लिखी है। मेघ बरसा ही चाहता है, हवाके पंखोपर चढकर धीरे-धीरे दूसरी विरहिणी कहती है—

अरे-अरे कारी बदरिया तुहइँ मोरि बादर।
बदरी! जाइ बरसहुँ वहि देश जहाँ पिया छाये॥

सूरदासकी गोपियाँ समझ नही पाती कि मथुरामे भी मेघ छाते हैं, अथवा नही। यदि आकाशमें मेघ उमड़ते फिर उमडते हृदयको रोकना सम्भव नही होता और कृष्ण रुक पाते नही। कृष्णके वियोगमें प्रचण्ड सूरमा

बननेवाले 'दादुर, मोर, सारङ्ग, पिक' आदि क्या उस देशमे नहीं हैं?

किधौं घन गरजत नहिं उन देसनि!
किधौं वहि इन्द्र हठिहि हरि बरज्यौ, दादुर खाए शेषनि ॥
किधौं वहि देस बकन मग छाड़्यो, धर बूड़ति न प्रवेसनि।
किधौं वहि देस मोर, चातक पिक बधिकन बधे विशेषनि ॥
किधौं वहि देस बाल नहिं झूलति गावति गीति सहेसनि।
पथिक न चलत सूरके प्रभु पै जासों कहौं सँदेशनि ॥

भावनाके साथ बदलते प्रकृतिके चित्रोके सम्बन्धमें 'बच्चन' ने लिखा है—

तारक-दल छिपता जाता है।
कलियाँ खिलतीं, फूल बिखरते,
मिल सुख दुखके आँसू झरते;
जीवन और मरण दोनोंका राग विहंगम-दल गाता है।
तारक दल छिपाता जाता है।
इसे कहूँ मैं हास पवनका
या समझूँ उच्छ्वास पवनका?
अवनि और अंबर दोनोंसे प्रात-समीरणका नाता है॥
तारक-दल छिपता जाता है।

विहंगमके गीतोंको जीवन और मरणका राग न कह ऐसा कहेंगे कि अपने मनोनुकूल भावका आरोप हम उनपर कर लेते हैं। यह बात नहीं है कि विहंगम सुख-दुःखके हास-अश्रु भरे गीत नहीं गाता किन्तु मनुष्य स्वयं अपने हर्ष-विषादमें इतना तल्लीन है कि विहंगमके गीतोका मर्म वह समझनेकी चेष्टा कैसे करे, इसी लिए झट वह अपने मनकी

भावनाका आरोप उनपर कर लेता है। परिस्थितियोंके सीमा-पाशमें आबद्ध जीवनकी विवशता, विषादकी स्पष्ट छाया हृदयपर छोड जाती है। जीवन, इस सारे संसारके साथ विषादके सम्बन्ध-सूत्रसे बँधा है। जीवनकी यह कठिनता निराशा और उदासीनताको जन्म देती है और उसका एक पूर्ण चित्र 'कीट्स' 'ओड टु नाइटेंगेल' शीर्षक कवितामे उपस्थित करता है—

Fade away, dissolve, and quite forget
What thou among the leaves hast never known,
The weariness, the fever, and the fret
Here. where men sit and hear each other groan;
Where palsy shakes a few, sad, last grey hairs,
Where youth grows pale, and spectre thin,
and dies;
Where but to think is to be full of sorrow
And leaden-eyed despairs,
Where Beauty cannot keep ber lustrous eyes,
Or new love pine at them beyond to-morrow.

इसमें वैयक्तिक विषादकी भावनाके साथ सम्पूर्ण जगत्के विषादका संवेदनशील चित्रण है।

कवि प्रकृतिमें अपनी भावनाओंका आरोप नहीं करता। जीवन और उसकी परिस्थितियाँ उसे पीड़ित और व्यथित करती हैं। यह संसार, अनाचार, क्रूरता, अकृतज्ञता और द्वेष, पीड़ा-व्यथाका सभार लेकर चलता है। जहाँ कलेजेके दो टूक होते हैं, हृदय जहाँ मसल दिया जाता है, भावनाएँ कुण्ठित हो जाती हैं, प्रेयसी जहाँ रूठ जाती

है, जिससे प्रेम किया जाता है वह दगा दे जाता है; जहाँ जिसके लिए चोरी की जाती है, वही चोर कहता है। असफलताएँ जीवनको घेरेमे डाल देती है। निराशा, प्रतारणा, सन्देह, द्विधा जीवन मन्थन करते हैं। ऐसी अवस्थामे इस कृत्रिम, व्यथा-पीडा भरे ससारसे दूर हटकर प्रकृतिकी गोदमें ही विश्राम मिल सकता है, जहाँ अनन्त सौन्दर्य है, आनन्द है, उल्लास है, मोहकता है, जीवन है, संवेदनशीलता है। वायु आनन्दकी हिलोरे देती है, निर्झर मुक्ति और स्वतन्त्रताका सन्देश देता है; पक्षी कलरवद्वारा जीवनके आनन्दके उल्लासकी सूचना। सारी प्रकृति निश्छल प्रेमके सूत्रमे बँधी है। वैयक्तिक लालसासे हीन सौन्दर्यके रस-चित्रमे विषाद नहीं, व्यथा नहीं और न यहाँ आँखे विषादकी गहरी धूमिल छायासे आवृत और न व्यथाके आँसुओसे गीली हैं। बाल-सुलभ आनन्द और सरलताके दर्शन कविके गीतोमें होते हैं। वहाँ कोई द्विधा नही; कोई सङ्कोच नही; कोई पराया नहीं; कोई दुराव छिपाव नही। कृत्रिमता पीछे छूट जाती है, सहज स्वाभाविक प्रबल आकर्षण नवोन्मेष जागरणका सन्देश देता है। एक प्रकारसे जीवन और उसकी क्रूर परिस्थितियोके समक्ष अपनी विजय-पराजयकी स्वीकृति और उससे पलायनकी मनोवृत्ति उसके भीतर है, किन्तु ऐसा समझना उचित नहीं होगा कि वह जान-बूझकर भागनेका प्रयास करता है। बल्कि प्रकृतिका सहज सुन्दर स्वरूप उसे आकृष्ट कर लेता है और उस स्वरूप विधानमे ही उसे आनन्दानुभूति होती है एव प्रकृति जीवनके अजस्र आनन्द-स्रोतका केन्द्र बन जाती है। गीतोकी रचनाके समय आनन्द, उल्लास और इनके अतिरिक्त अन्य किसी भावनाकी उत्तेजना ऐसे कविको नही रहती। ऐन्द्रिय सौन्दर्य विधान सौन्दर्य-भावनाको आक्रान्त कर लेता है, मनोवृत्ति उमड पड़ती है। अनुभूति जग जाती है और उसकी भावना

आनन्द स्रोतमे डुबकियाँ लगाने लगती है। अनायास उसका सौन्दर्य-बोध नये ससारमे प्रवेश कराता है और इस प्रकार भावनाएँ सगीतके परो-पर चढकर लय और स्वर भरने लगती है और अनुभूतिकी चेतना उसे एक विधान अथवा अभिव्यक्तिका माध्यम देती है। सौन्दर्य-बोध, और अनुभूतिकी चेतना अभिव्यञ्जनाके साथ मिलकर एकाकार हो जाते हैं; एकात्मता ग्रहण करते हैं और कविता रूप ग्रहण करती है। उसके गीतोका और कोई लक्ष्य नही, अपने गीतोंमे अभिव्यक्त आनन्द और उल्लासको ही कवि महत्त्वपूर्ण समझता है। आनन्दके साथ एकात्म होकर वह अपने आपकी चेतनाको भी थोडे समयके लिए खो बैठता है। उसकी चेतना, उसकी जागृति केवल एक दिशाका सकेत करती है। आवेशके इन क्षणोंके अपक्रमणके बाद ही उस आनन्दको वह व्यथा दग्ध संसारको बॉट देना चाहता है, वह उस उल्लासको सर्वसाधारणका बना देनेका प्रयास करता है; निश्चया-त्मक रूपमें यह उसका विचार है, जिसकी पीछे चलकर उद्भावना होती है। उस आनन्दमय सृष्टिके समय वह अपने आपको भूल बैठता है, ससार, यश, सहानुभूतिको भी, केवल उसके लिए सौन्दर्य और आनन्दकी अनुभूतिमात्र सत्य हैं। उस समय काव्यकी रचनाका उद्देश्य—

'काव्यम् यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये' अथवा 'कान्तासमि-तसयोपदेशयुजे' नहीं, केवल 'सद्यः परिनिर्वृतये' रह जाता है। सौन्दर्य ऐसी अवस्थामें किसी विशिष्ट रूपमें नहीं रहता बल्कि सम्पूर्ण प्रकृति सौन्दर्यका समाहित चित्र उपस्थित करती है। वह फूलोंकी सुगन्धिसे आकृष्ट हैं, बादलोसे आकर्षित। कोयलकी कूक और आमकी बौरें उसे आकुल करती हैं; निर्झरका संगीत उसकी हृदय तन्त्रीके तारोको हिला देता है किन्तु यह सारा सौन्दर्य एक सूत्रमे बॅधा है। वह सार्वभौम सौन्दर्यका अंग-मात्र

है, वह सौन्दर्यके इस सूक्ष्म और व्यापक रूपका गायक है। छायावादी युगमें प्रकृतिका यह सौंदर्यात्मक आवेश कविमे अधिक रहा। प्रकृतिद्वारा सौन्दर्य लिप्साकी पूर्त्ति, उसके आनन्द और उल्लासके प्रति भावोन्मेष पन्तकी कुछ कविताओंमें प्राप्त है। सौन्दर्यका यह उल्लासमय आग्रह पन्तमे सदा नहीं रह सका पीछेकर भावोकी अभिव्यञ्जनामे प्रकृतिका सहारा पन्तने लिया और प्राकृतिक चित्रणोमे भावनाओका सौन्दर्य, सुख-दुःखकी अनुभूति-का सौन्दर्य मिला पतने ऐन्द्रिय चित्र उपस्थित किया है किन्तु शुद्ध सौन्दर्यिक उन्मेष और उल्लासके चित्र भी प्राप्त है:—

आज उन्मद मधु प्रात
गगनके इन्दीवरसे नील,
झर रही स्वर्ण-मरन्द समान,
तुम्हारे शयन-शिथिल,
सरसिज उन्मील,
छलकता ज्यो मदिरालस, प्राण

... ...

आज वनमें पिक, पिकमे गान, विटपमें कलि, कलिमें सुविकास, कुसुममें रज, रजमें मधुप्राण! सलिलमे लहर, लहरमें लास मनोभावोंका मधुर-विलास विश्व-सुषुमा ही का संसार।

\+ + +

सिहर उठे पुलकित हो द्रुम-दल,
सुप्त समीरण हुआ अधीर,
झलका हास कुसुम अधरोंपर
हिल मोतीका - सा दाना;

खुले पलक फैली सुवर्ण छवि
जगी सुरभि डोले मधुबाल,

यहाँतक कि असीम उल्लासको पन्त सर्वत्र व्याप्त देखने लगते हैं—

एक ही तो असीम उल्लास
विश्वमें पाता विविधाभास;
तरल-जलनिधिमे हरित विलास,
शान्त अम्बरमे नील विकास;
वही :उर उरमें प्रेमोच्छ्वास,
काव्यमें रस, कुसुमोमे वास,
अचल तारक पलकोमें हास,
लोल लहरोमे लास !
विविध द्रव्योमें विविध प्रकार
एक ही मर्म-मधुर झंकार !

किन्तु यह असीम उल्लास जिसकी सर्वत्र व्याप्ति है पन्तको अधिक समयतकके लिए अपनेमे बाँध नही पाता और भावना-सापेक्ष्य प्रवृत्तिका रूप उनके सामने आ उपस्थित होता है। और—

पपीहोकी वह पीन पुकार,
निर्झरोका भारी झर्-झर्,
झींगुरोंकी झीनी झनकार
घनोंकी गुरु गम्भीर घहर;—

पर मुग्ध कविके प्राण गा उठते हैं—

तेरे उज्वल आँसू सुमनोंमें सदा
वास करेंगे, भग्न हृदय ! उनकी व्यथा
अनिल पोंछेगी, करुण उनकी कथा
मधुप बालिकाएँ गाएँगी सर्वदा

और— इस तरह मेरे चितेरे हृदयकी
बाह्य प्रकृति बनी चमत्कृत चित्र थी ।

महादेवीमें प्रकृतिके इस सौन्दर्यात्मक आवेशका अभाव है । पन्त का-सा सौन्दर्यात्मक आकर्षण उनमे नहीं और न प्रकृतिके उस उल्लास-का चित्र ही उनमे है । अनुभूति, भावना, और रहस्यकी धूप-छाँहके दर्शन महादेवीके गीतोमे है । प्रकृतिके साथ तादात्म्यकी ध्वनि महादेवीके गीतमे मिलती है किन्तु वह एकात्मता प्रकृति-प्रेम अथवा उसके सौन्दर्यके आकर्षणके कारण नही , बल्कि रहस्यात्मकताके आग्रहके कारण वह एकी-करण है ; किन्तु प्रकृतिके साथ तादात्म्यका सफल चित्रण है—

तारक-लोचनसे सींच-सींच नभ करता रजको विरज आज,
बरसाता पथमें हरसिंगार केशरसे चर्चित सुमन लाज,
कण्टकित रसालोंपर उठता—
है पागल पिक मुझको पुकार ।
लहराती आती मधु बयार ।

प्रकृति विचार और बुद्धिकी पीठिकाके रूपमे ही महादेवीमे उपस्थित होती है । गीतोंमे एक भिन्न संकेत है जिसकी अस्पष्ट व्यञ्जना महादेवी-के गीतोंको कल्पना—बहुल, अस्पष्ट-रेखा सीमाहीन और धुँधला बना देती है । पाठक कविके साथ समझौता नही कर पाता और वह महादेवीके

अशरीरी सौन्दर्य और भावनाको अस्पष्ट दुरूह कह अलग हटा देना चाहता है ; और काव्य-दृष्टिसे महादेवी मीराकी ऊँचाईपर कम ही पहुँचती है, ऐसा कह उठता है। मीराके गीतोंमें जहाँ ऐन्द्रियता है, शारीरिकता और रूपकी स्थूलताके दर्शन हैं, वहाँ महादेवीकी मन्द्र गम्भीर, अनुभूतिकी कल्पना और बुद्धिका सहयोग मिला है। यह दूसरी बात है कि महादेवीका यह चित्र अनेकोंके लिए अस्पष्ट रह जाता है, वे अनेक रागात्मक क्षणोंकी अनुभूति पकड़ नही पाते और विचारोंके प्राचीरोंमे बन्द भावनातक पहुँच नही पाते ; और यह भी दूसरी बात है कि उनका आध्यात्मिक आवेश 'गिरिधर' को सीमाओंमे आवृत नही करता। यह तो महादेवीकी देन है कि वे इस आध्यात्मिक भावनाको मुक्ति देती है। कबीरमे जहाँ यह रूप साम्प्रदायिकताको लेकर उपस्थित होता है, वहाँ महादेवी उसे करुण कोमल अभिव्यक्ति देती है। मीराके प्रभावका कारण अनुभूतिकी गहराई माननेवालोंका अर्थ उस अनुभूतिकी स्वच्छन्द अभिव्यक्तिसे ही है।

प्रकृतिके बाह्य सौन्दर्य, उसके अतिव्याप्त और तथ्यगत रूप तथा आँखोंको तृप्त कर सकनेवाले आकर्षणके प्रति महादेवीकी चेतना जाग्रत नही। पन्तकी ऐन्द्रियता और सौन्दर्यकी प्राकृतिक परिणतिमे महादेवीका मोह नहीं। उसका रूप और उसका सङ्गीत अनुभूति और भावनाको जाग्रत अवश्य करते हैं किन्तु वे वहींतक रुकती नहीं। निरालाकी आध्यात्मिकता चेतनाका प्रवाह भी उसमे नही; पन्त प्रकृतिके उपकरणोंसे सन्देश, संवेदनशीलता, प्रेरणा अथवा विफलताका भाव भी जहाँ ग्रहण करते हैं महादेवीमें वैसा आग्रह नहीं। प्रकृति चित्र उपस्थित करती है किन्तु भावनाकी भूमिकाके रूपमे, अनुभूति सापेक्ष्य प्रकृतिके कुछ चित्र महादेवीमें हैं किन्तु यह उनकी मुख्य प्रवृत्ति नहीं जान पडती। प्रकृतिकी अन्तर्धारा

और उसकी आध्यात्मिक अतः रहस्यात्मक अभिव्यञ्जना ही अभिप्रेत है। महादेवी प्रकृतिको पन्तकी भाँति चेतना तो देती है किन्तु दोनोकी चेतना भिन्न प्रकारकी है। महादेवीमे प्रकृतिके प्रति प्रेम कही नही लक्षित होता। ऐन्द्रिय रूप-आकर्षणका आभास यत्र-तत्र हिन्दी-गीतोमे मिलता है। अधिकाश गीतोंमे अपनी भावनाका प्रसार ही पाया जाता है—

पर्ण कुञ्जोंमें न मर्मर गान
सो गया थककर शिथिल पवमान
अब न जलपर रश्मि बिम्बित लाल
मूँद उरमें स्वप्न सोया ताल
सामने द्रुम राजि तमसाकार
बोलते तममें बिहग दो चार
झींगुरोंमें शोर खगके लीन
दीखते ज्यों एक रव अस्पष्ट अर्थ-विहीन
दूर श्रुत अस्फुट कहींकी तान
बोलते मानो तिमिरके प्रान। —दिनकर

प्रकृतिके उल्लासपूर्ण सौन्दर्यका चित्र यहाँ है—

बकुल-मुकुल-मन्ध अन्ध कुञ्ज-कुञ्ज डोले
अरुण-तरुण किरण संग तिमिर पुञ्ज डोले
मधुप मुग्ध झूम रहे
फुल्ल कुसुम चूम रहे
करमें मधुपात्र लिये
द्वार द्वार घूम रहे

विहँस रही नव कलिका द्वार बन्द खोले —नेपाली

× × ×

दिवानी वह पूनोकी रात
जवानी वह पूनोकी रात
कि हँसता तन्द्रामें भी विश्व
कि जगता निद्रामें भी विश्व
कि जुगुनू बन उड़ते हैं स्वप्न
कि तारे बन जुड़ते हैं स्वप्न —नेपाली

नेपाली प्रकृतिके शात और स्निग्ध रूपसे कम आकृष्ट नहीं। नेपाली संसारकी कृत्रिमता और बाधा बन्धनसे त्राणका मार्ग प्रकृतिकी गोदमे पानेके अभिलाषी हैं। जीवनका सौन्दर्य नष्ट हो गया है, कानून सरकार और अदालत नये बन्धनकी सृष्टि कर मानवताका नाश कर रही हैं। प्रकृति जीवनको शान्ति, और सान्त्वना देती है। 'जीवन यहाँ रातदिन हिल-मिल, खेल परस्पर, झेल परस्पर 'और' संध्या खुली-धुली पावसकी, 'आयी बनमें अभी उतरकर' इसीलिए वह कह उठता है 'चल दे मस्त मगन आनन्दित कवि मालवकी एक डगर पर' ; कारण :—

दूर यहाँसे घनी बस्तियाँ ,
मानव-मानवमें अभ्यन्तर ;
दूर कलह, अति दूर मलिनता ,
दूर कपटके तन्तर-मन्तर ।

पन्त और नेपाली दोनों प्रकृति-सौन्दर्यसे आकृष्ट हैं किन्तु पन्तका प्रकृति-प्रेम कोमल-भावनाका मधुर रूप हमारे सामने उपस्थित करता

है, उस ऐन्द्रिय सौन्दर्य-बोधमें कोमलता है, भावनाका मधुर और कल्पना-का आवेश है, वहाँ नेपालीके चित्रोंमे स्पष्टता, पुरुष-भावोन्मेष और इतिवृत्त्यात्मकता है। सौन्दर्यका झीना आवरण उसमे नही बल्कि तीव्र आग्रह है। प्रकृतिका अन्वित ओर एकभूत रूप नेपालीके सामने नहीं आता, प्रकृतिके भीतर रहस्यात्मक आवेश भी वह नहीं देखता और न प्रियतमका सन्देश ही उसे प्रकृतिसे मिलता है। अज्ञात प्रियतमकी रूपाभिव्यक्ति भी नेपालीकी प्रकृतिमें नही। बाल सुलभ चपलता, औत्सुक्य उसमे है और व्यापक प्रभावकी ओर उसकी दृष्टि जाती है। प्रकृतिके अंग उसे नवीन उल्लास, उन्माद अथवा विचारसे उद्वेलित कर उठते हैं। कलिकाओंके साथ वह हँसता है, चाँदनीमे खिलखिला पड़ता है। सावनमे मस्त हो जाता है। वह ज्ञानी नही, विचारक भी नही, मस्त है और मस्ती ही उसकी दुनिया है, जिस मस्तीके लिए अकबरने लिखा था—'मैं बीमारे होश था, मस्तीने अच्छा कर दिया।' 'ज्ञानी और मस्त' कविता-में उसने अपना दृष्टिकोण दिया है—

ज्ञान तुम मुझसे कहते रहे
और मै तुमपर सोचता रहा
सोचते रहे खड़े तुम तीर
और मैं अलमस्तीमें बहा
एक दिन ऐसा आ भी गया
चले तुम चला तुम्हारा ज्ञान
और मैं हँसते हँसते बढ़ा
किया हँसते-हँसते विष पान
झूमकर मैं पीता था जाम, लड़ाते तुम बैठे अन्दाज।

प्रकृति ऐसी अवस्थामे अपना जीवन और अस्तित्व रखती है, उसके जीवनमे विकास, उन्माद और ह्रास है। मानव उस प्रकृतिकी गोदमे पला अनजान और निरीह शिशु है, चेतना और कर्तृत्व-हीन। प्रकृतिकी स्वतन्त्र सत्ता मूर्त्त रूप धारण कर लेती है। बादल केवल उड़ते हुए जीवनसे विच्छिन्न प्राकृतिक उपकरण मात्र नही रह जाते, हरसिंगार रात्रिके अन्तिम प्रहरमें झड़ पडनेवाला मात्र पुष्प नही रह जाता, बल्कि उसमे प्राण है, नव-विधान है। सौन्दर्यका मूर्त्त-विधान नवीन उन्मेष देता है, यद्यपि प्रियतम या बालाके रूपोका दर्शन उसमे नही होता। ऊषा केवल आकाशकी रक्तिम आभा मात्र नही रहती, अरुण प्रभात और सूर्योदयका केवल सन्देशवाहक प्रकृतिका एक अगमात्र नही रह जाती बल्कि साकार और मूर्त्त है। ऊषा भागती है, अरुण उसके चुम्बनके लिए मतवाले और मत्त प्रेमीकी भॉति उसके पीछे भागता है। चॉदनी केवल आलोक मात्र ही नही देती। पन्तमें भी ऐसा आवेश दीख पड़ता है। 'छाया' केवल आश्रय और, विश्रामदायिनी गोदमात्र नही बल्कि 'बिरह मलिन दुख विधुरा' भी है और 'विजन निशा'मे 'प्रियतमके गले' लगते देख कविको अपने प्रियतमके बिछुड़नेकी याद आ जाती है। बादल 'सुरपतिके अनुचर' और 'जगत्प्राणके सहचर' हो जाते हैं। इस प्रकारके प्रकृति चित्रण मुख्यतया विशेषणोमें जीवित रहते हैं। प्रारम्भसे लेकर अन्ततक विशेषणों-की भरमार रहती है, किन्तु उनमें प्रकृतिका स्वरूप-विधान मिश्रित रहता है, केवल जहॉ विशेषण और अलङ्कारके चमत्कारसे उसे मूर्त्त-विधान देनेकी चेष्टा होती है, वहाँ गीति-काव्यका स्वरूप अक्षुण्ण नहीं रह पाता।

झलमल-मुक्तादल-नव जल धर—
जलधर कुन्तल जाला।

कज्जल कल, चपला चल लोचन
गोरोचन रुचि-भाला।
विमल बलाका-माला, सुरधनु—
अनुरञ्जित वर अम्बर।
मदिर मन्द मंथर गति आगत
स्वागत पावस-बाला।

'स्वागत पावस-बाला'मे क्षीण वृत्तिका आभासमात्र मिलता है, कारण आनन्द नही मिलनेपर पावस-बालाके स्वागतकी आवश्यकता नहीं होती और न कवि स्वागत करता ही किन्तु इसमे शब्द झंकार तथा अलङ्कारत्व-के विधान और निर्वाहकी चेष्टा की गयी । इस चित्रमे रूप-विधान है, विशेषणोके प्रयोगसे उसके विधानको रूप प्राप्त होता है किन्तु इसमे मनोवृत्तिसे अधिक चित्रमत्ताका आग्रह अधिक है और स्वागत करनेपर भी पावस बालामे प्राण-प्रतिष्ठा नहीं हो सकी। प्राण-प्रतिष्ठाके लिए योजनामे केवल परम्परागत रूप-विधान अथवा वैज्ञानिकोके तथ्य निरूपण-से दूर हटकर कल्पनाका आश्रय लेना पडता है, यद्यपि उस कल्पनाका आधार अवश्य रहता है। विचार और बुद्धिकी सीमामे प्रकृतिका यह मूर्त्त-विधान नहीं टिकता। इसके अतीत और वर्तमानसे अपनेको अलग कर मानव-विकासकी उस चिन्तना स्थितिपर पहुँचनेकी आवश्यकता होती जहाँ विस्मय जीवनका मूल था, शक्ति थी। आजके बौद्धिक जीवनमे इस प्रकारकी सादगी और बाल्य-सुलभ चपलता सम्भव नहीं और न उस प्रकारके चित्र प्राप्त हो सकते है। यह तो क्षण-विशेषकी देन है, जिसमे कवि अपनेको अतीत और वर्तमानके क्रूर क्षणोसे कुछ समयके लिए सम्बन्ध-विच्छेद कर पाता है। जीवन-विकास-कालके बाल-सुलभ विस्मय-

की अवस्थामे पहुँचनेपर भी कलात्मकता और उसके प्रत्यक्षीकरणके साधनोंके रूप-परिवर्त्तनके कारण नवीन आवेश उसमे मिलता है। हिन्दी-के आधुनिक काव्य-कालमे प्रकृतिको विस्तार मिला है किन्तु अभी वह अपने पूर्ण-प्रभावके साथ किसी कविमें उतर नहीं सकी और न यह सम्भव है। अंग्रेजीके रोमाटिक युग-सा आजका युग नही। युगीन प्रभाव काव्यपर अचेतन रूपमें पड़ता है, जहाँ यह प्रभाव प्रत्यक्ष रूपमें प्रकट होता है, वहाँ वह कलाकी परिधि छोड़कर प्रचारकी राज्य-सीमामें प्रवेश करता है। कल्याण-अकल्याणके विचारोंसे दूर कलात्मक रूपसे इसे हम स्वीकार नहीं कर सकते किन्तु इसके साथ यह भी स्वीकार करना पड़ेगा कि युगकी छापसे हीन कला नही हो सकती, आँख बन्द कर कल्पनाके सहारे किसी नवीन लोकका खड़ा नही किया जा सकता। इस प्रकार चिरन्तन सत्य और युग-धर्ममें विरोध नहीं खड़ा होता बल्कि युगकी वाणी शाश्वत और चिरन्तन वाणीके परिवर्त्तित रूपमे प्रकट होती है। यह परिवर्त्तन ही युगकी विशिष्टताको प्रत्यक्ष करता है अतः समाजकी सांस्कृतिक, कलात्मक भावनाका विकास बाह्य परिस्थितियों और उन्मेषकी सूचना देता है। उस रोमाञ्चवादी युगकी अब न तो परिस्थितियाँ रही और न वह आवेश रह सकेगा। प्रत्येक कवि, साहित्यिक अथवा विचारकके निर्माणमे उसके युगका हाथ है, यद्यपि उसकी महानताके मूलमे साधारण विचारोंके विरोध दीख पड़ते हैं, इस विरोधके अभ्यन्तरमें युग-भावनाका आभास अवश्य मिलेगा। इस प्रकार आजकी बुद्धिवादिता जीवनको आविष्ट क्षणोंमें हमारी चेतनाका त्याग नहीं करती और फलतः चित्रोंमें बौद्धिकता आ जाती है। इस बौद्धिकताका कई रूपोंमें प्रवेश काव्य-क्षेत्रमें होता है। कुछ कवि प्रकृतिको संघर्षका मूल मानने लगते हैं; कारण सभ्यता और संस्कृति प्रकृति प्रकृति और अन्तप्रकृतिके संघर्षके कारण उत्पन्न होती

है—'मेरे दुखमे प्रकृति न देती क्षणभर मेरा साथ'—रामकुमार वर्मा। प्रकृति प्रकार सभ्यता और उसके विकासके मार्गमे बाधक होती रही। प्रकृतिसे प्रेरणाके स्थानमें बाधा सदा मिलती रही। प्रकृतिका यह क्रूर परिहास है, वह हमारे दुःखोंमें साथ नहीं देती, रोनेपर हँसती है, खिलखिलाती है, हँसनेपर चिढ़ाती है, क्षणिकताकी ओर संकेत देकर सुखके क्षणोंमे विष घोल देती है। हमारे अच्छे दिनोंको मिटाती और उन्हे स्थिर और चिर नहीं होने देती। प्रकृति क्रूर है, कर्कश है, कठोर है। इसका सौन्दर्य भी मानव सौन्दर्यकी भाँति क्षणिक और अस्थायी प्रभावका है। प्रकृति किसी भी अवस्थामें संवेदनशील नही। इसी बौद्धिकताका दूसरा रूप प्रकृतिसे उत्तेजना और प्रेरणा पानेकी अभिलाषा रखता है। इसमे जिज्ञासा और विस्मयके भाव मिले हैं। आध्यात्मिक एकता अथवा प्रकृतिकी आत्मिक और एकान्तिक स्थितिमे इस बौद्धिकताका आग्रह हम देखते है। प्रकृतिको एक सम्बन्ध-सूत्रमे पिरोनेका कार्य बुद्धि करती है किन्तु इसकी चेतना अनुभूतिगम्य होती है। प्रकृतिके उपकरणोसे अज्ञात प्रियतमका सन्देश अनुभूतिके बौद्धिक आधारके कारण है। इस प्रकार प्रकृति और गीति-काव्यकी प्रकृतिमे अविच्छेद सम्बन्ध है। केवल प्रकृतिके यथा तथ्य अथवा अति अलंकृत चित्रणके लिए इसमे सकुचित स्थान है।

मानवता

प्रकृतिसे सन्देश प्राप्त करनेवालेकी दृष्टि प्रकृतिसे आबद्ध होनेके कारण भूल जाती है कि सन्देश वहन करनेवाला व्यक्ति है, सन्देशका माध्यम और आधार व्यक्ति है। व्यक्ति भी प्रकृतिका अग है, और मानवता एवं उसकी अकाक्षा, स्वप्न और विचारकी अभिव्यक्ति गीति-काव्यके लिए अपेक्षित हो जाती है। लोक-गीतोंमे वैयक्तिकताकी छाप

अधिक है किन्तु हमे सदा ध्यान रखना होगा कि काव्यकी सफलता वैयक्तिक होकर भी 'टाइप' (type) होनेमें है, उस व्यक्तित्वका उभार ऐसा न हो कि सामाजिक आधार वह खो दे। व्यक्तिकी रागात्मक अनुभूति और चेतनासे उद्बुद्ध गीति-काव्य इसी सीमामे सीमित नहीं रह सका और सम्पूर्ण मानवताके प्रति प्रेम और आस्थाका राग उसे प्राप्त हुआ। मानवताका यह प्रेम किसी समाज, व्यक्ति अथवा राष्ट्रकी सीमामें बँधा नहीं रह सका। कविके अन्तरकी धारा प्रस्तर कारामे अवरुद्ध न रह सकी बल्कि उन्मुक्त हो प्रखर वेगसे धराको सिञ्चित कर उठी। कवि देखता है, मानवता आज कराह उठी है, मनुष्य पशुसे भी अधिक दुरन्त और कराल हो उठा। यह पशुता मनुष्यको मनुष्य नहीं रहने देती। जीवन दुर्वह और कठिन है। सारी प्रकृतिमे आनन्द और उल्लास है। धराके उपवनमें बसन्तका श्री-सौरभ है और मानवताके उदास उन्मन वनमे विस्तृत और शुष्क पतझड। उसकी 'विगलित करुणा उदार' हिमालयकी छाती फाड़ उमड पडती है। कवि गाता है—

वह आता—
दो टूक कलेजेके करता पछताता पथपर आता।
पेट पीठ दोनो मिलकर हैं एक,
चल रहा लकुटिया टेक,
मुट्ठीभर दानेको—भूख मिटानेको
मुँह फटी पुरानी झोलीका फैलाता—
दो टूक कलेजेके करता पछताता पथपर आता। —निराला

इन पंक्तियोंकी महत्ता, यथा—तथ्य वर्णन, अपूर्व चित्रमत्ता, लयात्मक आवेशमें नहीं बल्कि उस मानवीय संवेदनमे है जो बाल्मीकि-

की वाणीमे क्रौंचवधके करुण दृश्यके कारण फूट पडी थी। करुणाकी व्यञ्जना कविकी गम्भीर रागात्मक अनुभूतिकी सूचना देती है। 'दो टूक कलेजे'मे जो विदग्धता, करुणा, विवशता, आवेश और संवेदन है, वह अनुभूतिगम्य है। 'मुँह फटी झोलीका फैलाता'मे विवशता मूर्त रूप धारणकर उपस्थित हो जाती है। जीवनकी कातरतामें प्राणोंका रस निरालाने घोल दिया है। पन्तमें मानवताके प्रति आस्था कम नहीं और उससे सहानुभूति भी कम नहीं, किन्तु पन्तकी सहानुभूति बौद्धिक है रागात्मक नही, अतः निरालाके संवेदनात्मक चित्रोमे तीव्रता है वह पन्तकी संवेदनामे नही। पन्तने स्वयं स्वीकार किया है कि ग्रामीणोंके प्रति बौद्धिक सहानुभूति ही उन्होने दी है। पन्तकी ग्राम युवतीका चित्र है—

रे दो दिनका
उसका यौवन !
सपना छिनका
रहता न स्मरण !
दुखोंसे पिस ,
दुर्दिनमें घिस ,
जर्जर हो जाता उसका तन !
ढह जाता असमय यौवन धन।
बह जाता तटका तिनका
जो लहरोसे हँस खेला कुछ क्षण !!

ग्राम-युवतीके इस चित्रमे कोई स्थानीय महत्त्व नहीं दीख पड़ता। यौवनके ढलने और सपनोकी चञ्चलताद्वारा उस चित्रमे कोई विशिष्टता नहीं आ सकी है। महादेवीने लिखा है—

विकसते मुरझानेको फूल, उदय होता छिपनेको चन्द,
शून्य होनेको भरते मेघ, दीप जलता होनेको मन्द ,
यहाँ किसका अनन्त यौवन ?
अरे अस्थिर छोटे जीवन !

फिर ग्राम-युवतीके क्षणिक यौवन-उभार और उसकी म्लानताके लिए रोना क्यों ? 'दुःखोंसे पिस' और 'दुर्दिनमे घिस' मे भी 'पेट पीठ दोनो मिलकर है एक, चल रहा लकुटिया टेक' की सी-गम्भीर सवेदना और करुणा नहीं; किन्तु मानवताके विकृत और शापित, तापित, उत्पीड़ित समाजका चित्र यहाँ है। पन्तका रागात्मक आवेश चिन्तन और बौद्धिकता का फल है, इसमे 'वाद' की ध्वनि अधिक और वास्तविक सहृदयता-की कम है। 'दिनकर'मे मानवताकी दीनताके प्रति जागरुकता है—

सब हँसी-खुसी बँट गयी
रुदन ही पड़ा हमारे भाग्य आन। —दिनकर

'हाहाकार' मे कविकी वाणी मानवताके हाहाकारका चित्र उपस्थित करता है। अल्प संख्यक शोषक वर्गके स्वार्थपर बलि चढ़नेवाली मानवता-का करुण चित्र है। जीवनकी विषमता, परिस्थितियोंकी कठोरता, मनुष्य-की विफलताओके चित्रणमे 'दिनकर' अधिक सफल है किन्तु 'दिनकर' यह आवेश सम्पूर्ण मानवताको अधिक देरतक नहीं देख पाता। भारत-की सीमाओंमें घिरी दृष्टि अतीतके प्रति मोह, और राष्ट्रियताका उन्मेष जगाती है। विश्व-बन्धुत्व अथवा मानवताकी सामान्य-भूमिपर कविताका स्वरूप खड़ा नहीं होता और वह भारतकी वाणीके रूपमें प्रकट हो उठती है। इतना स्वीकार करना पड़ेगा कि उसका यह आवेश बौद्धिक

नही रागात्मक है। रागात्मकताके लिए, सत्यताके निर्वाहके लिए जीवन-व्यापार और कविताकी भावनामे सामञ्जस्य-सूत्रका अन्वेषण करनेवाले काव्यकी आभ्यन्तरिक चेतनासे जाग्रत आत्मानुभूतिका अस्तित्व स्वीकार नहीं करते। अनुभूतिकी सत्यता और स्वरूपकी सत्यतामे अन्तर है और अनुभूतिकी सत्यताके लिए स्वरूपकी सत्यता अनिवार्य भी नही। मनोवृत्तियो के शोध और स्थानान्तरकरणद्वारा ही काव्य व्यक्तित्व और वैयक्तिकता-की सीमासे दूर होकर सामान्य रूप ग्रहण करता है। 'दिनकर' धरतीके गान-पर मुग्ध हैं किन्तु धरती भारतीय है, उनकी वाणी भारतका क्रन्दन है। पन्तकी भॉति निरी बौद्धिकताका आग्रह दिनकरमे नही। जहॉ पन्तमे बौद्धि-कताका आग्रह अधिक है, वहॉ दिनकरमे अति भावुकता (Sentimen-talisin) उनके राष्ट्रिय गीतोके प्रभावके मूलमे मुख्यतया वे नाम है, जिन्हे सुनकर जनता फड़क उठती है, उसे अतीत गौरव और वर्तमान दुर-वस्थाका ध्यान आ जाता है। इस प्रकार जन मनोविज्ञानकी अनुकूलता ग्रहण करनेसे दिनकरकी कविताका प्रभाव अधिक हो जाता है और प्रभाव के मूलमे कवित्वसे अधिक जन-साधारणकी दुर्बलता और शीघ्र भड़क उठने-वाली भावना है। महादेवीके गीतोमें मानवताके प्रति जो सहृदयता है वह उसके सामूहिक रूप अथवा जन-साधारणके लिए नहीं है। साधनाकी एका-न्तिक भावनाका रूप ग्रहण करनेवाली कवितामे मानवताके सामान्य दर्शन सम्भव नहीं हो सकते। आत्माकी सार्वभौमताके रहते हुए भी वेदना वैयक्तिक है और व्यक्तिगत कारणोसे, चाहे वह आध्यात्मिक ही क्यो न हो, उत्पन्न होती है। इस प्रकार जीवनके करुण विषादके भीतर भी महादेवीकी भावना मानवताके प्रति उन्मुख नहीं हो सकी है। बच्चनकी वेदना परि-स्थितिजन्य है, उन परस्थितियोका सामाजिक आधार भी है किन्तु भावना-'बच्चन' की अपनी है।

विश्व-पीड़ासे सुपरिचित
हो तरल बनने पिघलने
त्याग कर आया यहाँ कवि

'स्वप्न लोकोके प्रलोभन' मे विश्व-पीड़ासे परिचित होनेका दावा करनेवाले 'बच्चन' मे विश्व-पीडा और मानवताके प्रति सवेदना नहीं है। निजत्वसे कविता इतनी घिरी है कि उसे मानवताको देखनेका, उसके दुःख-दर्दकी पहचान करनेका अवसर कहाँ? इसी लिए उसका मोह अपनी अन्तर्ज्वाला पर है—

हाथ ले बुझती मशालें
जग चला मुझको जलाने
जल उठीं छूकर मुझे वे
धन्य अन्तर्दाह मेरी

रामकुमार वर्मा सौन्दर्य और अन्तर्जगतके गीतिकार है। गीतिकार अन्तरकी रस सिञ्चित भावनाको यदि व्यक्त नहीं कर सका तो वह गीतोकी सफल रचना नही कर सकता। इसीलिए प्रत्येक गीतिकार अन्तर्जगतसे सम्बद्ध है। डा० वर्माका यह आन्तरिक आवेश मानवताको नहीं देखता, उसे प्रेरणा चाहिए—चाहे वह सौन्दयिक हो अथवा भावात्मक। डा० वर्माकी 'आँखोंमे आँसू हैं फिर भी' उनका रहस्य जाननेके लिए बाह्य संसारको नहीं बल्कि अन्तर्जगत्को, 'छिपा उरमें कोई अनजान'को देखना होगा। भगवतीचरण वर्माकी 'भैंसा गाड़ी' शीर्षक कविता मानवताकी करुण पुकार है किन्तु श्री वर्माका यह राग नहीं, प्रेम और उसके रूपसे ही वे अधिक आकृष्ट हैं। जीवनका सामाजिक आधार है

किन्तु जीवनकी यथातथ्यताका वर्णन आस्कर वाइल्डकी भाँति भगवती-चरण वर्माको अभीष्ट नही।

राष्ट्रीयता

मानवीय दृष्टिकोणका विकास सम्पूर्ण मानव-समाजकी ओर उन्मुख न होकर अपने देश, जाति या समाजतक सीमित भी रह गया। राष्ट्रियता और अन्ताराष्ट्रियताका विवाद अधिक पुराना नहीं है। राष्ट्र-वादिता जहाँ मनुष्यको गम्भीर चेतना और उत्तेजना देती है वहाँ दृष्टिको सीमित भी कर देती है। इन गीतोमे राष्ट्रीय जागरणकी उद्भावना हमें मिलती है। राष्ट्रीय जागरणके लक्षण भारतेन्दुके गीतोमें प्राप्त होते है। राष्ट्रिय गीतोंको किसी एक 'रस'के अन्तर्गत नहीं रखा जा सकता। एक प्रश्न और है। क्या इस राष्ट्र-प्रेमकी अनुभूति सम्भव है? और यदि सम्भव है तो उसमें गहराई कितनी हो सकती है? प्राचीन आचार्योंने शृङ्गारको सीमित कर अन्य 'रीति' (देवादि विषयक रति आदि) को भाव माना है और उसकी 'रस' मे परिगणना नहीं की। इस भक्ति अथवा प्रेमका आलम्बन देश और उसके उपकरण हैं। अति राष्ट्रियताका प्रचण्ड मोह अन्ध-विश्वास और एकांगी दृष्टिकोणको जन्म देता है। राष्ट्रि-यता और देशभक्ति दोनो एक नही हैं, राष्ट्रियता अनेक अंशोंमें बौद्धिक है और भक्ति रागात्मक; यद्यपि इस रागात्मिकतामे बौद्धिकताका मिश्रण रहता है। राष्ट्रियताके उपकरणोंमे अपने देशके प्रति प्रेम, अपने अतीत-की उज्ज्वलता के प्रति मोह, देशके शत्रुओपर, आक्रोश अपनी अकर्मण्यता-पर शोक और विषाद एवं भविष्य निर्माणके प्रति आवेश और उत्तेजना हैं। इस प्रकार प्रेम, अभिमान आक्रोश, उत्साह दर्द और ग्लानिके भावोंसे पूर्ण देशभक्तिके गीत हैं। देशभक्ति-पूर्ण गीतोंको अल्प कोटिमें

रखनेका यह तात्पर्य नही कि इस प्रकारके गीत काव्यके रचयिताओमे इन सभी उपकरणोका समान प्रभाव है बल्कि किसीमे एक तत्वकी प्रधानता है, किसीमे दूसरे तत्वकी। राष्ट्रियताके उद्भवका कारण राष्ट्र और राजाकी भिन्नता है। पूर्व समयमे राजा ही राष्ट्र था अतः राजभक्ति और देशभक्तिमें कोई अन्तर नही था। राष्ट्र और राजाके विदूरीकरणके प्रभावसे, भारतवर्षमे विदेशी सत्ताकी स्थिरता और उसके कारण उत्पन्न भावनाके कारण राष्ट्रियताका जन्म हुआ। विदेशी शासनने अचेतन रूपमे सारे भारतवर्षको एक सूत्रमे पिरो दिया। राष्ट्रिय गीतोंमे इन भावोकी पुष्ट व्यञ्जना मिलती है।

अपने देशकी प्रकृति, यहॉके मनुष्यांसे प्रेम, इसकी धूल और वायुसे प्रेम गुप्तजीके गीतोमे अधिक है। देशके इस रूप-विधानमे देवत्वकी भावनाका आरोप भी कहीं-कही प्राप्त होता है और कही-कही शुद्ध स्वरूप-प्रेमके दर्शन भी होते हैं। दैवीकरणमे सामान्यको विशेष रूप दिया जाता है और इस प्रकार 'जननी जन्मभूमि' को सर्वगुणपेत, और सौन्दर्य-शालिनी समझा जाता है। इस कारण सम्यक् दृष्टिसे अपने देश और उसकी महत्ताका विचार नहीं हो पाता। हीनताके भाव उच्चताके भावोके रूपमे प्रकट होते हैं। अपने देशका इतना अधिक प्रेम दूसरोको नीचा समझनेको बाध्य करता है। अति राष्ट्रियताका प्राबल्य प्रथम यूरोपीय महासमरके पश्चात् अधिक हुआ और इसके मूलमे आर्थिक नीति थी। भारतवर्षके गिरि, निर्झर, बन, बाग और तडागके प्रति प्रेम श्रीधर पाठकमे कम नही। कृष्णकी—प्रियतमकी—जन्मभूमि होनेके कारण रसखानि भी व्रजके करील कुञ्जोपर 'कोतिक हूँ कल धौतके धाम' वार चुके थे। ग्राम-गीतोमे भी यह प्रेम कम नहीं। ससुराल जाते समय ग्राम-बालिका रो-रोकर कहती है "जिस प्रकार बनकी चिड़िया उड़कर

बागमें जाती है, उसी प्रकार पिताका घर छोड़ बेटी ससुराल चली। सावन आ गया, आसमानमे मेघ उमड रहे है। दुलहिनकी ऑखें अमराईके बीच पड़ी राहपर लगी हैं। नैहरसे कोई आया नही। आमोकी डालीसे हिंडोले झूलने लगे होगे। सखियॉ झूमर और मलार गा रही होगी। हाय रे, यह भी कोई भाग्य है जो सावन ससुरालमे बीते। इसे राष्ट्रियता नही कह सकते किन्तु अपने देश (स्थानके अर्थमे) से प्रेम, जिससे बालपनसे साथ रहा, उसके प्रति आकर्षण स्वाभाविक रूपसे प्रकट होता है। इस सहज स्वाभाविक प्रेममें छल, राजनीतिक चाल, आर्थिक उलट-फेरका आग्रह न होकर निश्छल हृदयका उद्गार है। देशकी प्रत्येक वस्तु सुन्दर है। भला कौन ऐसा देश है, जिसका प्राकृतिक सौन्दर्य इससे बढ़कर हो। बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' ने भी 'जय जय भारत भूमि भवानी'मे मातृभूमिको देवी मानकर उसका गुण-गान किया है। अन्य गीतिकारोने भारतीय ग्राम, जन, प्रकृतिका रागात्मक अनुभूतिमय चित्र उपस्थित किया है।

एक मार्वी नामक स्त्री कहती है—'दम-दम खेता जा, मूखे खियालड़ी खन न था। [मै तो जिस समयसे अपना घरबार छोडकर यहॉ आयी हूॅ, मुझे सोते-जागते, प्रतिक्षण अपने खेतोकी ही सुधि आती है।]

जय-जय प्यारा भारत देश,
जय-जय प्यारा जग से न्यारा, शोभित सारा देश हमारा।
जगत मुकुट जगदीश दुलारा, जय सौभाग्य सुवेश ॥जय०॥

अतीतकी उज्ज्वलताकी ओर सहसा ध्यान जाता है। अतीत गौरवके कारण छाती फूल उठती है। जिस समय सारा संसार अज्ञानान्धकारमे

भटक रहा था उस समय भारतीय सभ्य थे, साम-गानके गानसे दिशाएँ गूँज रही थीं। उपनिषद् आत्मा परमात्माकी मीमासामे लगे थे। शस्त्र-भारसे दबी धरतीकी आत्मा कॉप रही थी, उस समय महावीर और बुद्ध संसारको अहिंसाकी शिक्षा दे रहे थे। अशोककी अहिसा पराजितकी अकर्मण्यता नही बल्कि विजयी राजाका अस्त्र बनकर चली। भारतीय प्राचीन विद्या, बुद्धि, संस्कृति, सभ्यता, साहित्यके प्रति जागरुकताका उद्भव हुआ। अतीतकी ओर ध्यान जानेका कारण वर्तमानकी अपनी हीनता है। कविका सन्देश है, सदा हमारी अवस्था ऐसी नहीं रही। एक दिन हम भी उन्नत और सजग थे। हमारी आजकी नक्कारखानेमे गूँजनेवाली तूती कभी बोलती भी थी। अतीत ऐसी अवस्थामे उद्बोधन देता है, अपने पूर्व गौरवकी याद दिला आत्मसम्मानका भाव उत्पन्न करता है और इस प्रकार वर्तमानसे त्राण पानेके लिए सहारा देता है। इस प्रकार अतीत केवल आवेश, साहस और उन्मेप ही नही देता बल्कि सान्त्वना भी। प्रताप और शिवा, गुरु गोविन्द और झॉसीकी रानी इस राष्ट्र-प्रेमके प्रतीकके रूपमे आते हैं, वे आदर्श हैं। एक दिन स्वतन्त्रता-युद्धका सञ्चालन इन्होने किया था अतः अनुकरणीय हैं। इस प्रकारकी गीति-कविताओमे कवियोकी सस्ती भावुकता अधिक दीख पड़ी है, शायद गहरी आत्मानुभूतिका वह विषय भी नहीं। ऐसी अवस्थामे इन कविताओंका आधार अत्यन्त छिछला हो जाता है। अपनी विवशताके कारण उत्पन्न आत्म-ग्लानि और भारतीय समाजकी दयनीय दशासे उत्पन्न शोकके कारण करुणा और सहानुभूतिका उद्भव साहित्यमे नवीनता देगा। करुणा और सहानुभूति, रोष और उत्साह, प्रेम और त्यागकी भावनाओंका एकीकरण इन कविताओंकी अपनी विशेषता है और इस दृष्टिकोणसे इनमे नवीनता पर्याप्त है। रस-

वादी कविकी करुणा स्वकीय थी, सहानुभूतिके साथ उसका साहचर्य नहीं था। राष्ट्रिय गीतिकारमें देशकी अवस्थासे जहाँ शोक है वहाँ पीड़ित जन्म-भूमिके निवासियोके प्रति सहानुभूति है। अनेक लोगोने ऐसे गीतोंकी रचनासे परम्पराका पालन किया है, इसमे सन्देह नहीं, ऐसे कवियोंका भी अभाव नहीं जो Weather Cock हैं, किन्तु इतना स्वीकार करना पड़ेगा कि अनेककी कविताओमे अन्तरका रस भी विद्यमान है। रसात्मकता तथा अन्यथाकी कसौटी सहृदयकी भावना मात्र है। यदि समान रूपकी अनुभूति ऐसे गीतोसे जग सकती हैं, यह नहीं कहा जा सकता कि उसमे रसानुभूतिके तत्त्व नहीं। इसके साथ हमे यह भी ध्यान रखना होगा कि ऐसे गीत अति भावुकता (Sentimentalism)के कारण स्थानीय प्रभावकी होती हैं, कारण जिस आधारपर यह टिकी रहती है, उसके प्रभावके कारण सम्बन्ध भावनाएँ हैं। ऐसी कविताओसे यदि उन उपकरणोंको हटा लें तो कविता महत्त्वहीन, परकटे कबूतरकी भाँति पृथ्वीपर आ गिरती है। उस प्रभावके मूलमे अतीतके मोहकी भावना रहती है और वर्तमानके प्रति आक्रोश एवं तत्कालीन सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्थाके प्रति असन्तोष और इस विदेशी सरकार और विदेशियोंके प्रति घृणा।

वर्तमान अनवतिके प्रति क्षोमकी भावनाके दर्शन भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की 'रोवहुँ सब मिलि कै आवहु भारत भाई। हा हा भारत दुर्दशा न देखी जाई'मे मिलते हैं। किन्तु यहाँ स्मरण रखना होगा कि भारतीय दुर्दशाके प्रति क्षोभ, और राष्ट्रिय भावनाका विकास भारतेन्दुके मुक्त गीतोंमें नहीं बल्कि नाटकोके गीतोंमे हुआ। उन्हे पूर्ण गीति-काव्यका स्वरूप उस समय प्राप्त न हो सका था। माखनलाल चतुर्वेदी, सुभद्रा कुमारी चौहान, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' और 'दिनकर'में इनमेंसे अनेक भावनाओंके दर्शन किसी न किसी रूपमें मिलते हैं। प्रगतिवादी कविता बौद्धिक है,

उसमे रसानुभूतिके तत्त्व अत्यन्त अल्प हैं। कविताके सामाजिक आधारकी उपेक्षा किये बगैर कहा जा सकता है कि बौद्धिक चेतना जहॉ क्रान्ति और इस सामाजिक व्यवस्थाको उलटनेका भाव उत्पन्न करती है, वहॉ अनुभूति-को भी अपने अधीन रखनेका प्रयास करती है। यदि बौद्धिक चेतनाके साथ रागात्मक आवेशका समन्वय हो सका कविता स्वरूप विधान करती है। इन कविताओसे रसानुभूति होती है, इसपर अभी मतैक्य नहीं, शायद हो भी नही सकता कारण रसानुभूति वैयक्तिक है और रसानुभूतिके लिए पाठकको कविके उस मानसिक धरातलपर पहुँचना होता है। किन्तु प्रश्न वहीं जटिल हो जाता है, जहॉ यह प्रश्न उठ खडा होता है कि कविको वैसी अनुभूति हुई है अथवा नही। काव्यमे सत्यताके प्रश्नको मैं सदा खुली ऑखों देखनेका प्रयत्न करता रहा हूँ। मैं घटनाओकी सत्यता अथवा स्वरूप-सत्यताको आवश्यक नही समझता मै अनुभूतिकी सत्यताका कायल हूँ। कवि अनुभूतिको उसके वातावरणसे अलग कर उसे दूसरा रूप देता है। ऐसी अवस्थामे मै समझता हूँ कि मजदूर-वर्गमे रहनेवाले व्यक्तिमे सामन्तशाही भावनाएँ हो सकती हैं। वास्तविक कारण मानसिक संस्कार Pattern और make-up है। सिद्धान्तोकी चर्चा छोड़कर यह कहा जा सकता है कि ऐसे गीत प्राप्त है, जिनमे आशा, निराशा, रोष, क्षोभ, उत्साह, ग्लानि, मोहकी अभिव्यञ्जना हुई है।

बौद्धिकता

गीति-काव्य अनुभूति-प्रधान, रागात्मक आवेशपूर्ण क्षणोंकी लया-त्मक वाणी है। कविताका प्रभाव चाहे वह किसी प्रकारकी कविता हो, उसकी संवेदनशीलता और तदनुरूप भावना जाग्रत कर सकनेकी शक्ति-में है। कविता तर्क-प्रणाली नही है और तर्क-सम्मत रचनाओको शायद

काव्य कहकर पुकारा नहीं जा सकता। काव्यको विज्ञानसे अलग करते हुए दूसरेको बुद्धि-व्यापार कहा गया है और कवितामे हार्दिकताकी प्रधानता। हृदय और मस्तिष्कके जटिल प्रश्नपर मै यहाँ विचार नहीं करना चाहता किन्तु इतना संकेत देना चाहूँगा कि यह अन्तर अपेक्षाकृत अज्ञानका फल है। चाहे जो कुछ भी हो कविताका बौद्धिक आधार है, इस कथनका यह अर्थ नहीं कि सारे ज्ञानका बोझ कविता स्वीकार कर सकती है, अथवा वहन कर सकती है। बौद्धिकतासे हीन कविता पागलके प्रलापसे अधिक शायद महत्त्व नही रखती। कवि पागल भले हों, सभी पागल कवि नही हो सकते ? पागलके हास अश्रु उसके लिए महत्त्वपूर्ण है किन्तु उनके बौद्धिक आधारके कारण ही कविताकी मान्यता है।

इहीं बिगड़े दिमागोंमें भरे खुशियोंके लच्छे हैं
हमें पागल ही रहने दो कि हम पागल ही अच्छे हैं।

There is a pleasure sure
In being mad
Which non but mad can know.

यह किसी पागलकी बुद्धिका चमत्कार नहीं बल्कि सम्पूर्ण चेतनाके रागात्मक उद्बोधके कारण इन पंक्तियोंकी सृष्टि हुई है। गीतिकाव्यके उद्भवके लिए क्षणोंका महत्त्व अधिक है। सहज सक्षोभ्य कविका मन प्रभावित होकर सजग हो उठता है। उसकी अनुभूति तीव्र हो उठती है और उसकी वाणी फूट पड़ती है किन्तु यह आवेश स्थायी नही, क्षणिक है, अतः प्रभावके क्रमशः दूर होते समय विचार और अनुभूतिका मिश्रण होने लगता है और अनुभूति भावना बनकर अभिव्यञ्जना पाती है। बौद्धिकताका अतः गीति-काव्यमें केवल इतना ही स्थान हो सकता है कि वह अनु-

भूतिको भावनाके रूपमे उपस्थित करे। यह अधिक अशोमे अचेतना मानसिक क्रिया है। अनुभूति किस समय भावना बन जाती है, यह कविको पता नहीं रहता और अनायास विचार अनुभूतिके साथ घुल-मिल जाते हैं। यह बुद्धिका व्यापार नहीं अपितु बौद्धिक चेतनाका फल है। गीति-कविता और प्रत्येक प्रकारकी कविता जब बुद्धि-व्यापार हो उठती है तब वह कविता नही रह जाती। पन्तकी प्रगतिशील कही जानेवाली कविताओंमें बौद्धिकताके इसी प्रबल आग्रहके कारण कवित्वसे अधिक बुद्धिवादक समावेश हो गया। कवि जहाँ जान-बूझकर ज्ञान-विज्ञान छाँटने लगता है, वह कविसे अधिक उपदेशक बन जाता है। ऐसी कविताओंसे रसानुभूति नहीं हो सकती। अचेतन मानसिक क्रिया होनेपर भी बुद्धि और अनुभूतिके सामञ्जस्यपर ही गीति-काव्यकी सफलता निर्भर करती है। पन्त—प्रगतिवादी पन्तमें यह अधिक मात्रामे दीख पड़ती है। दार्शनिकता बुद्धि-व्यापारका फल है अतः दर्शनका अधिक मात्रामे आग्रह काव्यत्वको नष्ट कर देता है। दार्शनिकताकी बौद्धिकतापर विचार आगे चलकर किया जायगा ; यहाँ बुद्धि-तत्त्वके साधारण रूपपर हमें विचार करना चाहिए। मात्राके सम्बन्धमे एकमत होना शायद सम्भव नहीं। विचारोंकी पुष्टताके कारण काव्यत्वमे स्पष्टता आवश्यक नही, कारण अनेक अशोमे कवि विचारोंको छिपानेका प्रयास करता है। राष्ट्रिय कहे जानेवाले गीतोंमे रसात्मकताके अभावका कारण बौद्धिकताका आग्रह भी है। बौद्धिकता और बुद्धि-व्यापारके फलमे भी अन्तर है, बौद्धिकताके आग्रहके कारण गीति-काव्य जहाँ-विचार-प्रधान और आदर्श-प्रधान हो जाता है वहाँ बुद्धि-व्यापार बौद्धिक जिमनास्टिकका फल होनेपर काव्यत्व ही नष्ट कर देता है। ग्राम-गीतोंमें बौद्धिकता अनुभूतिके ऊपर शासन नही करती। उनमे सहज स्वाभाविक स्वानुभूतिकी अभिव्यञ्जना है, फलतः मानसिक क्रिया

जन्य काल्पनिक चित्र वहाँ नही मिलते। ग्राम-गीतोका यह मर्म समझनेके लिए काव्य-परम्परा और कवि सम्प्रदायानुमोदित संस्कारकी आवश्यकता नही; कवि और उसके पाठकमे बौद्धिक समझौतेकी आवश्यकता नही; एक दूसरेके समक्ष एकदम खुले हैं, क्योंकि दुराव नही। 'कविता मात्रके आस्वादके लिए जिस सहृदयता, जिस रसिकताकी अपेक्षा होनी है उसमे बुद्धिका पराभव रहता है। हृदय सनातन है, बुद्धि गतिशील है।' (सुधांशुः जीवनके तत्त्व और काव्यके सिद्धात पृ० १९७) बात, कुछ ऐसी नहीं। इसमे बुद्धिका पराभव नहीं बल्कि बुद्धि और अनुभूतिके सम्यक् सामञ्जस्यकी अपेक्षा है। हृदयका यहाँ अर्थ रागात्मक प्रवृत्तिसे लेना चाहिए। हृदयको चिरन्तन कहनेका यदि यह अर्थ हो कि रागात्मक अनुभूतियोके प्रकार अथवा मात्रामे कोई अन्तर नहीं होता तो यह भ्रामक होगा। रागात्मक अनुभूतिके आवेश, आवेग, तीव्रता आदिके मूलमे मानसिक क्रियाका अचेतन प्रभाव है। सौन्दर्यानुभूतिकी क्षमता बौद्धिक चेतनाके कारण भिन्न हो उठती है। सौन्दर्यकी भावना ही भिन्न रूपसे उपस्थित होती है। काव्य-रसिकके लिए तर्क-हीन बननेकी आवश्यकता नही बल्कि बुद्धिको रागात्मकताके साथकी आवश्यकता होती है। कामायनी (श्रद्धा-रागात्मकता) और इडा (बुद्धि-तर्क) के सयोगसे ही कलाका जन्म होता है। बुद्धिवादिता कहकर तिरस्कार करनेका मूल कारण रागात्मक अनुभूतिका अपरिचय है। सत्यताके लिए घटनाओकी सत्यतासे अनुभूतिका सत्य अधिक महत्त्वपूर्ण है। सूरकी गोपियोमें स्वाभाविकता है, नन्ददासकी गोपियोकी भाँति पाण्डित्य नही, वे नन्ददासकी गोपियोंकी भाँति तर्क और बुद्धिके कारण सगुण-निर्गुणकी विवेचना नहीं करतीं। गुणोके उद्गम-विकासपर पाण्डित्य नही बघारतीं, सहज स्वाभाविक रूपमें मनोवृत्ति और मनोदशाका निवेदन करती हैं किन्तु ऐसा भी नहीं

कि वे गाँवकी रहनेवाली ग्वालिनमात्र है, वे अहीरनकी छोहिरियाँमात्र भी नहीं, बुद्धि और तर्कसे अपरिचित भी नही, फिर भी बुद्धिको वे हार्दिकतासे ऊपर नहीं जाने देतीं। यह गोपियोकी अबुद्धिवादिता नहीं, बल्कि एकातिकता सिद्ध करता है। इसका जीवनकी विस्तृत पृष्ठ भूमिपर विचार आवश्यक है। 'मीरा'की तल्लीनता और निर्भीकताका मूल बुद्धिहीनता नही बल्कि चेतनाका ज्वलन्त रूप है। बुद्धिवादिता आज अपने अत्यन्त छिछले अर्थमे प्रयुक्त होती देखी जा रही है। जीवन-व्यापारके मार्गमें मनुष्यने जिन कृत्रिम बन्धनोको स्वीकार कर लिया है सुगमताके लिए उनका निर्वाह आवश्यक हो जाता है, ऐसी अवस्थामे व्यक्ति-विशेषके लिए चारो ओर नजर रखकर चलना, भयाकुलता और सशयके साथ प्रगतिशील होना बौद्धिकताकी कसौटी हो गयी है। अनुभूतिकी तीव्रताके समय इस कृत्रिमताकी चेतना अति प्रबुद्ध चेतना (Superconsciouness) के कारण दब जाती है जिस प्रकार गैसके प्रकाशमे लालटेनकी रोशनी; और इसे अबुद्धिवादिताकी सज्ञा मिल जाती है। कबीरके गीतोमे जहाँ एक ओर बुद्धि और अनुभूति दोनो मिलकर एकाकार हो भावना बन जाते हैं वहाँ दूसरी ओर अनेक स्थलोमे बुद्धि-व्यापार अपने शुद्ध रूपमे प्रकट हुआ है। ऐसा वहाँ ही हुआ है जहाँ कबीर अपने विचारक रूपमे हमारे सामने आते है। तुलसीदासमे सूरसे अधिक बौद्धिकता है। मै यहाँपर विनयके पदोकी तुलना नहीं कर रहा हूँ। विनयके पद परिपाटीकी रक्षा एव एक ही परम्पराके प्रतिपालनके आवेशके कारण है। सूरदासके पद स्पष्ट कर देते है कि सूरमे हृदयकी पीडा गीतोकी सृष्टिके समय भी मिट नहीं गयी थी, उसका शोध अवश्य हो गया था। तुलसीदासमे यह ज्वाला है, जिसे अस्वीकार नही किया जा सकता किन्तु तुलसी अपने हृदयकी व्यथाको काव्यमें उतना नहीं ढाल सके। जहाँ सूर और तुलसी-

को अपनी पीडाको दूसरे व्यक्तियोंको माध्यमसे प्रकट करना था वहाँ मीराको माध्यमकी आवश्यकता न थी, हार्दिक वृत्तिको स्पष्ट रूपमे चित्रित करनेका अवसर उन्हे प्राप्त था। सूर और तुलसीमें माध्यम स्वीकार करनेके कारण उत्तेजनाके लिए प्रबलताकी आवश्यकता नही रहती क्योंकि उनके भाव अपने नही रह जाते बल्कि दूसरेकी भावनाओंके रूपमे अभिव्यक्त होते हैं। 'मीरा' का यह आचरण स्त्री-समाजके लिए कलंक-स्वरूप समझे जानेके कारण कृत्रिमताके प्रति विद्रोह उन्होने किया, उसकी उत्तेजना उनकी कवितामें है। इसीलिए जहाँ मीराके गीतोंमे एक ओर स्वाभाविकता, सरलता और हृदयकी स्पष्ट और निर्भीक व्यञ्जना है, वहाँ आवेश, उत्तेजना और तीव्रता भी। महादेवीके गीतोमे इस प्रखरताका अभाव-सा है। वेदना है किन्तु वैसी नही जो बुद्धिका तिरस्कार करे, ऐसा नहीं जो 'लोक-लाज खोने' की व्यवस्था दे। बल्कि प्रियतमकी अशरीरता मनोवेदनाको सूक्ष्म आधारपर स्थित कर अभिव्यक्तिके लिए माध्यम देती है।

दरदकी मारी मारी बन बन डोलूँ, बैद मिल्या नही कोइ।
मीराकी प्रभु पीर मिटैगी, जब बैद संवलिया होइ॥

—मीरा

में बौद्धिकताका अभाव नही। पंक्तियों ऊपरी सतहसे कुछ गहरे जाकर देखना होगा। और 'कहै कबीर दाग कब छुटिहै, जब साहब अपनाय लिया' में रागात्मक अनुभूति ढूढनेके लिए कबीर और उसकी विचार-परम्पराका ज्ञान आवश्यक होगा। ऐसी अवस्थामे मीरामे रागात्मकताको बौद्धिक आधार है और कबीरकी बौद्धिकतामे रागात्मक संकेत मात्र।

बिना दुखके सब सुख निस्सार,
बिना आँसूके जीवन भार;
दीन दुर्बल है रे संसार,
इसीसे दया, क्षमा औ प्यार;
आजका दुख कलका आह्लाद,
और कलका सुख आज विषाद;
समस्या स्वप्न-गूढ़ संसार,
पूर्ति जिसकी उसपार;
जगत जीवनका अर्थ विकास,
मृत्यु, गति क्रमका ह्रास;—पन्त

जगकी अनित्यता देख पन्तमे स्वाभाविक क्षोभ जाग्रत हो उठता है। वे जिस चिरन्तन भावनाको साकार करना चाहते है, उसके अनित्य रूपको देख निराशा और क्षोभसे चञ्चल हो उठते हैं। किन्तु परिवर्तन रूपका परिवर्तन है, कुछ तत्त्वका नहीं। इस अनित्यताके भीतर कविकी बुद्धि एक सम्बन्धसूत्र देखती है और अनित्यतामे सान्त्वना प्राप्त करती है। रागात्मक आवेश जगकी अनित्यता देख जाग्रत होता है। वह जीवनकी असफलताओ और विकलताओकी ओर आकृष्ट होता है। उसकी जाग्रत चेतना 'दिव्य सौन्दर्य, स्नेह-साकार, भावनामय संसारको 'कही राखी' और 'कही बेड़ीका भार' बनते देखती है किन्तु बौद्धिक चेतना अन्ततक चलते-चलते आधिपत्य जमा लेती है और भावनाके स्थानमे दार्शनिक विचारोका आग्रह प्रत्यक्ष हो उठता है। फिर भी यह बुद्धि-व्यापार अथवा बौद्धिक जिमनास्टिकका फल नही।

समय भागता है प्रति क्षणमें
नव अतीतके तुषार कणमें

रागात्मक वृत्तिका सहयोग प्राप्त हो, गीति-काव्यमे उन्हे स्थान प्राप्त है। कविताके साथ दर्शनका—इसके व्यापक अर्थमें—सम्बन्ध अक्षुण्ण है। दार्शनिकता, आध्यात्मिकता अथवा धार्मिकता बुद्धि-व्यापारका फल मात्र न होकर रागात्मक आवेश पूर्ण हो, केवल इसीकी आवश्यकता है। इनके आवेशके कारण विचार-धारा अथवा दृष्टिकोण परिवर्तित हो सकता है अथवा रागात्मक आवेश विचारके साथ मिलकर इस प्रकारकी भावना-का रूप ग्रहण कर सकता है। लेकिन दर्शनके वाद-विवाद और अध्यात्म के पक्ष-विपक्ष निरूपण छन्दोमें बॉध देनेके कारण ही गीतोकी संज्ञामें नही। भक्तिमें रागात्मक आवेशका आधार होनेके कारण गीति-काव्यके तत्व हैं। आत्म निवेदन और विनयमे अधिक अंशोमे परम्पराका पालन हुआ है जिससे उनमे व्यक्तित्व और वैयक्तिता, एवं स्वानुभूति और भावनाकी अभिव्यक्तिके लिए स्थान कम रह गया। गीति काव्य रूढि-वादिता सहन नही कर सकती। अनेक भक्तोके कथन ही नही बल्कि शब्दावली तक एक हैं। एककी भावनाको दूसरेकी भावनासे अलग कर सकना सम्भव नही होता। यहॉ तक कि अनेक बड़े बड़े कवियोंकी वाणी-मे एक दूसरेकी ध्वनि आती है। इसे देखकर ही किसी आलोचकने इन्हे गीति-काव्यके अन्तर्गत नही गिना है। इस प्रश्नपर विचार करते समय आलोचकको यह नहीं भूलना चाहिये कि परम्परा और प्रगति सापेक्ष हैं। आजकी परम्परा कलकी प्रगति थी और आजकी प्रगति कल-की परम्परा होगी। परम्पराके इस प्रवाहमे नवीनताके उन्मेषसे दीप्त सक्षम कवि नयी टेकनीक उपस्थित करता है। साधारण और अक्षम किन्तु काव्यत्वके मोहसे जकडे व्यक्ति कविताके प्रभावका कारण उस टेकनीक उस विधानको ही समझ लेते हैं ऐसी अवस्थामे उसकी नकल प्रारम्भ हो जाती है केवल टेकनीककी अनुभूति की नहीं, कारण उसकी नकल

सम्भव नही। रागात्मक आवेशके क्षीण क्षणोको कल्पनाद्वारा उत्तेजना देनेका प्रयास होता रहता है। प्रत्येक प्रकारकी कविताके उद्भव और विकासके उपयुक्त सामाजिक परिस्थितिकी अपेक्षा होती है। सामाजिक स्थितिके परिवर्तनके साथ सामाजिक भावना परिवर्तित होकर नये रूप विधानकी अपेक्षा करने लगती है किन्तु परम्परा और काव्यत्वके निश्चित सिद्धान्तका मुखापेक्षी कवि वीरोके पुराने नारोको झकृत करनेमे ही लीन रहता है, जब कि उसके लिए लोगोके कान पुराने हो चुके रहते है। प्राचीन कवियोंके प्रभावके मूल हृदयकी अप्रगतिशीलता अथवा अबौद्धिकता नही बल्कि रागात्मक अनुभूतिके आवेशकी तीव्रता है। छायावाद-युगीन कविताके प्रवाहमे ऑसुओका अर्घ्य चढानेवाले कवियोकी सख्या कम नहीं। आज भी यह रोग कम नही हुआ है, और रोने वालोके ऑसुओसे पत्रप-त्रिकाओकी चुनरीमे दाग लग रहा है। मै यह नही कहना चाहता कि इनमेसे अनेक प्याजका रस ऑखोमे लगाकर रोनेका स्वाग भरनेवाली चल चित्रोकी तारिकाओकी भॉति रोते नही, बहाना करते है बल्कि यह कहना चाहता हूॅ कि रागात्मक आवेशके क्षीण क्षणोमे अनुभूतिकी गहराईका बहाना वे करते है और इस प्रकार वैसी कविताको जन्म देते हैं। प्रत्येक युगमे फैशनकी चाल रहती है। वेश-भूषा, बातचीतसे लेकर कविता आदि कलाओतकमे। ऐसे लोग फैशनके शिकार होते हैं। भक्ति कालके कवियोमे यह फैशन न हो, यह सम्भव नही, अतः धार्मिक गीतोंके विरुद्ध निर्णय देते समय इन Pretenders की ओर ही हमारा ध्यान नही जाना चाहिये। कोई कवि अपनेको छिपाकर काव्य रचना नहीं कर सकता और यदि वह ऐसा करता है, उसका व्यक्तित्व ही उसे धोखा देगा। व्यक्तित्वकी अभिव्यक्तिको भी इसके व्यापक अर्थमे लेना पड़ेगा। शब्दोके साथ एक कठिनाई है कि भावात्मक शब्द सभी

हमें लगाकर भविष्य रणमें
आप कहाँ छिप जाता है ?
सब जीवन बीता जाता है ।

जीवनकी अनित्यताका एक दूसरे दृष्टिकोणसे चित्रण है । इसमे भी निराशा है । जीवनमें यह रोना बना रहता है कि हम सुखके क्षणोको बॉध नही रख पाते, वे क्षण उडते चले जाते हैं । हाय री विवशता, उन्हें रोकनेकी चाह रहते भी मनुष्य रोक नही पाता, यह निर्बलताकी सीमा है। मनुष्य कितना निर्बल, अक्षम और दीन है ! प्रत्येक क्षण जीवनकी नयी कठिनाइयोसे परिचय करा कहॉ छिप जाता है ? बेबशी, लाचारीका स्थूल रेखा-चित्र यहॉ है किन्तु इस चित्रमे मनोवृत्ति, और बुद्धिका सामञ्जस्य है । यद्यपि जगकी अनित्यता और विवशताके प्रति बौद्धिक जागरणके लक्षण कम नही । बौद्धिक जिमनास्टिकके लिए दूर जानेकी आवश्यकता नही, हिन्दीके सामयिक साहित्यमे इसके पर्याप्त प्रमाण प्राप्त है ।

दर्शन, आधार अध्यात्मका धार्मिक सदा बना रहा। धर्म शब्दका प्रयोग यहॉ इसके विस्तृत अर्थमे मै कर रहा हूँ अन्यथा भौतिक दर्शनको धर्मका आधार प्राप्त कहॉ ? प्रत्येक धर्मका दार्शनिक आधार है । अतः धर्म और दर्शन एक दूसरेका सहाय्य प्राप्त कर आगे बढते रहे हैं । आध्यात्मिकता दर्शनके फलस्वरूप है। दर्शन धर्मका विचारात्मक और धर्म दर्शनका क्रियात्मक रूप है । आध्यात्मिकता बौद्धिकताको भावनात्मक बनानेका प्रयास करती है । इस प्रकार ज्ञान, भक्ति और कर्मका विभिन्न रूपोमे हमे दर्शन होता है। धार्मिकतामे विश्वास रखनेवाला Realization प्रत्यक्षीकरणमें आस्था रखता है और इस प्रकार अनास्था और जिज्ञासाको दबा रखना चाहता है । धर्मकी इस आस्थाको तर्क-सम्मत आधार देनेका प्रयास दर्शनद्वारा

किया जाता है, कारण दर्शनका मूल जिज्ञासा है। धर्मके क्रियात्मक रूपका पालक धार्मिक है दार्शनिक नहीं और क्रियाके मूलभूत सिद्धान्तकी परीक्षा, और व्याख्या करनेवाला तत्त्व-चिन्तक दार्शनिक है, धार्मिक नहीं। तत्त्व-चिन्ताका अतः सम्बन्ध दर्शनसे है। काव्यका यह तत्त्व-चिन्तक आधार भी है, जिसे काव्य-दर्शन कहा जा सकता है, काव्य-शास्त्र नहीं। काव्य-दर्शनका जीवन दर्शनसे घनिष्ठ सम्बन्ध है। अध्यात्मवादका सम्बन्ध आत्मा-परमात्माके सम्बन्ध और उनके बौद्धिक निरूपणसे है। अध्यात्म-वाद और धर्म विश्वासको लेकर चलते हैं और दार्शनिकता जिज्ञासा अथवा अनास्थाको; किन्तु इसकी परिणति भी आस्थामे होती है। धर्म और भक्तिका चिर साहचर्य नहीं है, जैसा साधारणतया लोग समझते हैं। धार्मिक भावनामे रागात्मक आवेश है अथवा नहीं इस प्रश्नपर विचार करनेका यहाँ अवसर नही। धार्मिक कृत्योंके साथ गीतोंका साथ आवश्यक सा है। धार्मिक त्योहारोंपर गीतनाट्य, वाद्यकी योजना-का विधान प्रत्येक धर्ममे है, संस्कारोंके साथ भी गीतोंका विधान है, इन संस्कारोंको पीछे चलकर इतनी प्रमुखता मिली कि वे स्वयं धार्मिकता-के अनिवार्य अंग बन गये। बहुत सम्भव है, धार्मिक कृत्योंकी एक-रसताको सरस बनाने और रागात्मक आवेश उत्पन्न करनेके लिए यह कृत्रिम साधन हो। धर्ममे बुद्धिके लिए स्थान नही, वहाँ विश्वास लेकर चलना पडता है। फलस्वरूप ज्ञान उसका साथ नहीं देता। भक्ति रागा-त्मक वृत्तिका शोधित रूप है किन्तु शोधका कारण ज्ञान और उसकी अपेक्षा है इसीलिए भक्तिके लिए ज्ञानकी और ज्ञानके सम्यक् प्रभावके लिए भक्ति अथवा श्रद्धाकी आवश्यकता है। गीतोंमे रागात्मक अनुभूति-की नितान्त अपेक्षा है, बौद्धिकता उसकी सम्पूर्तिके लिए ही आ सकती है अतः यदि धार्मिक भावना, आध्यात्मिकता और दार्शनिकताको उपयुक्त

व्यक्तियोंमे भी एक ही भावके दूसरे प्रभाव (Shade) को प्रकट करते है अतः भाव-समतामें अनन्तर आ जाता है। शब्द और उसके गुणोके शब्दोके सम्बन्धमें भी यह पूर्ण सत्य है। व्यक्तित्वका अर्थ, व्यक्तिके विचार, दृष्टिकोण, भावना और अनुभूतिके साथ उसके प्रकार—जैसे गम्भीर, छिछला, कृत्रिम, प्रभावशाली, समान्य आदिसे भी सम्बन्ध रखता है। गीति-काव्य इसे पूर्ण रूपसे स्पष्ट कर देता है। केशवदासकी कविता किसी गम्भीर व्यक्तित्वकी सूचना नहीं देती। रामचन्द्रिका लिखनेपर भी उन्हे कोई भक्त स्वीकार नहीं कर सकता। इसी प्रकार विद्यापतिको दार्शनिक अथवा आध्यात्मिक कवि कहनेके लिए केवल साहसकी ही अपेक्षा नहीं बल्कि व्याख्याको प्रकृत मार्ग छोड दूसरा मार्ग ग्रहण करना पड़ेगा। वह अनेक अंशोमे कविकी विशेषता न होकर व्याख्याकारकी विशेषता होगी और इस प्रयासको बिहारी सतसईकी वैद्यकी टीकासे अधिक महत्त्व नही मिल सकता। राधाकृष्णको आलम्बन रूपमें ग्रहण करनेका कारण सेंसर (Censor) से बचनेका प्रयास है यदि सामाजिक भावना और कवियोकी भावनामे सामञ्जस्य होता कवियोको इस प्रकारके बक्र मार्गका अवलम्बन नही करना पड़ता। सूर-तुलसी-विद्यापतिमें भावोन्मेषकी इतनी तीव्र क्षमता है कि व्यक्तित्वकी स्पष्ट अभिव्यक्तिके अभावमे भी उनकी मनोवृत्तिका भेद छिपा नही रहता। सूरकी संवेदनशील प्रवृत्ति और तुलसीकी गम्भीरता और व्यापकतामे किसीको सन्देह नहीं हो सकता। सूरमे जहाँ गम्भीरता है वहाँ तुलसीमे व्यापकता; सूरमें स्वच्छन्दता है और तुलसीमे संयम। विद्यापतिकी कविता उनकी सौन्दर्य-प्रियतासे ओत-प्रोत है किन्तु न तो सूरका भावोन्मेष है और न तुलसीकी व्यापकता। मीराकी तल्लीनता भी नहीं किन्तु आकर्षणका तीव्र आग्रह अवश्य है, विशदता नहीं लेकिन प्रभाव है। विद्यापति सौन्दर्यको स्थान स्थानपर

देखते हैं, उनके रूप विधानमें प्रभावसे अधिक चित्रमत्ता है। तुलसीका सौन्दर्य-बोध व्यापक प्रभावका कारण है। इस प्रकार गीति-काव्यकी प्रकृतिद्वारा व्यक्तित्वके प्रकार और प्रवृत्तिका संकेत मिलता है।

केवल राधाकृष्णके नाम लेने मात्रसे ही धार्मिकताका आरोप नहीं समझना चाहिये। भिखारीदासने अपनी कविताको 'राधा-गोविन्द'के गुण गानेका बहाना कहा है। अपनी वासनाको राधा-कृष्णमे स्थापित करनेका प्रयास उस समयके कवियोका है, जैसे आजका कवि अपनी वासनाको प्रकृतिमे वितरित देखता है। कबीरमें धार्मिकता कम, दर्शनका आग्रह और आध्यात्मिकताका आवेश अधिक है। कर्म-काण्डवादी धर्मोंका विरोध कबीरका लक्ष्य है अतः तर्क और विचारका अवलम्बन, चमत्कार-प्रदर्शन, कृत्रिम गम्भीरताका आरोप कबीरमे है किन्तु इसके तलमे कबीरका सहज, स्वाभाविक, सरल और अकृत्रिम व्यक्तित्व और निश्चल प्रेम भी है। उद्दंडता कृत्रिम है और निर्भीकता स्वाभाविक। कविकी मानसिक प्रवृत्तिको उसकी परिस्थिति और युगकी पृष्ठभूमिमे देखना पडेगा। आजका युग धार्मिक नहीं है और न धर्मकी अधिक प्रबलता रह सकेगी, इसका कारण धर्मकी रागात्मक अनुभूति उत्पन्न कर सकनेकी अक्षमता है। व्यक्तिके प्रति जो वृत्ति है वह धर्म और ईश्वरके प्रति भक्तिका स्वरूप लेती है, सामाजिक आधारपर वह नीति है, दोनोका समन्वय धर्म-नीति है। काव्यके प्रति वह उन्मुख भाव राजनीति है। इस प्रकार राजनीतिक, सामाजिक चेतनाने अपने लिए दूसरे ईश्वरका विधान कर लिया है अतः धार्मिकताका वह प्राबल्य चेतन और बौद्धिक युगमे नहीं रह सकता। विज्ञानने सारे संस्कारभूत विचारोंपर कुठाराघात किया है। किन्तु आध्यात्मिक चिन्तन और दार्शनिकताका आग्रह कम नहीं हो सका है यद्यपि शायद रवीन्द्रनाथ और महादेवी इस भावनाके अन्तिम कलाकार हैं।

दर्शन स्वयं काव्य नहीं और न उसे काव्य रूपमें ग्रहण किया जा सकता है। जिसमें दार्शनिक सिद्धान्तोंको छन्द-बन्धनकी चेष्टा है, उसमें काव्यत्व नहीं है चाहे, वह बड़ासे बड़ा दार्शनिक क्यों न हो। दर्शन चिन्तनके क्षेत्रमें है और गीति काव्य अनुभूतिके। अनुभूति और चिन्तनका समन्वय करनेकी चेष्टा रहस्यवादमें हुई है। अज्ञात प्रियतमके प्रति मनोवृत्तियोंकी सबल विवृत्ति सम्भव है अथवा नहीं, यह प्रश्न दूसरा है। कलाकार किसीकी अनुभूति प्रकृतिके उपकरणोंमें अथवा व्यक्त जगत्‌मे पाता है अथवा व्यक्तके किसी रूपसे आकृष्ट हो चिन्तनद्वारा अव्यक्तके प्रति रागात्मक सम्बन्धका आभास-मात्र प्राप्त कर सकता है, उसमें रहस्य-वादिता है। जीवन और कलाको एक साथ मिलाकर देखनेवाले कलाकारके विचार, अन्तर्प्रकृति और प्रवृत्ति, एवं उनके शोधका स्वरूप नही देख पाते अतः उनकी धारणाएँ भ्रमात्मक आधारपर स्थित हैं। चिन्तन और अनुभूतिके सामञ्जस्यसे रहस्यवादिताका मधुर रूप यहाँ देखनेको मिलता है—

मेरे ओ विहग से गान !
नभसे अपरिमित में भले हो पंथका साथी सबेरा,
खोजका पर अन्त है यह तृणोका लघु बसेरा !
तुम उड़ा ले धूलिका
करुणा सजल वरदान ! —महादेवी

किन्तु चिन्तन वह भी अपना नही, जो दार्शनिकोंके परम्परागत विचार हैं, उन्हे छन्दोंमें बॉधना गीति-काव्य नही हो सकता। गीति-काव्य दार्शनिकोंके चिन्तनको भावना और अनुभूतिके क्षेत्रमें उतार देता है, यदि चिन्तनका आग्रह लेकर हमारे सामने उपस्थित हो वह गीति-

काव्य नहीं। परम्परागत दार्शनिक चिन्तनका अधिक प्रभाव इन पंक्तियोमे मिलता है—

> मैं ही साधक साधना, साध्य
> सेवक, सेवा मैं स्वयं सेव्य
> बाधक, बाधा मैं ही अबाध्य —प्रभात

प्रगतिशील कही जानेवाली कविताओंमें अध्यात्म और धर्मकी भावना नहीं है किन्तु द्वन्द्वात्मक भौतिक दर्शनका प्रभाव स्पष्ट है। उनमें कवित्वका अभाव इसलिए नही है कि दार्शनिक आधार उन्हे प्राप्त नहीं बल्कि इसलिए है कि बौद्धिकता और चिन्तन ही प्रमुख रहते हैं, अनुभूति कुनमुनाकर रह जाती है अथवा जगती नहीं। इसके साथ ही बुद्धिको उभारनेके लिए बीच-बीचमें कवि कुछ ऐसी बात कहनेका प्रयास करता है कि पाठककी सोयी चेतना कठिन ठोकर खाकर सजग हो उठे। अनुभूति और बुद्धिके विरोधमे ही इन कविताओका काव्यत्व रसानुभूति उत्पन्न नहीं कर पाता। किन्तु इतना ध्यान रखना होगा कि यह इनका प्रयोग-काल है और क्रमशः इनके स्वरूपका विकास होगा। प्रचारकालमें आवेग तो रहता है किन्तु कलात्मक रूप नहीं। इस प्रकार दार्शनिक आग्रह जहाँ गीति-काव्यको मधुर भावना देता रहा है, वहाँ वह अब पौरुष-चेतना जगानेके प्रयासमे है।

सौन्दर्य और प्रेम

गीति-काव्यका जन्म मैने अनुभूतिके लयात्मक सौन्दर्य-बोधके कारण माना है। यहाँ सौन्दर्य, उसके रूपो और प्रेमके पारस्परिक और गीति-काव्य-गत सम्बन्धपर विचार करना है। सौन्दर्यके सम्बन्धमे इतना स्पष्ट है कि वह किसी बाहरी वस्तुमे एकान्तिक रूपमे नही और

सौन्दर्यानुभूतिका आधार वस्तु नहीं स्वयं द्रष्टा है। अधिकरण और वस्तु दोनोंके समन्वयमे सौन्दर्यानुभूति अतः कलात्मक प्रवृत्तिकी सन्तुष्टि है। वस्तु द्रष्टाकी सौन्दर्य-भावनाकी सन्तुष्टिका आधार है और द्रष्टामे उस वस्तुसे चेतनाके उन उद्बुद्ध क्षणोंमे सौन्दर्यानुभूति ग्रहण करनेकी शक्ति। मानवता सदा सौन्दर्यके निरीक्षण-परीक्षण और निर्माणमें लगी रही और इस सौन्दर्य-भावनाका विकास और उसकी अभिव्यक्ति सभ्यता और संस्कृतिकी चेतनाके साथ सम्बद्ध हो गयी। 'शायरी मर चुकी अब जिन्दः न होगी यारो' मे हालीने बुद्धिवादिताके कारण होनेवाले काव्यत्व-ह्रासकी ओर संकेत किया है किन्तु वहाँ उसने सौन्दर्य-भावनाके विकासकी ओर ध्यान नहीं दिया। सौन्दर्यके इस व्यापक प्रभावसे मानवको कभी मुक्ति नहीं मिल सकी और न मिल सकेगी। केवल स्वरूप-विधान और जिन उपकरणोंसे सौन्दर्य-भावनाकी परितुष्टि होती रही, उनमें अन्तर आता रहा। इस सौन्दर्य-भावनाकी परिणति नारी-सौन्दर्य (पुरुष-सौन्दर्य भी), प्रकृति-सौन्दर्य, नाद और शब्द-सौन्दर्यके रूपमें हुई। प्रकृति सौन्दर्य एवं नाद और शब्द-सौन्दर्यकी चर्चा अन्यत्र हो चुकी है। सौन्दर्य मनुष्यको प्रभावित करनेमें अधिक प्रबल है, अतः काव्यमें इसका अन्यतम स्थान है। गीति-काव्य, कविताकी कविता है, अतः इसमें सौन्दर्य-चित्रण प्रचुर मात्रामें मिलता है। मानवीय सौन्दर्य केवल बाह्य नहीं, आन्तरिक भी है। अतः इस प्रकार सौन्दर्यके दोनों रूपोंका प्रत्यक्षीकरण मिलेगा। नारी-सौन्दर्यका चित्र ग्राम-गीतोंमें मिलता है। गीति-काव्यकी स्त्रैण प्रकृति है, इसका तात्पर्य यह है कि भावुकता और कोमल-भावनाका प्रसार इसमें अधिक है एवं गीतोंका प्रचार स्त्रियोंमें अधिक होनेके कारण उनके जीवनको घेरनेवाली घटनाओंका चित्रण अधिक है। नारी सौन्दर्यका चित्र है—

जिरवै अस धन पातरि कुसुम अस सुन्दरि।
रामा चढ़ि गई पिया की अटरिया सोई सुख नींद ॥

[धनि (स्त्री) जीरेकी तरह पतली और कुसुमके फूलकी तरह सुन्दरी है। वह अपने प्राणप्यारेकी अटारीपर चढ गयी और सुखकी नींद सो गयी।]

चूमौं मैं ननदी क ओठवा चउर अस दँतवाँ

[ननँद, मै तुम्हारे होठ चूमती हूँ, तुम्हारे चावल ऐसे नन्हे नन्हे दाँत चूमती हूँ।]

अगहन कुँआरी करती सिंगार। सिमाती बसतर सोने के तार।
पाट पटम्बर कुलही के मानि, माथे चीरा जड़े कलीदार॥
गले बैजन्ती

[अगहनमे कुमारियाँ शृंगार करती हैं। जरीके तारोसे वस्त्र सिलाती हैं रेशमी कपड़े पहनती है। माथेपर सुन्दर चीर और गलेमे बैजयन्ती माला पहनती हैं।

पुरुष-सौन्दर्यके एक-आध चित्र हैं—
आँखि तोरी देखूँ ये दुलहा अमवा की फँकिया रे
भौंह तोरी चढ़ली कमान रे

[हे दूल्हा! आँखे तो तुम्हारी आमकी फाँके है और तुम्हारी भौहें तो चढ़ी हुई कमान हैं।]

एक विवाहार्थिनी बालिका अपने पितासे वरके सौन्दर्यके सम्बन्धमें

कहती है—'तारे ऑ क्वी चन्द' (तारोमे चन्द्रमाकेसमान) वर चुनना। मिथिलाका एक गीत है—

एहि चितचोरवा के चोखे दृगकोरवा
ओठवा अनुठवा कहओलनि हे

[हे सखि ! इस चितचोरकी आँखोंकी कोर नुकीली है। होठ अनूठे हैं।]

एहि चित चोरवा के लालि लालि ठोरवा
मन मोरवा भरमओलनि हे।

[हे सखि, इस चित-चोरके लाल-लाल होठ हैं और इन्होने मेरे चित्तको भ्रममें डाल दिया है, आकर्षित कर लिया है।]

विद्यापतिके गीतोमे सौन्दर्य-चित्रण अधिक है। संस्कृत काव्यकी परम्परासे प्रेरणा पानेके कारण सौन्दर्यके प्रत्यक्षीकरणमें उपमा, रूपक आदि सादृश्य मूलक अलकारोका प्रयोग विद्यापति और इनके बाद-के भक्त कवियोने किया। सौन्दर्य स्थूल रेखाओमें घिरा और स्पष्ट है। इस सौन्दर्यके चित्रणके आधार-स्वरूप उपमानोंमें सौन्दर्यकी कल्पना अनेक अवस्थाओमें परम्परा-गत रही। चन्द्र, भ्रमर, पिक, दाड़िम, नागिन कमल, सिंह आदि सर्वमान्य उपमान रहे। सादृश्य मूलक अलंकारोमे भी प्रभावका अधिक हाथ रहा लेकिन रूढ़िगत होनेपर वास्तविकताका वह अंश दूर हो गया और केवल परम्पराके प्रतिपालनमे ही सौन्दर्य-वर्णनकी इति-श्री हो गयी। रीतिकालमें आकर यह मनोवृत्ति इतनी अधिक विकृत हो गयी कि कवियोंकी नायिकाएँ वीभत्स चित्र उपस्थित करने लगीं। अतिशयोक्ति अपने उस विकृत रूपमे

उपस्थित हुई, जिसमे हास्य और व्यग्यका उपादान बनने लगी। 'कटि' के वर्णनमे कवियोकी अतिशयोक्तिको भी पर लग गये हैं। पद्माकर कटिके लोपके सम्बन्धमे कहते है—'जानि न ऐसी चढ़ाचढ़िमें केहिं धौ कटि बीचहि लूट लई सी' और बिहारीकी नायिकाकी कटि तो "सूछम कटि परब्रह्म लौं अलख लखी नहिं जाय' है। 'शंकर' महाराजको 'भावमे अभाव है अभाव मैं धौं भाव भर्यो' के समान 'कमरकी अकथ कहानी' दीख पड़ती है। कमरकी इस बारीकीका वर्णन उर्दूका एक कवि करता है—

सनम सुनते हैं तेरे भी कमर हैं।
कहाँ है, किस तरफ को है, किधर है।

इसे ही दृष्टिमे रखकर 'अकबर' इलाहाबादीने लिखा था—

ममरिबने खुर्दबींसे कमर उनकी देख ली
मशरिककी शायरीका मजा किरकिरा हुआ।

कटाक्षोकी तेजीसे डरकर 'आलम' उपदेश देते है कि 'काजर दे नहिं एरि सुहागिन, आँगुरी तेरी कटैगी कटाछन' और पद्माकरकी नायिका 'अनियारे चख लखि' 'कजरा देत डुराय'। ऐसी नायिकाएँ आज खैरियत है दिखायी नही पडतीं अन्यथा नारी स्वातंत्र्यके इस युगमे न जाने कितनोंके मन-प्राण बिंधते और छिदते, इसकी गणना कोई गणितज्ञ ही कर पाता। विद्यापतिकी सौन्दर्यान्वेषिणी ऑखे राधाके रूपपर अटक जाती हैं। उनकी तूलिकासे अंकित चित्र है—

कुच जुग परसि चिकुर फुजि पसरल
ता अरुझायल हारा;

जानि सुमेरु ऊपर मिलि ऊगल,
चाँद बिहिन सब तारा।
चाँद सार लए मुख घटना करुँ,
लोचन चकित चकोरे;
अमिय घोल आँचर धनि पोछलि,
दह दिसि भेल उँजोरे।
नाभि-बिबर कयँ लोम-लतावलि,
भुजगि निसास पिपासा
नासा खगपति चंचु भरम भय,
कुचगिरि संधि निवासा।

विद्यापति, सूर और तुलसीके नारी-चित्रोंमे ऐन्द्रियता और भावात्मकताका सम्मिश्रण है। 'सूर ऐसो रूप कारन मरत जिव बिन प्यास' की आकुलता तुलसीकी सीतामें नही। सीतामे सौन्दर्य-प्रकाश कम नहीं किन्तु वह आँखोको जलाता नही बल्कि शीतल प्रकाश है, जिसे संयम और सकोचका साहचर्य है। जगज्जननीका वासनामय चित्र उपस्थितकर तुलसी अपनी लेखनीको कलंकित कर 'कुकवि' कहा अपयशके भागी बनना नही चाहते। कालिदासने कुमारसंभवमे पार्वतीके रूप-वर्णनमें जिस स्वच्छन्दताके साथ चित्र उपस्थित किया है, तुलसीदास वैसा नही करते। तुलसी सीतारामके भक्त है, अतः मनोवृत्तिका शोध आवश्यक हो जाता है। सूरकी भक्ति पद्धति तुलसीसे भिन्न है अतः सूरको सौन्दर्य-शील चित्रणमे जितनी स्वतन्त्रता है, उतनी रामके साथ भिन्न सम्बन्ध होनेके कारण तुलसीको नहीं। विद्यापति इस प्रकारका कोई बन्धन स्वीकार नहीं करते अतः जो स्वतन्त्रता, स्पष्टता और ऐन्द्रियता विद्यापतिकी राधामें है, वह

सूर और तुलसीमें नहीं । तुलसीमें जो गम्भीरता है, वह उनमे नहीं । तुलसीका सौन्दर्य-चित्र नारीका चित्र नहीं, देवीका चित्र है और विद्यापतिका चित्र सामान्य नायिकाका। सूरदासका चित्र पूर्णतया मानवीय सौन्दर्य है जिसमे आकर्षण है, मोह है, तृप्ति है, ज्वाला है, और साथ ही अनिर्वचनीय आनन्द भी। सूर यदि अलंकार विधानका मोह छोड़ चित्रणपर उतर आते, उनका चित्रण अधिक प्राणवान हो जाता। रीतिकालमे इस सौन्दर्य-विधानकी विकृत मनोवृत्ति कवियोमे लक्षित हुई। नारी सौन्दर्यका चित्र अत्यन्त परम्पराभुक्त और रूढ़ हो गया। सौन्दर्य केवल वाह्य रह गयाँ उसे भावात्मकता प्राप्त न हो सकी। रीतिकालीन कवि सौन्दर्यको इतना स्थूल समझ बैठा कि वह अंगोंके वर्णनमे ही संकुचित हो बैठा। अग-विशेषके वर्णनमें जितना श्रम व्यय किया गया उतना यदि सौन्दर्यके सम्यक् प्रभावका वर्णन होता तो कविता धन्य हो उठती। उस ऐन्द्रियतामे सौकुमार्य एवं अनुभूतिसे अधिक शब्द-चित्र उपस्थित किया गया। खड़ी बोली काव्यका स्वरूप ग्रहण कर भी इतिवृत्यात्मक अथच स्थूल चित्रोसे परिपूर्ण रही। मैथिलीशरण गुप्त एवं हरिऔधमें उस चित्रमत्ताका अभाव नहीं। गीति-काव्य मात्र सौन्दर्यके वर्णनके अनुपयुक्त है जबतक उस सौन्दर्यके प्रति रागात्मक अनुभूति न हो। प्रबन्ध काव्यमे सौन्दर्य-चित्रणके लिए स्थान अधिक है, कारण कथाके आग्रहके कारण वर्णनात्मक शैली कवि अपनाता है। उसके सौंदर्य चित्रणके लिए रेखाओंकी स्पष्टता, स्थूलता और अतिरञ्जना अपेक्षित होती है किन्तु गीति-काव्य वृत्ति और 'मूड' को अभिव्यक्त करता है अतः सौन्दर्यका संकेत वह दे सकता है जिसमें मानसिक वृत्तिके प्रकाशके लिए उसे अवसर प्राप्त हो, ऐसी अवस्थामें सौन्दर्य-वर्णनके लिए गीतिकाव्यकी रचना नहीं की जा सकती। सौन्दर्यके इस प्रभावको छायावादी

कविने लक्षित किया अतः उसके रूप-चित्रोंमे अस्पष्टता, भावात्मकता है और है ऐन्द्रियताका अभाव-सा है। शायद इसी अस्पष्टता और सूक्ष्मताके कारण व्यंग्य रूपसे इस प्रकारकी कविताको छायावादकी संज्ञा मिली। रूप और सौन्दर्यको आत्म-प्रकाशके लिए नयी दिशा और चेतना प्राप्त हुई। छाया-वाद-युगीन सौन्दर्य अ-तन है, जिसका प्रभाव तो स्पष्ट है किन्तु उसमे इतनी सूक्ष्मता है कि उसकी अनुभूति ऐन्द्रिय नहीं भावात्मक हो गयी है। उसके दर्शन यत्किञ्चित उसके प्रभावमें दीख पड़ते हैं। इसके साथ ही अंगोंकी रीति-कालीन प्रधानता जाती रही अतः समग्र रूपसे सन्तुलित और समन्वित सौन्दर्य-चित्र स्वानुभूतिकी प्रेरणासे जाग्रत होकर उपस्थित हुए। प्रसाद रूप और यौवनके गीतिकार है। सौन्दर्यकी मोहकता उन्हे मुग्ध करती है, यौवन-विलास उन्माद देता है। पन्त प्रकृति और उसके सरलपनसे आबिष्ट हैं अतः बालापनके चित्रोंके प्रति उनमे मोह है। निराला सौन्दर्यको स्थूल और सूक्ष्मकी सीमाओसे स्पर्श कराते दीख पड़ते हैं। सौन्दर्यका संकेत भूमिका, पृष्ठभूमि और भावनासे मिलता है। संकेत-वादकी शास्त्रीय रक्षाका भाव निरालामे नही किन्तु निरालाके सौन्दर्य-चित्रोंके संकेत हैं और इस प्रकार सुकुमारता एवं अस्पष्टताके साथ भावा-त्मकता और सौन्दर्यगत प्रभावका चित्रण है। महादेवीमे स्थूलताका आग्रह नहीं दीख पड़ता ऐसी अवस्थामें सौन्दर्यका भावात्मक आवेश ही उनके गीतोंमे अधिक मिलता है। पन्तकी कामिनी पङ्खड़ियोसी कोमल और सुकुमार, भावनाओं सी उन्मुक्त और विस्तृत, यौवन-सी मादक और विषाद-सी करुण है। उसे स्पर्श करते भय लगता है, कहीं 'दलि मलियत' न हो जाय किन्तु वह अपूर्व है; स्थूलता और सूक्ष्मता दोनोंके मध्य कोई रेखा खींची नहीं जा सकती। सौन्दर्य कुछ ऐसा है कि वह दीख पडता तो अवश्य है किन्तु

भुजाओमे बँध पाता नहीं, स्नेहकी बूँदो-सी तरल और आविल। प्रसादके सौन्दर्य-चित्र मनोरम और रमणीय हैं। वासनाका शोध और संस्कार है किन्तु पन्त की-सी न तो तरलता है और न सूक्ष्मता ही बलिक है चित्रमत्ता, केन्द्रीयता और विलास-वैभव। मालूम पड़ता है जैसे सौन्दर्य स्वयं अँगडाई ले रहा हो। रूपके साथ ही सौन्दर्य-दर्शनके चित्रको प्रसाद अकित करते हैं। पन्तके चित्र जहाँ भावनाके प्रसारके कारण शुक्रकी भाँति दूर किन्तु प्रभावोत्पादक होते है, वहाँ प्रसादके चित्र हमारे सामने रहते है किन्तु स्थूल इतने नही कि उन्हे भुजाओमे कस लिया जा सके। रामकुमार वर्माके चित्रोमे इतनी अस्पष्टता भी नहीं, दूरी का यह भाव भी नहीं।

एक सुन पड़ी 'ध्वनि' सी को उस बालाकी उस बार,
बैठ गयी वह भू पर कुछ तिरछी - सी धनुषाकार।
केश उलट कर गिरे कपोलो पर होके उन्मुक्त,
आँखें भी हो गयीं शीघ्र दो - चार अश्रु से युक्त।

और—

देखा एक रूप, जिसमें है मादकताका सार,
लोट रहा उसके चरणोंपर यौवनका: संसार।
प्रतिबिम्बित है अंग अंगमें अजित अनंग अनूप,
कोमल अरुण नेत्रमें बहता है आसवका रूप।

—डा० वर्मा

इस चित्रमे न तो कमल, शुक, पिक आदिके द्वारा रसिया रीतिकालीन कविकी परम्पराका पालन है और न पन्तकी बालिकाकी अस्पष्टता ही है। रूप-विधान स्थूल रेखाओमे अंकित है, स्पष्ट रंगोंका

मिश्रण है किन्तु कहीं अतिरञ्जन नहीं। पन्तकी सुकुमारता नही किन्तु माधुर्य्य है। रूप-विलासके चित्रकार पन्तका चित्र है—

सरलपन ही था उसका मन,
निरालापन था आभूषन,
कानसे मिले अजान नयन,
सहज था सजा सजीला तन।
सुरीले ढीले अधरों बीच
अधूरा उसका लचका गान
विकच बचपनको, मनको खींच,
उचित बन जाता था उपमान।

× × ×

रंगीले गीले फूलोंसे
अधखिले भावोंमे प्रमुदित
बाल्य सरिताके कूलोंसे
खेलती थी तरङ्ग-सी नित।

एक चित्र और—

कपोलोंमें उरके मृदु भाव
श्रवण नयनोंमें प्रिय बर्ताव;
सरल संकेतोंमें संकोच,
मृदुल अधरोंमें मधुर दुराव!
उषाका था उरमें आवास,
मुकुलका मुखमें मृदुल विकास;

चाँदनीका स्वभावमें भास
विचारोंमें बच्चोंके साँस —पन्त

उपर्युक्त चित्र पन्तकी 'आँसू'की बालिकाका है। आँसूकी बालिका-से प्रथम उमड़ते आँसुओंकी बूँदका ध्यान आता है किन्तु उस तरलतामे रूप-सौन्दर्यका विधान है। आँसूकी बालिका बालिका बनकर सामने आ खड़ी होती है। इस बालिकाका सौन्दर्य अनूठा है किन्तु अपनापन नहीं, वह ऊषाके अरुणिम आलोक-सी सुषमापूर्ण और आँसुओ-सी तरल है बिलकुल छुईमुई-सी। शायद यह आँसूकी बालिका है इसलिए तो नहीं, जरा पन्तकी ग्राम-युवतीका चित्र देखा जाय—

सरकाती पट
खिसकाती लट
शरमाती झट
वह नमित दृष्टिसे देख उरोजोंके युग घट!
हँसती खल-खल
अबला चञ्चल
ज्यों फूट पड़ा हो स्रोत सरल
भर फेनोज्ज्वल दशनोंसे अधरोंके तट!

तथा 'घटा-सी नव असाढ़की सुन्दर' में भी वही तरलता है, वही मुक्ति है, वही स्नेह-सरल चचल यौवन-मद-मार है। रेखाएँ कुछ अधिक स्पष्ट अवश्य हैं कारण यथार्थवादिताका आग्रह जो है। प्रसाद रूप और सौन्दर्य, यौवन और उन्मादके कवि हैं। इसी दृष्टिसे प्रसाद पूर्णतया मानवीय और मानवीय भावोंसे प्रेरित हैं। भावात्मकता और भावुकताका अभाव नहीं। जहाँ रूप-विधान और भाव सौन्दर्यको मूर्त रूप देनेका

आवास प्रसादका है वहाँ उसके प्रति मानसिक आसक्ति और आकर्षण-का आवेश प्रसादमे कम नहीं; प्रसादके सौन्दर्य-चित्र वास्तवमें अपने व्यापक प्रभावके कारण पहचाने जाते हैं, तूलिकाको इस सावधानीसे कवि उठाता है कि कहीं रंग गहरा न हो जाय, कहीं एक रंग फैलकर दूसरे रंगका प्रभाव मिटा न दे। 'कामायिनी' में रूपके चित्रमे प्रसादने अपूर्व सफलता प्राप्त की है। प्रसादके चित्रोंमे गति और लयके साथ संयम है निरालाके सौन्दर्य-चित्र सक्षम, स्पष्ट और आकर्षक हैं, निरालाके सौन्दर्य चित्रोंमें एक दृढ़ता है जो किसी अन्यके चित्रोमे नहीं। इनमें गत्यात्मकता है, गति है, क्षमता है, ओजस्विता है, किन्तु माधुर्यपूर्ण और सुकुमार। 'जुहीकी कली' कवितामें 'निराला' सौन्दर्य-चित्र उपस्थित करते हैं—

निद्रालस बंकिम विशाल नेत्र मूँदे रही—
किंवा मतवाली थी यौवनकी मदिरा पिए,
कौन कहे ?

तथा— सुन्दर सुकुमार देह सारी झकझोर डाली,
मसल दिये गोरे कपोल गोल
चौंक पड़ी युवती—
चकित चितवन निज चारों ओर फेर

दिनकरकी सौन्दर्यघट-पूर्ण नारी उन्मुक्त है, प्रगल्भ है, उसे लाजके बन्धन नहीं; कभी वह शर्माती है तो भी क्षणभरको। प्रेममयी है, शृंगार-सौभाग्यकी रूपवती बाला भी वह है किन्तु वह सहज स्वच्छन्द है, वह केवल सुकुमारताके भारसे दबनेवाली भी नहीं, चपल और उन्मद यौवनका विलास उसमें है। 'हर सिंगारकी डाली' से उसके अरमान

फूलते है। वह सँभलकर नहीं चलती, वह अपरूप बाला संकोच, जो चाहे कोई शील कह ले, को म नकार नहीं चलती। अपनी चकित और चपल दृष्टि वह सब ओर डालती चलती है। पन्तकी बालिका बाला हो बन गयी, प्रौढ़ा कहते झिझक होती है। रामकुमार वर्माके चित्रोंसे इसमें स्थूलता अतः स्पष्टता अधिक है। निरालाका सक्षम आवेश भी नहीं, प्रसादका उन्मद विलास-वैभव भी नहीं, किन्तु सौन्दर्यका अ-सूक्ष्म किन्तु भावात्मक चित्रण है। वह कामिनी है—

दाँतों तले अधरको दाबे, कसे उबलते मनको,
चलती हो ऐसे कि देखती ही ज्यों नहीं किसीको।
लेकिन सब को बचा काम करनेवाले वे लोचन,
कहते हैं तुम बिन देखे देखा करती बहुतोंको।
तुम्हें ध्यान रहता कि पीठ सहलाती कितनी आँखें,
बँधे चले आते कितने मन छलकी हुई लटोंसे।

यह बाला अपने सौन्दर्यके प्रति जागरूक है और शास्त्रीय भाषाका प्रयोग करें तो 'ज्ञात यौवना'। 'काँप रही शंकिता मृगी-सी वह सिकुड़ी सिमटी भी' ऐसी नारीके प्रति कविका आकर्षण नहीं, अतः वह कहता है 'दूर करो इस मुखसे पट को' और रूपके इस चित्रको स्पष्ट करता हुआ कहता है—

आँखोंमें गीली काजल, लम्बी रेखा सेंदुरकी
नासिकाग्रसे चली गयी है ऊपर चीर चिकुरको—
सीधी रेख बना; कच दोनों ओर सजे हैं ऐसे,
कटकर दी हो राह तिमिरने जैसे किसी किरणको।

यहाँ चित्र स्पष्ट है, स्थूल रेखाओमे घिरा। इस प्रगल्भताके किञ्चित् दर्शन इन पंक्तियोमे होते है·

सकूँगी कैसे स्वयं सँभाल
तरंगित यौवनका रसवाह
ग्रन्थिके ढीले कर सब बन्ध
नाचनेको आकुल है चाह
डोलती श्लथ कटि-पट के संग
खुली रसना करती झनकार
न दे पायी कङ्कनमें कील
रासकी मुरली उठी पुकार

छायावादी-युगमें आकर सौन्दर्य अपरूप, सूक्ष्म और अशरीरी तथा भावात्मक हो गया था। वह इस लोकका नहो बल्कि क्षितिज लोकका वासी था जिसका आभास तो मिलता रहा किन्तु अस्पष्टताके कारण उसकी अनुभूति नहीं हो पाती, वह एक प्रकारसे अगम्य, भेद-मय और रहस्य बना रहा है। रहस्यवादिताके मूलमें जो व्यक्त-अव्यक्तके रागात्मक सम्बन्धकी अभिव्यञ्जना है, उसके साथ सौन्दर्यके मधुर, मादक किन्तु अस्पष्ट चित्रणके मेलसे दुर्बोधताकी सृष्टि होती चली गयी। सौन्दर्य चित्रण अपना स्थूल आधार पानेके लिए सदा व्यग्र रहा और इस प्रकार स्थूलताका यत्किञ्चित, कम-बेश सम्मिश्रण गीति-काव्यमे मिल्ता है। ऐसे अस्पष्ट चित्रोके कारण अनुभूतिको चिन्तनका अधिक अवलम्ब लेना पड़ता है और कल्पना उसमे रङ्ग मरती है। इन सौन्दर्य चित्रोके प्रत्यक्षीकरणमें कल्पनाको विस्तृत और उन्मुक्त छोडना पड़ता है तभी उन्हे साकार किया जा सकता है। स्थूलताके प्रति विद्रोह करनेका यह अर्थ हो गया कि

कवि कल्पनाकी उच्चतम उडानमे ही काव्यकी श्रेष्ठताका स्वप्न देखने लगा। सादृश्य एवं साधर्म्यके साथ समान प्रभावकी प्रेरणासे आविष्ट कवि कल्पनात्मक साधर्म्य एवं सादृश्यकी चिन्तनासे प्रेरित कल्पना करने लगा। इस प्रकारके चित्रोंमें क्रमशः स्पष्टता और स्थूलता आती रही और इस स्थूलताको स्पष्ट रेखाओसे घेरनेका प्रयास अंचलके गीतोमे मिलता है। 'निष्फल आरजू बेबसी' की कहानी उसमे मिलती है। सौन्दर्य सम्पूर्णतः मानवीय है, मानव हृदयको स्पर्श करता हुआ जीवनको घेरता हुआ।

सौन्दर्यका आकर्षण सबसे बड़ा आकर्षण है; इसके प्रति चेतनाका जागरण उतना ही स्वाभाविक है जितना समीरका कम्पन, लहरोंका उत्थान, जीवनका प्रवाह। क्षणिक आवेश, आकर्षणको लोग वासना कहते है, और इसके व्यापक और अपेक्षाकृत स्थायी प्रभावको प्रेम। वासना प्रेम-का मूल है। वासनाका शोधित रूप ही प्रेम कहा जाता है, वह भी वासना है, प्रचण्ड वासना,—यह सत्य है कि वासना शब्दका प्रयोग मैं इसके व्यापक और विस्तृत अर्थमे कर रहा हूँ। प्रेम जीवनकी करुण किन्तु मादक कहानी है। वियोग जीवनकी दुःखद कहानी है। जो बिछुड कर मिला नहीं, वह अभागा है; जिसे वियोग हुआ नही, उसने प्रेमका स्वाद जाना नहीं; किन्तु जीवनमे जिसने किसीसे प्रेम नहीं किया उसके जैसा अभागा इस ससारमे कोई नहीं। प्रेमकी अनुभूति अतः गीतिकारो-के लिए बड़ी प्रेरणा रही है। कोई बिरह-बालाको गीतोंका उपहार दे रहा है, कोई प्रेमके स्थायित्व और आदर्शके गीतोंसे वायुमण्डल कँपानेकी चेष्टा कर रहा है। कोई प्रेमकी बिफलताके गीत गा रहा है। शृंगार जिसका स्थायी भाव रति है, काव्यका अनेक अंशोंमे मूल है किन्तु प्रेमके प्रति दृष्टिकोण सभी कवियोंका एक नहीं। तुलसीका प्रेम एकनिष्ठ है। राम-सीताके प्रेमका विकास जिन परिस्थितियोंमे होता है, उनमे रोमांसका

स्थान नहीं; विवाहके पूर्व दर्शनमें जो आकर्षण है, उसमें शरीर और शरीर-धर्मकी आकुलता और चंचलता नहीं। प्रेम यहाँ एकदम भावात्मक है किन्तु प्रेम केवल भावनाओंमें नहीं जीवित रहता है, उसके लिए शरीर-गत अभिव्यक्ति और आवेश आवश्यक हैं। प्रेमके इस भौतिक और शरीरी आधारकी चेतना विद्यापतिमें है, विद्यापतिको युवतियोंमें उन्मद यौवन-विलास और पिपासा है, सूरकी गोपियोंका प्रेम उन्मादकारी, 'लोक-लाज' 'कुलकी कानि' का विरोध नहीं माननेवाला गम्भीर किन्तु सयत है। विद्यापतिकी राधाका प्रेम उच्छ्वसित है, जिस प्रकार बरसाती नदीका फेनिल प्रवाह। मिलनेके लिए जानेमे इषत् संकोच उसे होता है किन्तु वह 'अभिसार' करती है, मान करती है। विरह-व्यथा उसे पीड़ित करती है, उसके अगाध प्रेमका परिचय देती है। चण्डीदासकी राधाका प्रेम संकोचशील और भय-सयुत है, प्रेमोन्मादिनी तो है वह कारण कृष्ण अर्थात् प्रेमी ही उसके प्राण हैं किन्तु वह कोमल है, अत्यन्त कोमल है। चण्डी-दासकी राधा भयसे त्रस्त है, लोग क्या कहेगे, इसकी चिन्ता है, 'कानू' कब विलग हो जायँगे, इसकी आशंका है। हृदयका उच्छ्वसित आवेग छातीमे बँधा नहीं रहता और वह फूट पड़ता है। विद्यापतिकी राधाका प्रेम इतना भयसंकुल नहीं, एकदम निश्शंक भी नहीं। सूरकी राधाका बाल-स्नेह क्रम-क्रमसे प्रेममे बदल जाता है, अतः यौवन-कालीन मिलनकी भाँति संकोच, झिझक, गोपन और आशंका भी नहीं। विरह-कालमें भी सूरदासकी राधा गम्भीर है, गोपियाँ जहाँ प्रगल्भाकी भाँति उद्धव और भ्रमरको उल्टा-सीधा सुनाती हैं, वहाँ राधाका प्रेम इतना गम्भीर, इतना मार्मिक और गहरा हो उठता है कि वाणी मूक हो जाती है। युगकी प्रेम-भावनाकी छाप इस प्रेमपर है किन्तु इस प्रेममें स्थिरता है, गम्भीरता है और है आत्मसमर्पण। सूरकी गोपियोमे इतना त्याग-भाव आ जाता है

कि वे कृष्णकी मंगल-कामना करती हुई उनके न आनेपर भी सन्तोष कर ले सकती हैं। 'मेरे नैना विरहकी बेलि बई। सींचत नीर नैनके सजनी मूल पताल गई' कहनेवाली वे गोपियाँ कहती हैं—

> जहँ-जहँ रहौ राज करौ तहँ-तहँ, लेहु कोटि सिर भार।
> यह असीस हम देति सूर सुनु, न्हात खसै जनि बार ॥

यह प्रेम उस अवस्थामे पहुँच गया है, जहाँ प्रियकी मंगल-कामनाके रूपमे अविचल प्रेम बदल जाता है। प्रिय चाहे जहाँ रहे, कुशलसे रहे, चाहे वह भूल ही क्यो न जाय ! यह भावना निराशाके कारण नहीं, प्रेमके अभावका परिचायक नहीं बल्कि उस दृढ़ विश्वासका परिचायक है जिसमे अपने प्रेम और उसके गाम्भीर्यमे इतना विश्वास रहता है कि प्रियतमके प्रेमकी आस्था डिगती नही। गोपियोका विश्वास इतना दृढ़ है कि देखकर आश्चर्य होता है। "ब्याहौ लाख, धरौ दस कुबरी, अन्तहि कान्ह हमारो' में जो औदार्य, जो आस्था, जो गाम्भीर्य है, वह अनिर्वचनीय है। 'जा पर जाकर सत्य सनेहू, सो तेहि मिलहि न कुछ संदेहू' देखता हूँ, असत्य हो जाता है, अगर इन गोपियोंका स्नेह सत्य नहीं तो संसारमे और कोई दूसरा स्नेह सत्य नही। जीवनका यह करुण उपहास है, ट्रेजेडी है जो कृष्ण मथुरासे लौटकर नही आते, ब्रजमें फिर नहीं जाते। गोपियोंका यह विरह-व्यापार पं० रामचन्द्रशुक्लके शब्दोमे 'बैठे-ठालोंका' व्यापार भले हो किन्तु अपूर्व है, अन्यतम है, अद्वितीय है जिसमे सम्पूर्ण चेतना प्रियके प्रति जागरूक है, प्रियतमपर न्योछावर है।

परकीया प्रेम

दरबारमें आकर राधाका प्रेम वह स्निग्ध नहीं रहा, वह साधारण नारीका प्रेम रह गया। परकीया प्रेमका आधिक्य हमारे भयका कारण नहीं।

'विदेशी साहित्यके प्रभावसे भारतीय-दाम्पत्य जीवनकी सुरुचिमे बडा व्याघात उत्पन्न हुआ और निष्क्रिय राजे-महाराजोंकी रगरेलियोंके सुर तानपर कला गीत भी नाचने लगा'[१] मे स्पष्ट रूपसे इस प्रवृत्तिको उचित न ठहरानेका प्रयास है। एक तो मुगल कालतक विदेशी साहित्य-का प्रभाव अत्यन्त सीमित क्षेत्रमे पडा, कारण फारसी उस कालकी राज-भाषा थी और उसी साहित्यका प्रभाव भी पड सकता था। सूफी सम्प्रदायका प्रेम इस रूपमे अलौकिक है कि रूपकत्वके द्वारा साधकका साध्यकी ओर जाने और मार्गकी कठिनाइयोंका साकेतिक वर्णन मिलता है। काव्योका आधार ऐतिहासिक अथवा काल्पनिक होनेपर भी उनकी अभिव्यक्ति लोकोत्तर रूपमे हुई। इतना स्पष्ट है कि प्रेम-मार्गी शाखाके प्रमुख कवि जायसीका भी प्रभाव अधिक सीमित रहा। उस शाखाकी अनेक रचनाएँ तो आज भी उपलब्ध नहीं। कबीरपर सूफी मतका प्रभाव कुछ पड़ा अवश्य किन्तु उसमे परकीया तत्त्वका विधान नहीं है। मृगावती अपने प्रेमीको प्राप्त कर लेती है। पद्मावतीका विवाह रतन-सेनके साथ हुआ। इन्दुमती भी उसकी विवाहिता थी। सूरदासकी राधा कृष्णकी दुल्हन हैं (श्री लाल गिरिधर नवल दुलहै दुलहिन श्री राधा)। गोपियोंको परकीया माननेमे जो अड़चनें थीं उनकी दूसरे रूपमे यहाँ व्याख्या कर उन्हे दूर करनेकी चेष्टा है। परकीया-प्रेम भारतवर्षमे बहुत पुराने समयसे विशेष सम्प्रदायमे धर्मके समान चला था। इसका अस्तित्व ऋग-वेद, और छादोग्य उपनिषदमें मिलता है। बुद्धके समयमे भी यह प्रथा प्रचलित थी और उन्होंने उसकी निन्दा की।[२] बौद्धधर्मके पतन-कालमें संघमें जो अनाचार फैला उसके दर्शन उस धार्मिक साहित्यमें और धर्मके

१—जीवनके तत्त्व। और काव्यके सिद्धान्त : सुधांशु पृ० २१८.

२—मणीन्द्र मोहन बोस, पोस्ट सहजिया कल्ट.

विकृत रूपान्तरमें होते हैं। राधा आभीरोंकी प्रेम देवी हैं। संस्कृत साहित्यमें वर्णन न मिलनेपर भी लोक-साहित्यमे उनके प्रेमका वर्णन है। आभीर जाति भारतमे ईसाकी प्रथम शताब्दीसे पूर्व आयी, अतः उनके प्रेम-विकासमें भारतीय परम्पराके परकीया- प्रेमको अधिक उत्तेजना मिली। दूसरी बात दाम्पत्य जीवनमे प्रेम विकास जो क्षेत्र है, वह अत्यन्त सीमित और सकुचित है। विवाहके बाद प्रेमका विकास क्रम-क्रमसे होता है और अनेक रूपोमे विवशता और त्यागका फल है। त्यागके कारण उस प्रेममें आवेग और उन्माद नही! स्वकीया प्रेम घरके समीपकी बहती धारा है जिसका जल सदा प्राप्त है अतः प्यासकी अधिकताका कहीं कारण नही। मिलनकी उत्कठामे वह आवेश नही हो सकता। परकीया-का प्रेम सरक्षित जल है जिसकी प्राप्ति सम्भव नही अतः मिलनकी उच्छ्व-सित उत्कंठा और प्रबल आग्रह है। प्रेमके बाद विवाह होनेके कारण विवाहके बादका प्रेम यूरोपीय साहित्यमे अधिक व्यापक और विस्तृत नहीं हो सका। यहाँ विवाहके बादका प्रेम आविष्ट नही कर सकता। प्रेमो-च्छ्वासकी निवृत्तिमे अतः परकीया तत्त्वका विकास हुआ। राजे महराजोकी रंग-रेलियोसे परकीया-प्रेमका तत्त्व विकसित नहीं हुआ; उनमें न तो प्रेम था और न उसके लिए उत्कंठा। जहाँ किसीसे मनकी वासनाकी पूर्ति हो जाय, वहाँ प्रेम नहीं होता। परकीया-प्रेमके लिए भी व्यक्तिका एक होना आवश्यक है। गणिकाओको नायिकाकी श्रेणीमे रखना ही अनुचित है। जहाँ पैसेके बल शरीर क्रय किया जा सकता है, वहाँ प्रेमकी स्थिति हो ही नहीं सकती, किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि वह किसीकी एकनिष्ठा प्रेमपात्री बनकर नायिका न बन सके। स्वकीया और परकीयाका भेद विवाहके आधारपर किया गया है। मानव-प्रकृतिके विश्लेषणसे प्रेम-तत्त्व अधिक गूढ पाया जाता है। अधिक रूपोमें भारतवर्षमें प्रेमपर नैतिकताका

बंधन लगा रहा है! स्वकीया प्रेम इसी नैतिकताके आग्रहका फल है। समाजकी प्रारम्भिक अवस्थामे प्रेम सामाजिक रूपमे स्वतंत्र था, बाधा-बन्धनहीन और उन्मुक्त, अतः प्राकृतिक। क्रमशः नैतिकताके कारण इस भावनामे अन्तर आता गया और स्वकीया-प्रेममें बॉधनेपर आवेशहीन। केवल विवाहके आधारपर स्वकीया या परकीया मानना इसी नैतिक दृष्टि-कोणका फल है। प्रेम इस बाधा-बन्धनको नहीं मानता कारण इस अवस्थामें वृत्तियॉ इतनी प्रबल रूपमें आक्रान्त हो जाती हैं कि कोई दूसरी चेतना बची नही रह जाती। जहॉ संकोच, लाज, भय है वहॉ इस चेतना-का सम्यक् रूपसे आक्रान्त होना सिद्ध नही होता। बुद्धि, विवेक इसी भय और चिन्ताके नाम हैं। प्रेम-तत्त्वकी गम्भीरतामे ज्ञान बह जाता है। सूरकी गोपियॉ इसी प्रेमकी अजस्र प्रवाहिनी स्रोतमे आकठ निमग्न हैं। भारतेन्दुकी राधा और गोपियॉ इसी प्रकारकी हैं। मैथिलीशरण गुप्तकी यशोधरा, उर्मिला स्वकीया है और विरहके कारण उच्छ्वसित। यशोधरा-का उच्छ्वास संयत है, उर्मिला तो ऊर्म्मि है किन्तु प्रेमके स्थायित्वमे किसी-को सन्देह नही। सौन्दर्यके सूक्ष्म आधारके कारण छायावादी कवियोके प्रेम-स्वरूपमे थोड़ा अन्तर आया। इनके यहॉ आकार प्रेम भी सूक्ष्म और आग्रह आकुल होकर भी अनंग है। प्रेमके शरीर-धर्मका अभाव इन कवियोंमे मिलता है। मोहको प्रेमसे नीचा माननेका कारण उसका अपे-क्षाकृत अस्थायित्व ही है, चाहे उसे किसी प्रकार कहा जाय। प्रेमका अति उज्ज्वल, और सूक्ष्म स्वरूप स्वीकार करनेके कारण यह प्रेम भी छायात्मक हो गया। रहस्यवादमें प्रेमका सम्बन्ध और भी सूक्ष्म हो जाता है कारण प्रियतम अव्यक्त और अशरीरी रहता है किन्तु शरीर तत्वका आरोप प्रकारान्तरसे उसपर हो जाता है। प्रियतमका अव्यक्त होना, जहॉं बन्धन उत्पन्न करता है, कारण स्वरूपकी अनुभूति सम्भव नहीं, वहॉं उसे

नवीन उन्मेष भी देता है कारण उसके स्वरूपके प्रत्यक्षीकरणके अभावसे नवीन आवेश कवि या साधकमें पाया जाता है। पन्तका प्रेम अधिक गम्भीर नही जान पड़ता। आकर्षण अधिक है किन्तु उस आकर्षणमें ही पन्तकी प्रकृति रमती नही और दूसरा आकर्षण उन्हे अपनी ओर खींच लेता है। निरालाका प्रेम बादल रागकी भाँति आवेगपूर्ण और सूक्ष्म है। पन्तका प्रेम जहाँ कोमल मक्खनसा है, वहाँ निरालाका सतेज और मुक्त। पन्तका प्रेम बालिकाका सहज आकर्षण है, खिलौनाके प्रेमसे अधिक, व्याकुलता और व्यापकता लिए हुए किन्तु निरालाका पुरुष-प्रेम है, सर्वग्राही और सकोच, भयसे उन्मुक्त। महादेवीका प्रेम इस लोकका नहीं, वह उस ऊँचे स्तरपर है कि ऐन्द्रीयता स्पर्श कर नही पाती। उसका आभास ही मात्र मिलता है। यह स्नेह-उज्ज्वल, तरल-कोमल, हास-अश्रुमय प्रेम अनिर्वचनीय है। यह प्रेम यहाँ साकार होता है—

वेदनामें जन्म करुणामे मिला आवास
अश्रु चुनता दिवस इसका अश्रु गिनती रात

ऐसी अवस्थामे जीवन प्रेममय है, और प्रेम जीवनमय। दोनो एकाकार हो गये हैं और जीवनके साथ 'सारी सृष्टिका कथा करने चली अभिसाँर'। वह उस प्रियतमकी अनुभूति तो है किन्तु 'कौन तुम मेरे हृदयमे' का प्रश्न भी है। इसमे आकर प्रेमको छायात्मकता प्राप्त हुई किन्तु उस स्थायित्वकी माँग सदा रही। दिनकर इसी स्थायित्व और विकासकी ओर संकेत करते हैं—

तृणवत धधक धधक मत जल सखि।
ओदी आँच धुनि विरहिनकी
नहीं लपटकी चहल पहल सखि,

किन्तु प्रेमके उत्कट आवेशका परिचय अंचलके गीतोंमे है ; उसमें उद्दाम प्रभाव है, तीव्रता है, आवेग है। भगवतीचरण [illegible] जहाँ प्रेम-को उसके वास्तविक रूपमे देखते है, वहाँ उसे क्षणभंगुर किन्तु मोहक, उत्तेजक और प्राणोन्माद-दायक मानते है। प्रेम प्रेमका काल भी हो सकता है, प्रेम सदा वरदान नही, अभिशाप भी है। प्रेम वह आवेश है, वह उत्तेजना है जिसमे ज्ञान और धैर्य बह जाते हैं। इतनी मुग्धता और रोमाचकारिता है, इस प्रेममे। सूरकी गोपियाँ मन यदि हाथमें रहता 'निर्गुण'को ले लेतीं किन्तु यहाँ इसका भी समय नहीं, ज्ञानके इस अप्रभावका ज्ञान रह जाता है अतः तल्लीनता नहीं रह जाती—

"आज ढीले पड़ रहे हैं
ज्ञानके विकराल बन्धन।

जीवन अस्थायी है, क्षणिक है; यह प्रेम, यह मिलन अस्थायी हैं। पलभरके इस जीवनके बाद, अनन्त सूनापन है, निस्सीम प्यास है, अतः जी भर हँस-हँसा लेना ही अपेक्षित है—

पलभर जीवन, सूनापन
पलभर तो हँस बोल प्रिये

और

भरे हुए सूनेपनके तम
मे विद्युतकी रेखा-सी
असफलताके पटपर अंकित
तुम आशाकी लेखा-सी।

प्रेम स्निग्ध है, आह्लाददायी है, जिसकी छायामें जीवनका आतप मिट जाता है। रसकी धारा है, जो उच्छ्वासों के निर्मित संसारमें चन्द्रिम

ज्योत्स्ना है, पुलक है, सिहरन है, उन्माद है। प्रेम जीवनकी मनोरम कल्पना है, जीवनकी स्वर्णिम घटना है, जीवनमे बिजली सी इसकी कौंध है जो विलीन हो जाती है अतः कल भविष्यकी चिन्ता व्यर्थ है। इन क्षणो-का ही जीवनमे महत्त्व है। अतः कवि कहता है—

'सुखकी राकाका केवल
है एक मनोरम काल

किन्तु प्रेम, इसके साथ ही, जीवनका एकान्त वरदान नहीं है, महादेवीके शब्दोमे 'शापमय वरदान है। इस ससारमे कही प्रेम नहीं, व्यर्थ ही लोग आत्मतुष्टिके लिए प्रेम प्रेमकी रट लगाते हैं।

प्रेम कहाँ है ? घृणा उसीमें
करती है विश्राम

× × ×

तथा कोमल छबिका मोल। वासनाके उपहारोंमें
और प्रेमका मोल रत्नके—हीरोंके हारोंमें—
करता है संसार, यही है उसकी रीति निराली
अंधकारसे तारोंका विक्रय करती निशि काली
यह न स्थान है जहाँ प्रेमका—
मूल्य लगाया जावे।—रामकुमार वर्मा

प्रेम क्या है कोई बता दे जरा, यह वैसी अनुभूति है जो चित्रोमे अँटती नहीं—

हम तौरे इश्कसे तो वाकिफ नहीं हैं लेकिन,
सीनेमे जैसे कोई दिलको मला करे है।—मीर

कभी अधरपर हास—नेत्रमें,
कभी अश्रुकी धार है।
हास रुदनके इस मिलापका,
नाम कहो क्या प्यार है!—डा० वर्मा

प्रेमकी इस असफलताकी अनुभूति 'प्रसाद' में इस प्रकार प्रकट होती है —

पागल रे! वह मिलता है कब
उसको तो देते ही हैं सब।
आँसूके कन कनसे गिनकर
यह विश्व लिए है ऋण उधार,
तू क्यों फिर उठता है पुकार?—
मुझको न मिला रे कभी प्यार।

प्यार कभी मिलता नहीं, वह तो केवल देनेकी वस्तु है, एकांगी है, फिर प्रतिदानकी आशा कैसी? इसका भाव कैसा?

इस प्रकार प्रेम गीतोंकी आत्मा है, प्रेम जीवनकी प्रबल अनुभूति है, अतः जीवनपर उसका व्यापक, विस्तृत और गम्भीर प्रभाव है। प्रेम-का अतः ग्राम-गीतोंमें कम महत्त्वपूर्ण स्थान नहीं, बल्कि वे गीत अधिकांश अवस्थाओंमें प्रेमके निश्छल भावसे ओत-प्रोत हैं उसमें गम्भी-रता, तीव्रता, आवेश है। प्रेममें जोगिन होनेका एक लोक-गीत यहाँ है—

जोगियाके लालि-लालि आँखिन हे जइसे चम्पाके फूल
एजी वइसने जे हमरो चुन्दरियान हे हुनू तालमतूल

जोगियाके गोरमें खड़ऊआ शोभै हे हाथ शोभै करतार
एजी मुखवामें मोहिनि बमुलियान हे मोहे जग संसार
जोगियाके शोभैन मृगछालन हे हमरो पट चीर
एजी दुनुकेसिअएबइन गुदरिआन हे होयबइ संगे रे फकीर।

करुण रस

गीत-काव्यकी आधार-शिलाके रूपमे करुण-रस स्थित है। जीवनके विषाद और उसके व्यापक प्रभावकी चर्चा प्रसगवश पीछेकी पंक्तियोंमें हुई है। प्रेम और विषादका चिर सम्बन्ध है। जिसने प्रेम किया शायद उसे रोना ही पड़ेगा, ऐसा कवियोने नियम-सा बना रखा है। ऑसुओका अर्घ्य प्रेम-देवतापर चढाना आवश्यक है वेदनाका अतः गीतोमे प्रमुख स्थान है। वैसा और कारणोसे भी है, जीवनकी विषमता, असफलता अत्याचार, क्रूरता और आर्थिक असन्तोषके कारण भी है। वेदनाका यह व्यापक रूप गीतोके लिए अधिक उपयुक्त नहीं होता और न इनकी व्याख्याके लिए उनमे स्थान है। वेदनाको अपनेसे भिन्न कर देखनेका प्रयास करनेपर उसमे तीव्रता नही रहती किन्तु उसका चित्र स्पष्ट अवश्य रहता है। सामाजिक विषमताके कारण उत्पन्न वेदनाका चित्र ग्राम-गीतोमे मिलता है।

हे भोला बाबा केहन कयलौं दीन
खेती पथारी भोला से हो लेला छीन
भाई सहोदर से हो भे गेल भीन
घर में न खरची बाहर न मिले रीन
गॉव के मालिक न पड़ै दुइय नीन
एके गो लोटा छलइ भाइ भेलइ तीन

पनिया पिवइत काल होइय छिना छीन
एके गो बैल बच गेल महाजन लेलक रीन
कर कुटुम्ब सब भेलइ परमीन

[ओ भोले शकर, तुमने मेरे दिन कितने दुखद बनाये ! जो थोड़ी बहुत खेतीबारी थी, वह भी तुमने छीन ली। और तो और सगे भाइयोंने बॅटवारा कर लिया। घरमे खर्च नही है बाहर ऋण नहीं मिल्ता। गॉवका जमींदार रातमे चैनकी नींद नहीं सोने देता। एक लोटा है, और भाई तीन हैं। अतः पानी पीनेके वक्त छीना झपटी होती है। एक बैल बच गया था, जिसको महाजनने ऋणमें हड़प लिया। हाय हित-मित्र और सगे-सम्बन्धी सभी पराये हो गये।]

वेदनाका किन्तु प्रकृत रूप गीति-काव्य अथवा लोक-गीतमे प्रेम-जनित विरहके रूपमे प्रकट हुआ है। ऑसुओके मर्मको समझनेके लिए ऑखोंको ही नहीं बल्कि भावनाको देखना पड़ेगा। वेदना व्यथाकी जननी है, पीड़ाका आवास है किन्तु 'प्रेमकी पीर'के प्रति कवि विमुख नही होता। वेदना जलन उत्पन्न करती है —

अरी वेदने ! सिखलाया है
किसने राग विहाग ?
जला रही आकाश सभी, ले
पूर्व दिशाकी आग।

क्यों करने आयी है मुझसे, चिर संचित अनुराग ?
ए अनन्त यौवनवाली ! तू बार बार मत जाग !

—रामकुमार वर्मा

इसी वेदनाके लिए 'मीरा' ने कहा था—

हे री मैं तो प्रेम दिवानी, मेरा दरद न जाणे कोय

वेदनाको 'द्विज' 'अमर शान्तिकी दायिनी' और 'सकल सुखोका सार' मानते है। ऑसुओके लिए हमे अधिक दूर नही जाना पड़ेगा। आजका साहित्य इन ऑसुओकी धारासे परिपूर्ण है। इसमें कितनोंके ऑसू नकली हैं, कहना सम्भव नही। अनेक रोनेके लिए, हमे दिखानेके लिए कहना चाहिये, रोते हैं। वेदना मनोवृत्तियोका संस्कार और परिष्कार करती है। वेदना वैयक्तिक जीवनतक सीमित नही रहती बल्कि सम्पूर्ण मानव-जीवनके प्रति उन्मुख हो जाती है, वैसी वेदना विश्व-हित, लोक-कल्याण, मानव-प्रेममे परिवर्तित हो जाती है केवल व्यक्ति विशेषका जीवन आविल नहीं करती। विश्व-वेदनाके गीतोका अभाव भी नही। रहस्यात्मक आग्रह ले कवि केवल मानवीय पीडाओका गायक नहीं रहता, बल्कि कण-कण अणु-परमाणुकी वेदना उसकी वाणीमे मुखर हो जाती है। महादेवीके गीतोमें इसका पूर्ण सकेत मिलता है। वह वेदना मिलनका सोपान बन कर आती है, वह करुण मधुर है, कोमल सुकुमार है जिसमे जीवनका कम्पन और भावनाका स्पन्दन है।

गीति-काव्य और कल्पना

गीतिकाव्यके अनुभूति-प्रधान रचना होनेके कारण कल्पनाकी अपेक्षा इसमें रहती है। लोगोमें भ्रम-सा फैल गया है कि कल्पना स्वतन्त्र है, उसका अनुभूतिसे कोई सम्बन्ध नही। इस विषयपर यहाँ विस्तृत विचार करनेका अवसर नही, इसपर हमने 'आधुनिक हिन्दी कविता' मे विस्तृत रूपसे विचार किया है यहाँ केवल इतना ही कहना अलम् होगा

कि अनुभूतिके आधारपर ही कल्पनाका प्रासाद खडा होता है। कल्पनाके द्वारा अनुभूत अनुभूतिको जन्म नही दिया जा सकता, कल्पना अनुभूतिको नया स्वरूप देती है, उसे उत्तेजना और प्रेरणा देती है किन्तु किसी भी अवस्थामे उसे उत्पन्न नही कर सकती। 'फैंसी' की अपेक्षाकृत स्वतन्त्रता स्वीकार करनेका इतना ही अर्थ है कि कल्पनापर नियंत्रण सम्भव है और 'फैंसी' इस प्रकारके बौद्धिक नियंत्रणकी सम्भावना अधिक रूपमे स्वीकृत नही करती। गीतिकार अनुभूतिके अभावमे जहाँ कल्पनाद्वारा आवेश उत्पन्न करनेका प्रयास करता है, वहाँ वह अलंकारत्व और नक्काशीका शिकार बन जाता है। गीति-आवेशके लिए कल्पना उतनी ही अपेक्षित है जहाँ-तक अनुभूतिको आवश्यक प्रसार मिल सके। कल्पना अनुभूतिको आकार और स्वरूप देती है किन्तु कल्पनाके आधारके कारण चित्रोमे अधिक सूक्ष्मताके प्रवेशका भी भय है। साधर्म्य और सारूप्यकी सीमासे बाहर समान-प्रभावके क्षेत्रमे प्रवेश करनेवाली कल्पना ऐसे विधान उपस्थित करती है जो मानस-गोचर नहीं रहते। पन्तकी कल्पना उदात्त और स्वरूप विधायिनी है महादेवीकी कल्पना विस्तार देती है, व्यापकता देती है किन्तु स्थानीयता नही। दिनकरकी कल्पना 'व्योम कुञ्जो' से मुक्त हो 'वैशाली और नालन्दा' के ढूहोपर विचरती है। कल्पना जहाँ प्रियको प्रकृतिमे फैली देखती है, प्रियतमको अणु-परमाणुमे परिव्याप्त देखती है, जहाँ सम्पूर्ण सृष्टिमे प्रियतमका सौन्दर्य-विलास पाती है वहाँ प्रियामे ही सब कुछ देख पाती है। बल्कि सम्पूर्ण विश्वसे भी अधिक अपूर्व और अमूल्य बन जाती है। चन्द्रिम मुसकान, पिकका मतवालापन, निर्झरोका मुक्त संगीत, ऊषाके कपोलोका अरुण राग, मेघोकी करुणा सब कुछ यहाँ प्राप्त है। कल्पना उस ज्योत्स्नाकी भाँति है जो सबको मधुरता और रहस्यात्मकता देती है।

जीवन

जीवन अस्तित्वका समानार्थक शब्द नही। साहित्यमे समानार्थक शब्द होते ही नही; जिन्हे लोग सामानार्थी शब्द कहकर पुकारते हैं उनके अर्थ और भावमें पर्याप्त अन्तर रहता है। जड वस्तुओमें अनस्तित्व नही, उनमे जीवनका अभाव अवश्य रहता है। जीवन और जीवनाभासमे कम अन्तर नही। 'आहार निद्रा भय मैथुनञ्च' के आधारपर पशु और नरका भेद नही किया जा सकता बल्कि इन प्राथमिक आवश्यकताओसे ऊपर उठनेमे ही मनुष्यत्वका विकास है। जीवनका आधार अस्तित्व है और अस्तित्वका आधार जीवनकी प्राथमिक आवश्यकताएँ; अतः इनकी जीवनमें अपेक्षा है और मानव-चेतना इनके सहज अन्वेषणमे लगी रही और आजतक लगी है। जीवन-संघर्षमे अति आक्रान्त व्यक्तिके जीवनमे कला-संस्कृतिका विकास नहीं हो सकता। जिस समय मानव-चेतना पूर्णतया प्रकृति सघर्षमे लगी रही उस समय कही जानेवाली ललित कलाका जन्म नही हुआ। कलाका उपयोगी आधार भी है किन्तु इस उपयोगिताका आधार भी मानवीय विचार और दृष्टिकोण है। इस प्रकार मनुष्य अपनी अनुभूतियों, आकाक्षाओ और विचारोमे जीवित रहता है। अतः गीति-काव्यमे जीवन-दर्शनका उपयुक्त और उच्च स्थान है। यथार्थवादके नामपर जीवनपर किये गये अत्याचारका किन्तु इसमे स्थान नही हो सकता। जीवनका हर्ष-उल्लास, अश्रु-रुदन ही तो गीत है।

गीति काव्यमें चित्र

सगीत स्वर और नादका आधार ग्रहण कर वृत्ति और रागात्मक अनुभूतिकी अभिव्यञ्जना करता है। चित्र-कलामे रंग, तूलिका और पटका आधार स्वीकार करना पड़ता है। स्थूल आधार स्वीकार करनेपर भी

अनुभूतिके आकारके लिए भावनाका रूप-विकास अपेक्षित है। श्रेष्ठ गीत-काव्योंमें इन अंगोका समुचित विकास देखा जाता है। किसी-किसी गीतमे कविका लक्ष्य केवल चित्र उपस्थित करना रहता है, वह अनुभूतिसे अधिक प्रेरक वस्तुओके चित्र पूर्ण बारीकीके साथ उतारता है। ऐसी अवस्थामे वह अलंकार-योजनाकी अधिक शरण लेता है क्योंकि उसके प्रभावका मूल भावानुभूति और उसकी अभिव्यक्ति न होकर मूर्त्त-विधानमे है ऐसे चित्रोमे आत्मीयता अथच सवेदनशीलता नहीं होती। यह भी सम्भव है कि इन चित्रोको कल्पनाके आधारपर वह इतना अधिक रग दे कि चित्रोमे वास्तविकता (व्यापक अर्थमे) न रह जाय। इन चित्रोके कारण पाठक चमत्कृत हो सकता है। सम्भव है, उसे कालि-दासकी कल्पना-शक्तिका भ्रम उसमे उत्पन्न हो जाय किन्तु उन चित्रोसे आत्मीयताका सम्बन्ध स्थापित नही हो सकता, उनके साथ पाठककी सहानु-भूति नहीं जुड़ सकती जो साहित्यकी आत्मा है। ऐसे चित्रोमे सम्भव है कवि रागात्मक आवेश और अनुभूतिके स्पर्श दे सके जिसके कारण पाठककी रागात्मिका वृत्ति जग पड़े अथवा विचारोकी श्रृंखला मानसिक क्रियाके साथ सलग्न हो सके। मूर्त्त-विधानका अतः कार्य केवल रागात्मक आवेश अथवा चिन्तन-शक्तिको गति देनेमे है। निरालाके कुछ गीतोंमे चित्रोका मोह कुछ अधिक है और महादेवीमे किसी विचार-पर आनेकी है। रागात्मक आवेशके प्रति जो जागरूकता बच्चनमें है, वह कम लोगोमे है। यह कहना अनुचित होगा कि बच्चनमे विचारोका, अथवा बुद्धि-तत्त्वका अभाव है; मै केवल इतना ही कहना चाहता हूँ कि उनके विचार बाहरसे लादे गये अथवा केवल विचार प्रकट करनेके लिए नहीं हैं। महादेवीने विचारोको कल्पना और अनुभूतिकी प्रेरणा दी है, वहाँ बच्चनकी अनूभूति ही विचार बनकर सामने उपस्थित होनेकी

अभिलाषा रखती है। पन्त चित्रोको कल्पनाका ऐसा आवरण देना चाहते है, कि वह कल्पना ही प्रमुख हो जाती है, अनुभूतिसे पाठकका ध्यान हट जाता है। चित्र कुछ इतने अधिक लम्बे हो जाते हैं कि भावनातक पहुँचते-पहुँचते उनसे ध्यान हट जाता है और उस भावात्मक चित्रके साथ रूप-विधानका सामञ्जस्य नही हो पाता। निरालाने शुद्ध चित्रोके अङ्कनके लिए गीतोकी रचना नही की है। जहाँ केवल चित्र ही है, वहाँ भी अनुभूतिका आभास अवश्य है। वेदान्त-दर्शनसे प्रभावित गीतोमे भी अनुभूति और उसके शोधका आभास प्राप्त है, विचार ही अनुभूति हैं। अनुभूति और भावनाके इस विकासके कारण स्वरूप-विधान, आकृति और विस्तारमे अन्तर आ गया है। निरालाके गीतोमे प्रेरणाका साधारण चित्र उपस्थित होता है और कवि भावनोन्मुख हो जाता है अतः निरालाके गीत छोटे और कम विस्तारवाले है। पन्तमे चित्रोके प्रत्यक्षीकरणके प्रति मोह है अतः चित्रमत्ताके आग्रहके कारण गीत लम्बे हो जाते है, वैसी अवस्थामे अनुभूतिकी अन्वितिपर आघात पहुँचता है। महादेवीके विचारोंको ही कल्पना और अनुभूतिका सहाय्य प्राप्त है अतः प्रेरक विचारोके वाहक है और उनके गीतोंकी पहली पंक्तियाँ बेजोड़ हैं, कारण भावना, विचार और कल्पनाकी त्रिवेणी उनमे है। अस्पष्टताका कारण विचारोंको चित्रमत्ता देनेके कारण है जो स्वरूप-विधानकी सीमाओमे बँध नही पाते। बच्चनके गीतोमे इन उपकरणोका समन्वय उचित रूपसे हुआ है। विरोधका दर्शन भी उचित पृष्ठभूमिके रूपमे हुआ है। निरालाकी लयात्मक विविधता एवं भावनाओके रूप-विकासकी विभिन्नता बच्चनमें नही। रामकुमार वर्माके गीत प्रेरणा और अनुभूतिके सौन्दर्यात्मक चित्र उपस्थित करते हैं। सौन्दर्यके आग्रहके कारण अनुभूति केवल उसीके लिए संवेदनशील हो उठती है जिसमे सौन्दर्यके प्रत्यक्षीकरणकी क्षमता

है। चित्रमत्ताका अधिक आग्रह न होनेके कारण गीत नपे-तुले हैं। भगवतीचरण वर्माके गीत अनुभूति-प्रधान है किन्तु अनुभूतिके क्षणोको विस्तार देनेका मोह उनमें कम नही इसलिए एक ही प्रकारके भाव लगातार आज बढते चले गये हैं। लयात्मक आवेश और शब्दोके सुघड प्रयोगके कारण गीतोमे मधुरता अधिक है ठीक जैसे बच्चनके गीतोमे। विस्तारका मोह दिनकरमे भी कम नही इसीलिए, चित्रमत्ता और दार्शनिकताका विस्तार हो जाता है। 'रासकी मुरली' में दार्शनिकताका आरोप हो गया है, जो स्वाभाविक विकासका फल नहीं जान पड़ता। 'दाहकी कोयल' मे चित्रमत्ताका आवेश है। प्रसादकी कवितामे गीत और सगीतका परिणय-सा हो गया है। आकार और विस्तारकी दृष्टिसे सूर, विद्यापतिके गीत अधिक उपयुक्त है। चित्रोका मोह इनमें कम नही; विद्यापतिमें कुछ अधिक है किन्तु अन्तिम अवस्थामे रागात्मक प्रभाव और भावात्मकताका पूर्ण विकास हो जाता है। तुलसीके गीत विचार-प्रधान होनेपर भी विस्तार और आकृतिके रूपमे सफल हैं। अपने दृष्टि-कोणके कारण तुलसीके गीतोमे स्वच्छन्द भावुकताका अधिक प्रसार नहीं हो सका। सर्वत्र संयमका निर्वाह है। मैथिलीशरणके गीत उर्मिला और यशोधराके गीत है। वियोग—वर्णनकी ऊहात्मक पद्धतिका अवलम्ब यत्र-तत्र किया गया है किन्तु प्रेरक उत्तेजना और अनुभूतिके भावात्मक रूपकी ओर गुप्तजी अधिक जागरूक रहे है। मुझे लगता है, यह चेतनता गुप्तजीको प्रवाह न दे सकी और उनके गीतोमे वह व्यापकता नही आ सकी। साकेतके नवम सर्गके कुछ ही गीत अतः पूर्णतः सफल हो सके यद्यपि रूप-विधान, आकृति और विस्तारमे वे पूर्ण सफल है। गीति-काव्यमे न तो इतना विस्तार होना चाहिये कि चित्रोके आग्रहके कारण भावना और अनुभूति दब जायँ और न इतना सकोच ही होना चाहिए कि

प्रेरकके चित्र उपस्थित ही न किये जायँ। दोनों अवस्थाएँ गीति काव्यके व्यापक प्रभावके लिए अहितकर सिद्ध होती हैं। पन्तमे अगर विस्तारके स्थानपर सकोच होता उनके गीत अधिक समीपकी वस्तु होते क्योंकि नाद-सौन्दर्य, ध्वनि चमत्कार जैसा उनमे है, वैसा किसीमे नहीं, अजस्र प्रवाहित सगीतकी धारामे अविरोध बहनेवाली लयात्मक अनुभूति उनमे है। महादेवीमे स्निग्ध, तरल किन्तु मन्द्र प्रवाह है। निरालाके गीतमे निर्बाध गतिसे झरनेवाले झरनेका नादपूर्ण-संगीत है, जिसमे मृदङ्गकी ध्वनि है, वीणाकी मृदु मधुर झङ्कार नही।

अनुभूतिके सम्बन्धमे विचार करते समय हमने देखा है कि अनुभूति अपनी गम्भीरतम अवस्थामे थोड़ी देरतक ही टिक सकती है। प्रेरणाके कारण — चाहे वह अन्तः प्रेरणा हो अथवा बाह्य—वह जगती है। कल्पना-के कारण उसका प्रभाव व्यापक होता है और उसे प्रसार एव विस्तार मिलता है। क्रमशः यह अनुभूति भावनामे परिवर्तित हो जाती है। आकार और विस्तारपर इस क्रमके कारण नियत्रण हो जाता है; यदि ऐसा नियंत्रण कवि नही कर सकता उसे सफलताकी आशा कम रखनी चाहिए। दार्शनिकताके अधिक मोहके कारण प्रेरणा बौद्धिक रहती है। कविका चातुर्य वहाँ बौद्धिकताको अनुभूतगम्य रूपमे रखनेमे है। प्रभातके गीतोंकी दार्शनिकतामे बौद्धिकताका इतना प्रबल आग्रह हो जाता है कि अनुभूति और भावनाके प्रसारके लिए पूर्ण अवकाश नही मिलता। आजके कविकी कठिनाईका एक कारण है। दर्शन अपनी प्रणाली और पद्धतिपर विकसित होते हुए एक निश्चित स्तरपर पहुँच गया है। जहाँ वह उन्हे गीतोका विषय बनाना चाहता है, उसे उसकी व्याख्यात्मक प्रणालीसे विछिन्न करके देखना पड़ता है। फलतः या तो उसे लम्बे गीतोंमे उसकी व्याख्या करनी पडती है अथवा उसे उन्हीं दार्शनिक

सकेतोसे काम चलाना पडता है जिसके कारण बुद्धि-चमत्कार अथवा ज्ञानकी ओर ध्यान अवश्य जाता है, लेकिन रागात्मक आवेश प्राप्त नहीं होता। आकारकी प्रवृति और विस्तारका सामञ्जस्य रहनेपर भी आन्तरिक गुणोके अभावमे उन्हे गीति-काव्य कहना सम्भव नही हो पाता।

विस्तारकी परिमितिके कारण अलकारोंके प्रयोग और शब्द चयनपर गहरा प्रभाव पडता है। गीति-काव्यमे अलकारोके प्रयोगकी विवेचना की गयी है। अलंकारोका प्रयोग सूर, तुलसी, विद्यापति आदि कविताओमे जितना है, उससे कम आधुनिक कवियोकी रचनाओमे नही यद्यपि पूर्ण निर्वाह अथवा स्पष्ट प्रयोग कम देखे जाते है। अलंकारका प्रयोग जहाँ भावनाको रूप देता है वहाँ उसकी उपयोगिता बढ़ जाती है किन्तु जहाँ अनुभूतिके अभावको छिपानेका प्रयास होता है वहाँ गीति-काव्यका प्रभाव नष्ट हो जाता है। इस प्रकार गीति-काव्यमे केवल नाद-सौन्दर्य ही नही, अर्थके उपयुक्त शब्दके प्रयोगका महत्त्व है। विशिष्ट वृत्ति और अर्थकी अभिव्यक्तिमे एक ही प्रकारके शब्द-उपयुक्त नही हो सकते। वृत्ति (उपनागरिका, कोमला, और परुषा) के अनुसार शब्द-चयनका आधार यही था किन्तु नियम और उसके पालनमे वह स्वाभाविकता नही आ सकती जो सहज स्वाभाविक रूपमे आती है। 'मूड' के अनुसार शब्द स्वतः चले आते हैं और कविको आयास नही करना पडता। निरालामे शब्दोकी परुष-प्रवृति है यद्यपि कोमल भावनाके प्रसारोपयोगी शब्द, ध्वनि और-चमत्कारका अभाव उनमे नही अतः वृत्ति-प्रसारके उपयुक्त उनके शब्द है। पन्तकी कोमल-वृत्ति है, विरह, प्रेमकी कातरता और मोहके उपयुक्त उनकी पदावली है। 'मूड' के अनुसार शब्द-प्रकृतिका परिवर्तन 'परिवर्तन' कवितामे हुआ है। कल्पना बीचमे आकर पन्तके 'मूड' के उपयोगी शब्दोकी प्रकृत्ति और प्रवृतिको परिवर्तित कर देती है। 'बच्चन'में

शब्दोका चयन उनकी प्रवृत्ति और प्रकृतिके अनुकूल है ; शब्द छोटे-छोटे किन्तु, भावाभिव्यञ्जक है। उर्दूके छन्दो और वेदनाकी विवृत्तिकी प्रवृत्तिके कारण शब्द-चमत्कार उनमे विशेष है। शब्दोका यह चमत्कारपूर्ण प्रयोग भगवतीचरण वर्मामे सफल है। दिनकरकी शब्द-प्रकृति सर्वत्र गीतके उपर्युक्त नहीं दीखती अतः श्रमपूर्वक उन्हे समपर लानेकी चेष्टा लक्षित होती है। महादेवीमे शब्द और लय एकाकार हो गये हैं; निरालाके कुछ छन्दोमे ऐसा नही हो सका है। शब्दोके प्रयोगमे एक विषयकी ओर ध्यान जाता है। हिन्दी खिचडी भाषा है, इसका अर्थ यह है कि इसमे हिन्दी, संस्कृत, फारसी, अरबी, उर्दू, अंग्रेजी शब्दोका प्रयोग होता है। अंग्रेजी शब्दोका प्रयोग हास्य रसात्मक कविताओ एवं गद्यको छोड अन्यत्र कही नही हुआ है। संस्कृत शब्द तत्सम और तद्भव दोनो रूपोमे व्यवहृत होते है। शब्दोके उपयुक्त प्रयोगका अर्थ है कि वे मनचाहा प्रभाव उत्पन्न कर सकें। गीति-काव्यके लयात्मक आग्रहके कारण भाषा-भाण्डारको भी संकोच प्राप्त हो जाता है; केवल उन्ही शब्दोका प्रयोग होना चाहिए जो 'मूड' के उपयुक्त हो अतः आप्टेके कोषसे ढूँढकर निकाले गये शब्द कविको सन्तोष भले दे दे अपने अनुकूल वृत्ति पाठकमे जाग्रत नहीं कर सकते, उसी तरह फारसी-अरबीके अप्रचलित और अनचीन्हे शब्द पाठक और कविमे व्यवधान उपस्थित करेगे। इस प्रकारके शब्द एक वर्गके पाठकको सन्तुष्ठ कर सकेंगे किन्तु इन दोनोका संग्रह किसी वर्गको नहीं अतः संस्कृत और अरबी फारसीके कठिन और अप्रचलित शब्दोका प्रयोग गीति-काव्यकी धाराके विरुद्ध है।

अन्तः प्रकृति और शब्द-प्रवृत्तिके कुछ उदाहरण नीचे उपस्थित किये जाते हैं—

मन्द मलयभर अङ्ग-गंध मृदु
बादल अलकावलि कुञ्चित ऋजु,
तारक हार, चन्द्रमुख, तधुऋतु
सुकृत पुञ्ज अशना। —निराला

... ..

विदा हो गयी साँझ, विनत मुखपर झीना आँचल धर
मेरे एकाकी आँगनमें मौन मधुर स्मृतियाँ भर! —पन्त

... ...

रञ्जित कर दे यह शिथिल चरण ले नव अशोकका अरुण राग,
मेरे मण्डनको आज मधुर ला रजनीगंधाका पराग —महादेवी

दे रही कितनी दिलासा,
आ झरोखेसे जरा-सा
चाँदनी पिछले पहरकी पासमें जो सो गयी है।

... ...

रात आधी हो गयी है। —बच्चन

बुझती नहीं जलन अन्तरकी बरसें दृग, बरसें जलधर
मैंने भी क्या हाय, हृदयमें अंगारे पाले सजनी। —दिनकर

... ...

है सिसक रही युग-युगकी
प्यासी-सी यह अभिलाषा,

हँसती रहती है उरमें
मेरी चिर संचित आशा।

—भगवतीचरण वर्मा

विशेषणोके प्रयोगमे कविको सदा सावधान रहनेकी आवश्यकता है। विशेषण ही भावको साकार करते हैं कारण विशेषणोके कारण अर्थकी व्याप्तिका सकोच होता है। जिस भावनाका जितना अधिक सीमा-विस्तार है, उसे मूर्त्त रूप देनेमे उतनी ही अधिक सावधानीकी अपेक्षा है। हिन्दीके अनेक तथा-कथित कवियोमे विशेषणोका दुरुपयोग हो जाता है। महादेवी और पन्तमे भी 'चिर' और 'नव' का अधिक मोह देखा जाता है। वास्तवमे यह मोह छन्द बन्धनके कारण भी है, जहाँ मात्रा-पूर्त्तिके लिए पूरक शब्दोकी आवश्यकता पड जाती है। तुकान्तकी रक्षाके लिए मैथिलीशरण गुप्तने कुछ विचित्र शब्दोका प्रयोग कर दिया है 'राई रत्ती'की तुकान्त-रक्षाके लिए 'तत्ती' का प्रयोग हुआ है। निरालाने अलकावलिको 'कुञ्चित ऋजु' के कारण स्वरूप दिया है। 'विनत' के द्वारा मुख शोभा, सुषमा, मलिनता शोक और भारकी प्रतिछवि बन गया है। ऑचलके साथ 'झीना' का प्रयोग नवीन कलात्मक आग्रह उत्पन्न करता है। यदि ऑचल झीना नहीं होता विनत मुखका भाव स्पष्ट नही होता कारण कुछ देखनेकी सुविधा नही रहती। झीने ऑचलके कारण उस औत्सुक्यका जन्म होता है जिसके कारण सौन्दर्य नवीन रूप ग्रहण कर लेता है। 'एकाकी ऑगन' ऑगनके अकेलेपनका भाव व्यक्त करता है यद्यपि कवि उस ऑगनमे अपने एकाकी होनेका भाव ग्रहण कराना चाहता है। ऑगनका प्रयोग यहाँ हृदयके अर्थमें हुआ है अतः इस 'एकाकी' का अर्थ सूना लेना पडेगा। हृदयका अर्थ भी रक्त सचालन क्रियाका संचालक अङ्ग-विशेष नहीं, बल्कि

रागात्मक वृत्ति है अतः 'एकाकी' शब्द 'शून्य' से 'सुप्त' अर्थका द्योतक होगा। 'मौन मधुर स्मृतियॉ' मे 'मौन' के प्रयोगका अर्थ कविके मौन रह जानेसे है यद्यपि उसकी रागात्मिका वृत्ति उसको कवितामें मौन नही रह सकी है क्योंकि स्मृति सदा मौन है अतः केवल सामान्य धर्मकी सूचना देनेवाले समानाधिकरण विशेषणके रूपमे नही है। महादेवीमें 'शिथिल चरण' के कारण गतिकी मन्दता, थकावट, और चलनेकी अनिच्छा सूचित है। 'सुधिकी बयार आते ही मिलनोत्कठामें चरण आगे बढ जाते है और आनन्दके लिए शृंगारकी आवश्यकता होती है। अशोकके साथ 'नव' का प्रयोग ताजगी और स्फूर्तिका सूचक है। 'शिथिल' के विरोधमे 'नव' नये आवेश और चेतनाका प्रतीक बन जाता है। 'राग' शब्दका प्रयोग साधारणतया रङ्गके अर्थमे होनेपर भी 'लालरङ्ग' के अर्थमे आता है। रागका अर्थ अनुराग है। लाल नवीन उत्साहका सूचक है। लाली मादकताका प्रतीकत्व करती है अतः साधारण दृष्टिसे अरुण अनावश्यक होकर भी गम्भीर हार्दिक वृत्तिके कारण बौद्धिकताके नियंत्रण और प्रेमकी मादकताकी ओर सकेत करता है। 'प्यासी-सी' अभिलाषामे विकलता और सन्तोषका यत्किञ्चित मिश्रण है। सारी अभिलाषाएँ अपूर्ण रह गयी हैं, यह भी नहीं, और ऐसा भी नहीं कि कोई आशा पूरी ही नही हुई है एव यह विशिष्ट अभिलाषा सन्तुष्ट नहीं हो सकी, हो भी नही सकेगी अतः अभिलाषा प्यासी है, युग-युगतक प्यासी रहेगी अतः आशा चिरसञ्चित है। 'जरा-सा' मे बचन भी उसी दिशाका संकेत करते हैं, क्योकि चॉदनी जरा-सी आती है, यद्यपि प्रयोग क्रिया-विशेषणकी भॉति है किन्तु प्रवाह और चिन्तन इसका सम्बन्ध चॉदनीसे अधिक जोड़ते हैं इसीलिए तो यह 'कितनी दिलासा' देती है।

गीति-काव्य और समाज

गीति काव्य और समाजके सम्बन्धमे दो प्रश्न हैं। पहला गीति-काव्यके उपयुक्त कौनसी सामाजिक स्थिति है एवं सामाजिक भावनाकी कहाँतक अभिव्यञ्जना इसमे सम्भव है? सामाजिक विकास-क्रमके साथ साहित्यिक विकास-क्रमका अध्ययन समाज और साहित्यके सम्बन्ध-सूत्रका निर्देश करता है। साहित्य अन्य कलाओकी भाँति वर्ग-बद्ध रहा किन्तु गीति काव्यका इतिहास स्पष्टतया सूचित करता है कि गीति-काव्यकी प्रेरणा जनसमुदायसे मिलती रही। केवल आधुनिक युगमें आकर मध्यम श्रेणीकी प्रमुखताने इस विकासको नयी दिशाका सकेत दिया है। विद्यापतिने गीतोके लिए मैथिलीको चुना। विद्यापति सस्कृतके विद्वान थे और उन्होने संस्कृतमे ग्रन्थोकी भी रचना की थी किन्तु मैथिलीको गीतोके उपयुक्त माननेका अर्थ स्पष्ट है कि गीति-काव्यके विकासका सामाजिक आधार है। कबीरने लोक-भाषा अपनायी; सूर और तुलसीने ब्रजभाषाको। सूरके पहलेक ब्रज-साहित्य नगण्य और साहित्यिक उद्भावनासे रिक्त दीख पडता है। गीति काव्यकी आत्मा वैयक्तिक रागात्मक अनुभूतिमे है अतः संक्रान्ति कालमे गीतोका प्रचलन अधिक देखा जाता है। मुसलिम विजयके साथ लोगोंकी सवेदनशीलता अत्यन्त सक्षोभ्य हो गयी थी। फलस्वरूप गीति-काव्यका पूर्ण विकास उस समय हुआ। रीतिकालीन कवितामे गीति-काव्यके उपयुक्त सामाजिक अवस्थाका परिचय नहीं मिलता। अग्रेजी राज्यकी स्थापना, और नयी सास्कृतिक चेतनाका विकास अनुभूति और बोध दोनो रूपोमे हुआ। बौद्धिकताका अधिक भार गीति-काव्य वहन नही कर सकता किन्तु अनुभूति और बौद्धिकताके सामञ्जस्यका प्रयास आधुनिक गीतोंमे है। क्रमशः अनुभूतिका विकास बौद्धिक होता जा रहा है, ऐसी अवस्थामें गीति-काव्यके क्षेत्रमे शिथिलता दीख रही

है। गीति-काव्यका एक रूपमे विकास निकट भविष्यमे होनेवाला है जिस समय राजनीतिक, सास्कृतिक, आर्थिक बन्धनोसे मुक्ति मिलेगी। किन्तु साहित्यकी यह स्थिति अधिक समयतक नही टिक सकेगी कारण सर्वजनीन हिस्टीरिया (Mass histeria) का प्रभाव अधिक समयतक नही रहेगा और वस्तु-स्थितिका ज्ञान अधिक प्रेरणा नही दे सकेगा। मानवताके नव-विकासकी आज जो सूचना मिल रही है उसमे मनुष्य चेतन, जागरूक और प्राणवान हो सकेगा। वह सामाजिक स्थिति अधिक उपयुक्त होगी किन्तु मनुष्यका बौद्धिक स्तर परिवर्तित हो जायगा और अनुभूति उसके विचारोके नीचे दब जायगी, ऐसी आशका है; वैसी अवस्थामें गीति-काव्यके उपयुक्त अवस्था लौटनेकी सम्भावना अधिक नही रहेगी।

सामाजिक भावनाकी अभिव्यञ्जना स्पष्ट रूपसे गीति-काव्यमे इसकी अधिकरणनिष्ठताके कारण नही हो सकती किन्तु व्यक्ति और समाजका पारस्परिक सम्बन्ध अविछिन्न है। व्यक्तिकी वैयक्तिकताकी रक्षा करते हुए भी इतना निर्विवाद-रूपमें स्वीकार करना पड़ेगा कि सामाजिक परिस्थितियोंके अनुकूल ही उसका विकास होता है; बहुत सम्भव है कि विकास कोई दूसरा रूप भले ले ले। कलाकारके विद्रोहका अर्थ मान्यपरम्परा और साहित्यिक संस्कारका विरोध है अतः सामाजिकता व्यक्तिके माध्यमसे ही अभिव्यक्त हो सकती है। सुख दुःख आदि वृत्तियोकी अन्विति स्वीकार करनेमें भी हमे मानना पड़ेगा कि सुख-दुःखकी अनुभूतिके रूपोमे सामाजिक कारणोसे अन्तर आ गया है। प्रेम स्वाभाविक वृत्ति है। यूरोपमे भी प्रेम होता है और भारतमे भी; किन्तु प्रेम-मार्गकी बाधाओमे दोनों भू-खण्डोंकी सामाजिक परिस्थितियोके कारण विभेद है अतः उनकी अभिव्यञ्जनामे भी विभेद आ जाता है। सामाजिक भावना-

की परिणति व्यक्ति-भावनाके रूपमें होती है और इसी रूपमे गीतिकाव्यमे अभिव्यञ्जित भी।

गीति-काव्यका वर्गीकरण

वर्गीकरणके कई आधार हैं और इस प्रकार भिन्न आधारके अनुसार वर्गीकरण भी भिन्न होगे। वर्गीकरणका साधारण आधार आवृति है और इस प्रकार तर्कसम्मत प्रणालीसे अध्ययन-विवेचन, तत्त्व-निरूपणद्वारा गीतिके भिन्न-भिन्न भेदोका विचार किया जा सकता है। ऐतिहासिक आधारपर भी इसके वर्गीकरणका प्रयास हो सकता है। प्रवृत्ति और प्रकृतिके अनुसार वर्गीकरणकी प्रथा अत्यन्त प्रचलित है। जातीय-भावनाके आधारपर अग्रेजी गीतिकाव्य, फ्रेंच गीति-काव्य, रूसी गीति-काव्य आदिके रूपमे वर्गीकरण हो सकता है। भाषा-विशेषके रूपमे वर्गीकरण भी होता है जैसे हिन्दी गीति-काव्य, बॅगला-गीति काव्य आदि। मानसिक चेतनाके आधारपर वर्गीकरण गीति-काव्यको विचारात्मक, भावात्मक, रागात्मक, कल्पनात्मक आदि रूप दिया जा सकता है। रूप और आवृतिके अनुरूप वर्गीकरणकी चेष्टा पहले की जायगी। अंग्रेजीके आलोचकोने वर्गीकरणका विस्तृत प्रयास किया है, अग्रेजी साहित्यमे प्रचलित गीतोके आधारपर हिन्दीमे वर्गीकरणकी चेष्टाऍ हुई हैं। अग्रेजीका पूरा विधान हिन्दी कविताओमें नहीं अतः केवल अग्रेजीके आधारपर उनका वर्गीकरण उपयुक्त नहीं हो सकता।

गीति काव्यका सबसे अधिक प्रचलित रूप गीतोमे मिलता है। गीत गेय काव्यका विकसित रूप है। गेय काव्यमे जहॉ गेयता और संगीतके शास्त्रीय निर्वाहका आग्रह है वहॉ गीतोमे संगीतकी नहीं संगीतात्मकताको अपेक्षा रहती है। गीति-काव्यके इस प्रकारके वर्गीकरणमे संगीत मुख्य

कसौटी है। संगीतको ही विभाजक-रेखा समझना चाहिये। शुद्ध गीतोमे रागात्मक अनुभूति अथवा भावनाकी सहज अभिव्यक्ति होती है जिसमे शब्द और लय अन्तर्भूत अनुभूतिकी व्यञ्जनामे सहायक होकर उसका संकेत देते हैं। नाद-सौन्दर्यका साहचर्य पाकर गीतोके चरण भावाभिव्यक्तिमे सहायक होते है। प्रत्येक उपादान इतना अन्वित रहता है कि एक को दूसरेसे भिन्न नही किया जा सकता। शब्द सहज, स्वाभाविक किन्तु चित्रमत्ता-सयुत और भावनोचित होते है। शब्दोकी अर्थ-परिधि विस्तृत होती है जिससे व्यञ्जना-शक्तिको बल मिलता है। अभिधाके द्वारा ही अनुभूतिकी चेतना पाठकमे नहीं जगती अतः व्यञ्जक शब्दोका प्रयोग इस प्रकारके गीति-काव्यमे अधिक होता है। लय और प्रवाह ऐसे रहते है कि भावना और अनुभूतिके उत्थान-पतन, गति-अगति, गम्भीररागात्मक आवेशका सकेत करते है और छन्दको उस प्रकारकी अभिव्यक्तिके उपयुक्त बनाते हैं। खडी बोलीका स्वर-विधान इतना जकड़ा हुआ है कि कविको इस क्षेत्रमे कठिनाईका सामना करना पड़ता है। लयके सहज स्वाभाविक प्रवाहके कारण इन गीतोमे अधिक प्रभाव आता है। गीतोकी प्रमुखता बौद्धिक चमत्कार उत्पन्न करने अथवा इच्छा-शक्तिकी उद्भावनामे नही——कमसे कम पहली अवस्थामे——। मानवकी रागात्मिका वृत्तिको अधिकसे अधिक रूपमे जाग्रत करनेकी क्षमता, वैयक्तिकताको सामाजिक रूप देनेमे सफलता, कल्पनाद्वारा भावोत्तेजनाकी शक्ति और नाद-सौन्दर्य एवं सगीतात्मकताकी रक्षा, के कारण गीतोसे आनन्द और रसकी अनुभूति होती है। पाठक इनकी संवेदनशीलताके कारण प्रभावित होता है और उसमे भी तदनुरूप अनुभूति और भावना जाग्रत होती है। 'मूड' (वृत्ति), भावना अथवा विचार वैयक्तिक होकर सामाजिक आधारसे विछिन्न नहीं होता। गीतोमे व्यञ्जनाशक्ति अधिक रहनी चाहिए वर्णना-

त्मकता अल्प। जीवनकी आकाक्षा और वासनाके अनुरूप आवेश, तीव्रता और सक्षिप्तता रहती है। संगोत और काव्य इसमे मिलकर एकाकार हो जाते हैं।

'गीत' शब्दका प्रयोग आजकल किसी निश्चित अर्थमें नही हो रहा है। सामयिक पत्र-पत्रिकाओमे प्रकाशित साहित्यकी गति-विधि परीक्षा करनेसे ज्ञात होता है कि जितनी असावधानी इस शब्दके प्रयोगमे हो रही है, उतनी शायद ही और किसी दूसरे शब्दके प्रयोगमें। अनुमान होता है, शीर्षकहीन कविताओके लिए कवियोने यही उपयुक्त शीर्षक समझ रखा है। सक्षेपमें वर्णनात्मक, गीतात्मक, विचारात्मक, भावात्मक किसी प्रकारकी रचनाको गीत कहनेसे कवि हिचकता नही यद्यपि गीत-तत्त्व अनेकोमें यदि रहता भी है तो अल्प मात्रामें। गीतकी यदि सीमा निर्धारित की जाय तो संगीत और काव्यके समुचित समन्वयको कहेगे, जिस प्रकार सूर, तुलसी, मीराके गीत हैं। इन कवियोने संगीत-शास्त्रके अन्तर्गतकी राग-रागिनियोंके बन्धनमे अनुभूति और भावनाकी अभिव्यञ्जना की है। उनके गीतोमे सगीतकी जो रक्षा हुई है वह आजकलकी कवितामे नहीं। इस प्रकारकी कविता शुद्ध कलाका स्वरूप है जिसमे सौन्दर्यिक चेतना काव्य-तत्वको प्रेरणा देती है और संगीत-तत्त्व आनन्दानुभूतिका तीव्र आवेश। किन्तु गीतोकी इस सीमाका अतिक्रमण आधुनिक युगमे हो गया है। इन गीतोके वर्गीकरणका ठोस आधार नहीं किन्तु व्यावहारिक रूपमें इनका वर्गीकरण सम्भव है, प्रेम गीत—जिसमें संयोग और विप्रलम्भ दोनो आते हैं, व्यंग्य गीत (यद्यपि हिन्दीमे ऐसे गीत कम लिखे गये हैं) काम करनेके समयके गीत (लोक-गीतोंमें निरवाही, चरखा, जाँता और कोल्हूके गीत इसी कोटिमे आते हैं, सभ्यताके विकासके साथ इनका ह्रास होता जा रहा है।) धार्मिक गीत, उत्सवो

अथवा संस्कारोके समयके गीत (विवाह, यज्ञोपवीत सस्कारादि), राष्ट्रीय गीत, युद्ध-गीत, नैतिक गीत, नृत्य गीत (कोरस) आदि इनके कई रूप हैं। इन गीतोका वर्गीकरण लोक-गीत और कला-गीतके रूपमे किया जाता है। कला गीत और गीति-काव्यमे अन्तर है। हिन्दीमे इन शब्दोके प्रयोगमे भ्रम होता रहा है। अंग्रेजीमे जिसे 'साग' (Song) कहते है, वह गीत है जिसमें गेयता और संगीतकी रक्षा आवश्यक होती है। लोक-गीतोके साथ संगीत-तत्त्वकी रक्षाका नियम स्वीकार कर कला-गीतोकी रचना हुई। लोक-गीतोको वहाँ folk-lore कहते हैं अतः गीतोके अर्थमे 'साग' शब्दका प्रयोग है। गीति-काव्यके अर्थमे वहाँ 'लिरिक' शब्दका प्रयोग होता है जिसके तत्त्वोकी विवेचना इन पृष्ठोमें हुई है अतः गीति-काव्य और गीत एक नहीं भिन्न हैं जिनमे समान तत्त्व हैं और इन गीतोंके आधारपर ही गीति-काव्यका विकास हुआ है। विकास-क्रमके रूपमे गीतके विकासकी तीन अवस्थाएँ है—लोक-गीत, धार्मिक और लोकप्रिय गीत, कलात्मक गीत। लोकप्रिय और कलात्मक गीतोका अन्तर इनके प्रभाव-क्षेत्रके कारण है। लोक-प्रिय गीतोमे सामाजिक आग्रह रहता है। सभ्यताके विकासके कारण समुदाय विशेषकी रुचि परिष्कृत हो जाती है, अतः कलात्मक गीतोका प्रभाव सकुचित क्षेत्रपर पडता है।

जातीय और राष्ट्रीय गीतोके स्वरूपोमे भिन्नता है। संस्कृतके (जयदेव आदिके) गीतो और हिन्दीके गीतोमे अन्तर है। जयदेवमे जहाँ वर्णनकी अधिकता है, जो गीतोकी आत्माके विरुद्ध है, वहाँ उन्हीके मार्गपर चलनेवाले विद्यापतिके गीत वर्णनात्मकतासे अनेक अंशोमे मुक्त है। गीतोके सामान्य तत्त्वके रहते हुए भी जातिगत विशेषता प्रत्येक जातिके गीतोमे लक्षित होती है। यहाँ प्रत्येक जातिके गीतोकी तुलना द्वारा उनकी

जातिगत विशेषताके दिग्दर्शनका प्रयास नही किया जा सकता। अंग्रेजो-का समाज और जीवन अत्यन्त नियमित और बँधा हुआ है। सामाजिक 'कोड'के भीतर ही कार्य करनेका अवकाश है। जीवन इतना व्यग्र और और सलग्न है कि उसमे मनोभावके प्रकाशके लिए स्थान नही, अतः उनके साहित्यमे प्रेमके अतिशय प्रकाशका मोह है, इसके द्वारा जीवनके अभावकी क्षति-पूर्ति हो जाती है। उनके क्लब, सिनेमा-घर, पार्क आदिके व्यवहार इसे प्रमाणित करते है। भारतीय जीवनमे आज विवशता, लाचारी और ग्लानि है। अतः यहाँके गीतोमे इनका प्रकाश है और है इनकी क्षति-पूर्तिके रूपमे अधिक उत्तेजना, कुछ कर दिखानेका साहस, और दर्प। वर्तमानसे असन्तुष्ट होनेके कारण अतीत गौरवमे शरण लेनेका भाव भी कम नही और इसी अभावको आध्यात्मिक रङ्ग देनेका आग्रह भी है। सगीत-नृत्यके सम्बन्धमे धार्मिक प्रतिबन्ध होनेके कारण उर्दूमे वास्तविक गीति-काव्यका विकास नही हो सका। गजल उर्दूका अत्यन्त प्रचलित छन्द है। इसमे संगीतात्मकताका अभाव नही, बल्कि गजलके प्रचलनने शास्त्रीय सगीतकी लोक-प्रियता नष्ट कर दी है, जिस अधिकरणनिष्ठताकी अपेक्षा है, उसका भी अभाव नहीं, गीति-काव्य-तत्त्वकी उपेक्षा समाहित प्रभावके अभावमे हो जाती है। प्रत्येक शेर दूसरेसे असम्बद्ध है, यहाँतक कि कविकी वृत्ति (मूड) भी भिन्न भिन्न दीख पडती है अतः वह मुक्तकके अधिक समीप है। शोक-गीतोके रूपमे 'मर्शिया' अधिक सफल अवश्य रहा, यद्यपि सगीत तत्त्वकी रक्षाका अधिक आग्रह नही।

डा० श्रीकृष्णलालने गीति-काव्यके महत्त्वपूर्ण अङ्गके रूपमे आध्यान्तरिक गीतियोकी गणना की है। 'इस (आध्यान्तरिक) गीति-काव्यकी प्रेरणा-शक्ति कविको अपने अन्तःप्रदेशसे मिलती है'[१] यह उनका मत है।

१—आधुनिक हिन्दी साहित्यका विकास पृ० ११८

गीति-काव्य आध्यान्तरिक ही है जिन 'भावावेशो'मे कविका व्यक्तित्व स्पष्ट दिखायी देनेकी चर्चा उन्होने की है, वही गीति-काव्यके प्राण हैं और इसके अभावमे कोई गीति-काव्य सफल नही हो सकता। जिस शोक-गीतका वर्णन उन्होने किया है उसके मूलमे भी आध्यान्तरिक प्रेरणा है। प्रेरणा आध्यान्तरिक ही होगी, उसके जाग्रत होनेके कारण बाह्य अथवा आन्तरिक हो सकते है। तीन विभिन्न शैलियोकी चर्चा करते समय उन्होने पहली शैली वह मानी है जिसमे 'कवि अपने ही अनुभव और भाव अपने ही ऊपर ढालकर लिखते हैं।' मन्तव्य स्पष्ट करनेके लिए उन्होने सुभद्रा कुमारी चौहानका यह गीत दिया है—

कडी आराधना करके बुलाया था उन्हें मैंने,
पदोको पूजनेके ही लिए थी साधना मेरी;
तपस्या-नेम-व्रत करके रिझाया था उन्हें मैंने,
पधारे देव पूरी हो गयी आराधना मेरी।
उन्हे सहसा निहारा सामने सङ्कोच हो आया,
मुँदी आँखें सहज ही लाजसे नीचे झुकी थी मै,
कहे क्या प्राणधनसे यह हृदयमें सोच हो आया,
वही कुछ बोल दें पहले प्रतीक्षामें रुकी थी मैं।
अचानक ध्यान पूजाका हुआ झट आँख जो खोली,
हृदय-धन चल दिये मैं लाजसे उनसे नहीं बोली;
नही देखा उन्हें बस सामने सूनी कुटी देखी,
गया सर्वस्व अपने आपको दूनी लुटी देखी।

इन पक्तियोकी परीक्षाद्वारा इस 'आध्यान्तरिक' पर विचार किया जाय। आराधनाकी पूर्त्तिके स्वरूप ही सहसा चौहान उन्हे सामने

निहारती हैं अतः .लज्जाकी प्रेरणा सहसा उठे है सामने देखनेके कारण है अतः प्रेरणाका मूल आन्तरिक नही, बाह्य है। आध्यान्तरिक प्रेरणा कहनेका तात्पर्य यह है कि उसके मूलमे भी आन्तरिकता होनी चाहिए। 'कहे क्या प्राण-धनसे यह हृदयमे सोच हो आया' यह स्पष्टतया सूचित करता है कि अनुभूति तीव्र नहीं कारण सोचने विचारनेकी शक्ति रह जाती है कारण यह चाह बनी रहती है कि 'वही कुछ बोल दे पहले प्रतीक्षामे रुकी थी मैं'। अनुभूतिके तीव्र आवेशमे यह विवेक-शक्ति सम्भव नहीं। 'गया सर्वस्व अपने आपको दूनी लुटी देखी'मे भावनाका उचित विकास है जिसमें अनुभूति और विचार एकाकार हो गये है किन्तु बीचकी अवस्था जिसमें अनुभूतिकी तीव्रताके चित्रोकी अपेक्षा थी, नहीं दीखती। इस प्रकार प्रेरणा आध्यान्तरिक नही बल्कि बाह्य है। 'ऑसू'मे जिस शोक-गीत-तत्त्वकी चर्चा डा० लालने भी की है, उसके तत्त्वका आभास 'दूनी लुटी देखी' मे है।

वीरगीत (Ballads)

संगीत, कथन और कार्यसे सम्भवतः तीन प्रकारके काव्य— गीत, पाठ्य और नाट्यका जन्म हुआ। पीछे चलकर इनका मिश्रण हुआ और अनेक अन्य प्रकारोकी सृष्टि हुई। गीति-नाट्यमे संगीत और नाट्य तत्वोका मिश्रण हुआ। यात्रा पार्टियोका नाट्य अनेक अंशोमे इसका प्रारम्भिक रूप है। नौटंकियोमे नृत्य और गीतका इतना व्यापक प्रभाव है कि वह अरुचिकर हो उठा है कारण राजा नाचते-गाते हैं, रानी नाचती-गाती है और दासी भी, इतना ही नहीं बल्कि प्रत्येक उत्तर गीतोमें गाकर दिया जाता है। स्वाभाविकताकी यह हत्या शायद और कहीं नहीं होती। वीर-गीति-काव्योमे गीत और

पाठ्य (Recital) का मेल है। अंग्रेजीमे जिसे पेस्टोरल (Pastoral) काव्य कहते हैं, उसका विषय चरवाहा है, उसमे गीति और नाट्य-के साथ कथाका सम्बन्ध है। भोजपुरी लोक-गीतोमें चरवाहोके गीत हैं किन्तु पीछे चलकर सबसे बड़े ग्वाले और चरवाहे कृष्णके चरित्रकी गाथा जुट गयी। 'विरहा' के गीत इसी प्रकारके हैं जिनमें 'विरह'के गीतोंका मिश्रण हो गया। अहीरोमे प्रचलित होनेके कारण, जो मुख्यतया चरवाहोकी जाति है, इसके चरवाहोके गीत होनेका प्रमाण प्राप्त होता है। विरहाकी दो कड़ियोमे इसकी विशिष्टता दीख पड़ती है—

बिरहा गाऊँ बाघकी नाइँ दल बादल घहराय।
सुनिके गोरिया उचकि उठि धावै बिरहा क सबद ओनाय।

वीरगीतोका आधार भी कुछ इसी प्रकार है जिसमे गीत और पाठ्य-का मिश्रण प्रारम्भिक अवस्थामे रहा। पीछे चलकर क्रमशः गीतात्मकताका कुछ ह्रास होता गया और कथाका आग्रह बढ़ता गया। कथाके कारण नाट्य-तत्त्वोका आरोप भी होने लगा, कारण गायक चित्रित चरित्रके अनुरूप नाद-शक्तिके प्रदर्शनमें लगा। आल्हा-ऊदलके गीत सुननेवालोने लक्ष्य किया होगा कि गायक किस प्रकार चरित्रोके परिवर्तनके साथ अपने स्वरमे परिवर्त्तन करता है। महाकाव्योका रूप-विकास इन्ही वीर-गीतोके आधारपर हुआ होगा। रामायण आदिके इस गीतात्मक रूपका अन्दाज इसके अभिनीत रूपसे लग सकता है। वीरगीतोंके लिए छन्द साधारण और भाषा ओजस्विनी होनी चाहिए। विषय अधिकाश अवस्थाओमे कथात्मक होता है। जिसमें शृगारके तत्त्वोका मिश्रण हो जाता है। वीर काव्योमे भी यह प्रवृत्ति दीख पडती है; जहाँ शृङ्गार कारण रूपमे स्थित नही रहता वहाँ भी युद्धके कारण रूपमे किसी नारी-

को कवि ला खड़ा करता है। इस प्रकार युद्ध-गीत, पौराणिक गीत अथवा रोमाञ्चकारी गीतके रूपमे वीरगीतोका विकास हुआ है। कथात्मक आग्रहके साथ अवैयक्तिक रूप भी स्पष्ट है। गायक अथवा रचयिताके मनोभाव प्रकट नही होते। राष्ट्रीय गीतोके रूपमे इसका विकास कलात्मक वीरगीतोके रूपमे हुआ किन्तु प्रकृत रूपमे नही। कवि वीरता एव स्वदेश प्रेमके लिए कथाका आग्रह लेकर उन नायकोके नामसे ही दर्प और ओज भरनेका प्रयास करता है। 'बोधिसत्व' कवितामे दिनकर बुद्धदेवका चरित्र आजके युगकी पृष्ठभूमिपर देख उनसे जागनेका आग्रह करते है। 'हिमालय' के प्रति कवितामे भी वीर गीतात्मकता है यद्यपि पद्धति दूसरी है। शायद इसी लिए किसीने दिनकरको आधुनिक युगका 'चारण कवि' कहा है। पन्तके 'परिवर्तन'मे कथाका रूप न रहनेपर भी संकेत है, जीवन और उसके परिवर्तनोके अन्तर्भूत रूपमे कथा है। छन्द और लयात्मक विकास भिन्न होनेपर भी वीर गीतोका रूप उसे प्राप्त है। निरालाके यमुनाके प्रति कवितामे 'रोमास'का तत्त्व अधिक है। शुद्ध वीरगीतोका हिन्दीमे अभाव-सा है। लोक-गीतोके विकसित होनेके कारण साहित्य-क्षेत्रमे इनकी प्रतिष्ठा नहीं हुई अतः यह लोक-समाजके कण्ठोमे बसता रहा। कला गीतो अथवा गीतोके इस विकास-युगमे वीरताका आग्रह नही रहा अतः वीर गीतोके उचित विकासकी अवस्था नहीं आ सकी।

करुण-गीति (Elegy)

सस्कृतके साहित्य-शास्त्रमे करुण-गीति नामक कोई वर्गीकरण नहीं है। करुण-रसका स्थायीभाव शोक है। करुण विप्रलम्भमे भी शोकका प्रधान स्थान है, यद्यपि रति स्थायीभाव रहता है। भवभूतिने

करुण-रसको प्रधान माना है इस प्रकार करुण-रस अथवा करुण-गीतोंका अभाव संस्कृत साहित्यमे नही। शकुन्तलामे राजाके विलाप अथवा रानी हंसपादिकाके गीतमे इसका आभास है। संस्कृत साहित्यमे दुःखान्त नाटकोका अभाव है, नाट्य-शास्त्रके बन्धनके कारण, अतः करुण-गीतोका अभाव-सा है। करुण-गीतिका विकास पाश्चात्य देशोमे हुआ किन्तु प्रारम्भमे उसका वही रूप नही था जो आज है। करुण-गीति महाकाव्य और गीति-काव्यका मध्यवर्ती बनकर चला। ग्रीक साहित्यमे करुण-गीतिका विकास विशेष छन्द-बन्धनके कारण 'एलेजी' कहलाया, कारण इसमे इसी नामके छन्दका विधान था जिसका छन्द विधान इस प्रकार–˘˘ था। षट्पदी अथवा पञ्चपदी छन्दोका विधान भी था। इस प्रकार 'एलजियक' छन्दमे लिखी गयी कविताएँ, करुण-गीत और द्वय-पंक्त्यात्मक छन्दोमे लिखे गये करुण-गीत इस प्रकारकी कविता-मे परिगणित होते रहे। विकास-क्रममे रूप-परिवर्तन होता रहा और इस प्रकार शोक-पूर्ण गीति-काव्यको विशेष प्रकारके छन्द-बन्धनसे मुक्ति मिल गयी और किसी प्रकारके छन्दमें लिखे गये शोक गीत इस श्रेणीमे आते रहे। प्रेम और विरह, व्यक्तिगत निराशा और हानि, जीवनके अहंकार और दर्पका चूर्ण होना, एवं व्यक्ति, समाज अथवा देशके अतीत गौरवका ह्रास आदि इसके विषय है। विचारसे अधिक भावनाओकी इसमे अभिव्यक्ति होती रही है। इस उन्नत क्रममे अंग्रेजी साहित्यके शोक-गीतने भारतीय साहित्यको प्रभावित किया। पण्डित श्रीधर पाठक-कृत ऊजड़-ग्राम गोल्डस्मिथके डेजरटेड विलेज (Deserted Village) का अनुवाद है। राष्ट्रीय कविताओमे अतीत-गौरवके नष्ट होनेपर शोकोच्छ्वासकी अभि-व्यक्ति पायी जाती है। भारतेन्दुसे लेकर आधुनिकतम राष्ट्रीय कविमे ऐसी भावना पायी जाती है, राष्ट्रीय गीतोके प्रभावका कारण अनेक अंशोमे

यही होता है। भारत-भारतीका वर्तमान खण्ड इसी रूपमे है। जयद्रथ-बधके उत्तरा विलापमे भी इसका अभाव नहीं, किन्तु सम्पूर्णतया शोक-गीतके रूपमे कम कविताएँ लिखी गयी हैं। तिलक आदि राष्ट्रीय नेताओंकी मृत्युपर ऐसे गीत लिखे गये हैं। प्रसाद-लिखित 'आँसू' और प्रभात रचित 'कलेजेके टुकड़े' मे विरह-काव्यका प्रवाह है किन्तु इन्हे पूर्णरूपसे करुण-गीतिकाव्यका रूप प्राप्त नही हो सका है। हिन्दीमे प्रचलित विषाद और वेदनाके गीतोको करुण-गीति कह सकना इसलिए उचित नही जान पड़ता कि गीति-काव्यका विकसित रूप उनमे दिखायी नहीं पडता है। शोकके भावात्मक विकास और स्थूलताके कारण इनके स्वरूपमे अन्तर मानना चाहिए। वियोगीके नव-प्रकाशित महाकाव्य 'आर्यावर्त्त'मे करुण-गीतिका विकसित रूप वहाँ मिलता है जहाँ कविरानी कहती है—

युद्ध हुआ शेष, आर्यसेना शेष हो गयी।
शेष हुआ पौरुष महान् आर्य जातिका,
शेष हुआ गौरव, विलीन हुआ ओला-सा
हाय! चिर सञ्चित सुयश आर्य भूमिका।
शेष हुए आर्यपति इस महानाशमें;
विजयी अनार्य हुए, आर्योंकी विजयका
डूब गया भासमान भानु असमयमे।

दिनकरी 'नयी दिल्ली'मे शोक गीतिका विकसित रूप मिलता है। प्रसाद और प्रभात दोनोमे वेदनाकी सुन्दर निवृत्ति हुई है। प्रसादमे दार्शनिक अनुबन्धमे मानवीय प्रेम और तज्जनित निराशा और शोककी अभिव्यक्ति हुई है। प्रभातने मानवीय शोकको ही आधार माना है, यद्यपि यत्र-तत्र दार्शनिकताका मोह कम नही है।

जो घनीभूत पीड़ा थी मस्तकमें स्मृति-सी छायी,
दुर्दिनमे आँसू बनकर, वह आज बरसने आयी।—प्रसाद

× × ×

कौन कलेजेके टुकड़ेका बतलावेगा मोल ?
हृदय आह जलनेको देगा बना कौन है दानी ?—प्रभात

व्यंग्य-गीति

व्यग्य-समाजकी जीवनी-शक्तिका परिचय देता है। जो जाति जितनी अधिक जीवनी-शक्ति रखती है उसमे व्यग्य और हास्यकी उतनी अधिक प्रवृत्ति दीख पडती है। सस्कृत साहित्यमें हास्य रसका विधान है। नाटकोंमे विदूषकोके पेटूपनपर व्यंग्य और कटाक्ष किया गया है किन्तु इस प्रकारके व्यग्य गीतोका प्राधान्य कभी नहीं रहा। रस-विधान नाटकमे माना गया और हास्य-प्रधान नाटकोकी रचना न होनेके कारण इस प्रकारकी कविताएँ कम हुई हैं। जो कटूक्तियाँ हुई है उनमे रूढ़िग्रस्तता है। सूरदासने व्यंग्य और हास्यका आधार लिया है किन्तु वह उपालम्भ काव्यके अन्तर्गत आता है। तुलसीदासमे 'नारद-मोह' और 'परशुराम-लक्ष्मण संबाद'में इसकी प्रवृत्ति देखो जाती है। व्यग्यके सामाजिक आधारका दिग्दर्शन कबीरमे है जहाँ प्रचलित धर्म, रूढि और परम्पराके प्रति उनका आक्रोश व्यग्य-वाण बनकर छूट पड़ा है।

काँकर पाथर जोड़के, मसजिद लई चुनाय।
ता चढ़ि मुल्ला बाँग दे, क्या बहरा हुआ खुदाय॥

इन पक्तियोमे 'मुल्ला'के बाँग देनेका आनन्द इसके व्यग्यमे है। ग्रीक-साहित्यमे स्मारक काव्यका यह क्रम-विकास है। मृत्यु अथवा

स्मरणीय घटनाओंके वर्णन, जो स्मारक स्तम्भ, मूर्ति अथवा भवनपर लिखे जाते थे। एपिग्राम (Epigram) शब्द का तात्पर्य स्मारक-लेख (Inscription) है। हास्य, व्यंग्य, अश्लील गीतोंकी गणना इसमे पीछे चलकर होने लगी। ग्राम-गीतोमे इसके रूप मिलते हैं। ग्राम-गीतका एक व्यग्य चित्र है :—

पाँच बरिसवाके मोरि रँगरैली असिया बरिस क दमाद
निकरि न आवै तूँ मोरि रंगरैली अजगर ठाढ़ दुआर।

तथा— नाहक गौन दिये मोर बाबा बालक कंत हमार रे।
चीलर अस दुइदेवर हमरे बलमा मुसे अनुहार रे॥

तेलवा लगायउँ बुकउवा लगायउँ खटिया प दिहेउँ ओलार रे।
नेपे नेपे आइ बिलरिया सवॅतिया लइगइ बलमा हमार रे॥
सास मोरी रोवइँ ननद मोरी रोवइँ रोवइ हमारि बलाइ रे।
कोठवामे ढूँढ़ेउँ अटरियामें ढूँढ़ेउँ खटियातरे रिरिऑइ रे॥

[हा, मेरे बाबाने मेरा गौना नाहक किया। मेरा कन्त निरा बच्चा है। चीलर (कपडेकी जूँ) के समान मेरे दो देवर हैं, मेरा बालम चूहेकी भाँति है। तेल लगाया, उबटन लगाया और खाटपर सुला दिया। बिल्ली सौत चुपके-चुपके आयी और मेरे बालमको ले भागी। मेरी सास रो रही हैं, मेरी ननंद रो रही हैं। मै क्यो ? मेरी बला रोवे। अन्तमे मैने कोठेपर खोजा, अटारीपर खोजा, तो देखा कि खाटके नीचे पड़ा हुआ रिरिया रहा है।]

इसके व्यंग्यका आनन्द उसे ही प्राप्त हो सकता है जो 'ओलार रिरिऑइ' 'रोवइँ हमारि बलाइ' की भावधारा समझता है। इतना

सुन्दर व्यग्य-चित्र हिन्दी साहित्यमे भी नही मिलता। कवियोने सूमोका वीभत्स चित्र अकित किया है उसमे व्यग्यसे अधिक द्वेषकी झलक मिलती है। महावीरप्रसाद द्विवेदीने 'विधि विडम्बनामे' व्यग्य-प्रकृतिका परिचय दिया है। भारतेन्दु-युगमे इस प्रकारकी रचनाएँ मिलती हैं। वह युग जिन्दःदिलीका था। आज हमारी प्रवृत्ति इतनी गम्भीर हो गयी है कि व्यग्य और हास्यका युग नही रह गया है। 'सटायरिकल' (व्यंग्यात्मक) गीति निरालाने लिखे हैं। 'बन बेला' शीर्षक कवितामे राजपुरुषोको प्राप्त कवि-प्रशसा एव धनिकोके साम्यवादपर सटीक व्यंग्य है। इधर कुकुरमुत्तामे आधुनिक कवियोकी प्रवृत्तिपर व्यग्य हैं। पता नहीं, हिन्दीके अनेक पाठक ओर प्रगतिवादी उसे प्रगतिवादी कविताका अच्छा उदाहरण क्यो समझते है? क्या प्रगतिवादी कवितापर व्यंग्यात्मक आघात होनेके कारण ही तो नही? छन्द बन्धनपर व्यग्य छायावाद-युगकी प्रधान विशेषता रही।

समाज-गीति

अत्यन्त विकसित समाज अनेक विधि-विधानोके कारण अधिक जकडा रहता है। सामाजिक नियमोके इस कठोर बन्धनके कारण कवियोका आक्रोश अवश्य फूटता है। समाज-गीतोमे इस प्रकारके समाजके प्रति अवहेलना और बौद्धिक व्यंग्योक्ति रहती है। इस प्रकारके गीतोको भिन्न श्रेणीमे रखनेका कारण केवल सामाजिक आधार ही है यद्यपि व्यग्योक्तियो, कटूक्तियोकी प्रधानता इसे व्यग्यगीतिके अन्तर्गत रखनेका मोह देती है। नारीकी सामाजिक स्थिति कटूक्तियोका विषय कम नही रहती। कबीरकी सामाजिक और धार्मिक व्यग्योक्तियोकी चर्चा हुई है। बच्चनने अपनी अनेक पंक्तियोमे सामाजिक नियमोपर व्यग्य किया है।

क्या किया मैंने नहीं जो
कर चुका संसार अबतक
वृद्ध जगको क्यों अखरती
है क्षणिक मेरी जवानी ?
मै छिपाना जानता तो–
जग मुझे साधू समझता,
शत्रु मेरा बन गया है
छल-रहित व्यवहार मेरा !

वृद्ध-जगका व्यंग्य केवल जगके वृद्ध होनेमे नहीं बल्कि वृद्धोके जगमे है जिन्होने अपनी जवानीमे न-जाने क्या क्या किया था ।

उपालम्भ गीति

विरह-गीतिका उपालम्भ-गीति विशिष्ट प्रकार है । विषाद और वेदनाका कारण विरह है किन्तु प्रियकी निष्ठुरताकी याद अधिक विकल करती है । अपने प्रति निरादर और उपेक्षाका भाव किसी दूसरेके प्रति प्रेमावेशका आधिक्य हृदयमें जलन उत्पन्न करता है । उपालम्भ काव्यमे प्रिय उस विरहका मूल कारण यदि न हो तो भी उसमें उपेक्षाका भाव रहता है । विरहके कई कारण हो सकते हैं । प्रिय चाहकर भी मिल नहीं सकता, उसकी विवशता, लाचारी तथा अन्य प्रतिबन्ध मिलने नही देते । वहॉ विरह-काव्य तो है किन्तु उपालम्भ-गीति नही । यक्षके विरहका कारण शाप है अतः उलाहनेकी सम्भावना नहीं । कृष्ण गोकुलसे वृन्दावन जाते है और गोपियोको कुब्जाके प्रेममे पडकर भूल जाते हैं, कम-से-कम गोपियोके विश्वासमे ही । गोपियोको स्वय इस कथामे विश्वास नही, पूर्ण आस्था नही ; किन्तु कृष्णका न आना इस सम्भावनाकी सूचना

अवश्य देता है। भ्रमर-गीतमें सूरने गोपियोसे उपालम्भ दिलाया है। इस प्रकारके उपालम्भ-काव्य सर्वत्र मिलते है। उर्दू-काव्य इस उपालम्भंसे भरा पड़ा है। उर्दू कवियोकी 'माशूका' या 'माशूक', बेशर्म, बेहया, बदख्वार, बेरहम, बेदार और न-जाने क्या क्या हैं। शायद ही किसी दूसरे साहित्यमे प्रियतमको इतने सुन्दर (!) सम्बोधनो और विशेषणोसे याद किया गया हो।

'यां चिन्तयामि सततं मयि सा विरक्ता
साप्यन्नमिच्छति जनं सजनोन्यसक्तः'

मे यही उपालम्भका भाव है। 'मीर' को हवासे शिकायत है :—

न रक्खी मेरी खाक भी उस गलीमे,
कदूरत मुझे है निहायत सबासे।

[मुझे सबा (प्रभातकालीन वायु) से सख्त शिकायत है, क्योकि उसने सारा परिश्रम व्यर्थ कर दिया था। धूल बनकर मै पड़ा था कि इस बहाने मिल सकूॅ, पैरोका बोझा ले सकूॅ, लेकिन उसने ऐसा होने न दिया, उस गलीसे दूर ले उडाया, वह आशा भी पूरी न हो सकी। कविरत्न सत्यनारायणके '**भयो यह अनचाहतको संग, दीपकको भावै नही जल-जल मरत पतंग**'मे यही उेलाहना है। सूरका उपालम्भ-काव्य ससार-साहित्यमे शायद बेजोड़ है। इतना विस्तृत उपालम्भ काव्य और कहीं नही लिखा गया। व्यथा, पीड़ा, वेदना, विषाद और व्यग्यका अपूर्व सगठन सूरके गीतोमे है।

गीतिनाट्य

इस प्रकारकी रचनाका वास्तविक आधार गीति-काव्य होता है किन्तु प्रणाली नाटकीय होती है। कवि अपने आपका आरोप भिन्न-भिन्न चरित्रो-

पर करता है किन्तु प्रत्येक चरित्र उसकी प्रतिमूर्ति नही। उन सभीके विचारो और भावनाओके साम्यमे कविकी अनुभूति और भावना अभिव्यक्त होती है। पूर्णरूपसे यह अधिकरणनिष्ठ नहीं है क्योकि कविको अपनी भावनाएँ चरित्रोके माध्यमसे प्रकट करनी पड़ती है। गीति-नाट्यकी कला परिष्कृत है कारण उसमे दो कठिन तत्त्वोके समावेशकी चेष्टा है। प्रसादके 'करुणालय' और 'महाराणाका महत्त्व' गीति-नाट्य है, इनमे कथोपकथनका जितना सुन्दर निर्वाह है उतना संघर्ष और उसके चित्रणका नहीं। निरालाका 'पञ्चवटी प्रसग,' उदयशंकर भट्टके 'मत्स्य-गन्धा' और 'विश्वमित्र' गीति-नाट्य है। भगवतीचरण वर्माका 'तारा' गीति-नाट्य है। इधर केदारनाथ मिश्र 'प्रभात'ने 'सवर्त्त' नामक गीति नाट्य लिखा है। इसकी आलोचना करते हुए मैने लिखा था,—"सवर्त्तमे ओज-गुण है, प्रवाहमयी भाषा है, भाषाका सौष्ठव है, किन्तु दार्शनिकताके तीव्र आग्रहके कारण नाटकत्व और काव्यत्व उचित रूपमे परिस्फुटित नही हो सके।"*

रूपक-गीति

कवि इन गीतोमे रूपकोके सहारे अपनी भावनाएँ अभिव्यक्त करता है। शुद्ध रूपक-गीत कम ही लिखे गये है किन्तु आधुनिक कवियोमे रूपकात्मक अथवा प्रतीकात्मक मोह अधिक है। भिन्न-भिन्न शैलियोसे कवि इसकी अभिव्यञ्जनाका प्रयास करता है। अपने मनोभावोको प्रकट करनेके लिए वह कभी-कभी प्रकृतिके चित्रोको उपस्थित करता है, अतः उन प्रकृतिके चित्रोसे ही कविकी वृत्तिका संकेत मिलता है। महादेवी और प्रसाद, पत और निराला सभीमें यह प्रवृत्ति है किन्तु महादेवीमे यह

---

* पारिजात पृ० १०५

अधिक दीख पड़ती है। प्राकृतिक उल्लासद्वारा मानसिक उल्लासके चित्र रामकुमार वर्मामे प्राप्त है।

पत्र-गीतिका वर्णन हडसनने किया है। इस प्रकारके गीतिको स्वरूप-भिन्नताके कारण ही भिन्न माना जाता है अन्यथा निजी अनुभूति और भावनाका वर्णन ही इसमे रहता है। पत्रोमे यदि उपालम्भ दिया गया है, तो वह उपालम्भ गीतिके अन्तर्गत आवेगा। चॉदके पत्राङ्कमे प्रकाशित 'द्विज' का 'टूटा हिय हार' अच्छा उदाहरण है।

विचारात्मक-गीति—

गीतिकाव्य अधिकरणनिष्ठ और रागात्मक स्वीकार किया गया है, ऐसी अवस्थामे गीति-काव्यको विचारात्मक कहनेमें विरोध दीख पड़ेगा। किन्तु यहॉ प्रश्न यह नही कि कौनसे और किस प्रकारके विचार गीतियो-को प्रभावित कर सकते हैं बल्कि प्रश्न है कि विचार गीति-काव्यके तत्त्वोको अक्षुण्ण रखते हुए कहॉतक उसे प्रभावित कर सकते है। विचारो एव बौद्धिकताका तीव्र आग्रह गीति-काव्यके सौन्दर्यको नष्ट कर देता है। अतः विचारात्मक गीतियोका अर्थ लेना चाहिए कि अनुभूति जहॉ विचारके साथ एकाकार होकर भावनाका रूप ग्रहण कर लेती है, वैसी अवस्थामे विचार भी अनुभूतिका रूप ग्रहण कर लेते हैं। शुद्ध ज्ञान और बौद्धि-कताका कोई स्थान गीति-काव्यमे नहीं। विचार और उसे तर्कपूर्ण रूपसे उपस्थित करनेमे सौन्दर्य है। विचारोका अपना चमत्कारपूर्ण स्थान है और पाठक विचारोके वैचित्र्यके कारण चमत्कृत होता है किन्तु ऐसे गीतियोमे कविका ध्यान चमत्कार उत्पन्न करनेकी ओर नही बल्कि रागा-त्मक आवेशकी ओर होता है। केरियरने लिखा है—The thought, if the Poetry be genuine, is highly emotionali-

zed, and is presented freely and intuitively, with reliance upon the ultimate persuasive effect of feeling – not necessarily upon the pleasure arising from logical and dialectic process.

आनन्द बौद्धिक चेतनाके कारण नही अपितु रागात्मिका वृत्तिकी उत्तेजनामे रहता है। इसकी अन्तिम परिणति विचारो एवं दार्शनिकताके पूर्ण प्रकाशमे है जिसे विचारात्मक काव्य कहा जाता है। वास्तवमे इस प्रकारके काव्यको कविता कहनेमे संकोच होता है। सूक्ति और काव्यमे अन्तर है। विचारात्मक काव्य सूक्ति-प्रधान होता है। सूक्तिका प्रभाव विचारोकी उत्तेजना और तज्जनित विश्वासमे है। ऐसी कविता बुद्धि-चमत्कारके कारण भावात्मकताको दबा देती है और उसके स्थानमे बुद्धि-विलासका चमत्कार प्रकट करती है। विचारात्मक गीतियोका महत्त्व उनके चमत्कारपूर्ण होनेमे है। इस प्रकारके गीत कबीर-रचित अधिक मिलते है। उलटबॉसियोमें कुछ इसी प्रकारके चमत्कार-प्रदर्शनका प्रयास है, पर कबीरमे वैसे गीतोका अभाव नहीं जिसमे विचार भावना रूपमे प्रकट होते है और आनन्दका स्रोत उनके रसात्मक और रागात्मक होनेमे है। आधुनिक युग विचार-प्रधान युग है, अतः गीति-काव्यमें विचार किसी-न-किसी रूपमे अवश्य मिलता है। महादेवी विचारोको अनुभूतिकी अन्तर्दशासे प्रकट करनेमे सफल है। यह कविकी क्षमता और अक्षमता दोनोका कारण बन जाता है। अनुभूतिकी प्रधानताके कारण विचारोमें विशिष्ट प्रभाव उत्पन्न तो होता है किन्तु इसके द्वारा विचारोकी सुष्टता नष्ट हो जाती है और पाठक या श्रोताको उन सकेतोके अन्वेषणमें प्रयास करना पड़ता है जिसके सम्बन्धसे वह कविके अन्तस्तलतक पहुँच सके। वह विचार किसी वस्तु-विशेष अथवा विशिष्ट परिस्थितिके कारण

उत्पन्न होता है, और जिसमें रागात्मक प्रभावका आवेश रहता है। इनके साथ ही विचार सक्षम, तीव्र और प्रभावोत्पादक होंगे। चिन्तन और साधन भावावेशका स्वरूप ग्रहण कर लेते है अतः चिन्तनका विषय स्वतन्त्र नही रह पाता और इस प्रकार गीतियोका प्रभाव रागात्मिका वृत्तिपर अक्षुण्ण रूपसे पडता है। महादेवी और निरालाके गीतोमे यह पूर्ण रूपसे लक्षित होता है। निरालाके गीतोमे विचार ही अनुभूति है।

सम्बोध-गीति (ओड्स odes)

सम्बोध-गीतियोमे किसी वस्तु विशेषको सम्बोधित करके कवि अपने विचारो और भावनाओको चित्रमयी भाषामे संगीतात्मक पद्धतिसे अभिव्यक्त करता है। किसी प्राकृतिक या साधारण वस्तु, दृश्य, भाव और विचार, युगको भी सम्बोधित किया जा सकता है। इस प्रकारके गीतोका प्रचलन हिन्दीमे आधुनिक कालमे हुआ है यद्यपि इसके कुछ-कुछ विकसित रूपोंका आभास प्रचीन साहित्यमे भी मिलता है। बीज रूपमे 'दूत' अथवा 'सदेश काव्य' मे इसके कुछ रूपकी क्षीण झलक है। 'मेघदूत' मे मेघको सम्बोधित करके अपनी अवस्थाका वर्णन कालिदासका यक्ष करता है। किन्तु इसे सम्बोध गीति नही कहा जा सकता। अन्योक्तियोंमें सम्बोधित करके जो कुछ कहनेकी प्रथा है, उसमे सम्बोधित वस्तुका महत्त्व इतनेमे ही है कि उसके द्वारा किसी दूसरेसे कहनेका लक्ष्य सिद्ध होता है। इस प्रकारके गीतोका प्रचलन अग्रेजी साहित्यके 'ओड्स' के कारण हुआ। अग्रेजीमे शेलीके ओड् टु लिबर्टी (ode to Liberty) और ओड् टु दि वेस्ट विन्ड (ode to the west wind), वर्ड्सवर्थ के 'इमिटेशन्स आफ इमार्टलिटी' Immitations of Immortality), कीट्सके ओड् टु ऑटम (ode to Autumn), ओड् टु

ए नाइटिंगेल (ode to a Nightingale) और ओड् टु ए ग्रीशीयन अर्न (ode to a Greciane Urn) अत्यन्त प्रमुख हैं। ओड्के विकासका इतिहास भी गीति-काव्यके अन्य भेदोकी भाँति अत्यन्त अव्यस्थित रहा। पिडार (Pindar) के डोरियन ओड्स (Dorian odes) मे तीन सन्दर्भ हैं ; छन्द-प्रणाली निश्चित नियमित शृंखलाबद्ध और व्यवस्थित है और इस प्रकारके सन्दर्भोका क्रम कविताके अन्ततक चला जाता है। ग्रीक नाटकोके अभिनयके समवेत गायन (Chorus) के समय गायकोका दल रंगभूमि (Orchestra) की एक ओरसे दूसरी ओर जाते समय इस प्रकारके गीत वाद्ययन्त्रोकी सहायतासे गाया करता था। इन तीन प्रकारके सन्दर्भोमे विधान-गत अन्तर था। इस प्रकारकी छन्द-योजना जटिल और दुरूह थी अतः इनसे त्राण पानेका प्रयास बादमे चलकर हुआ। विषयकी उदात्तता, शैलीकी अक्षुण्णता और उत्कर्ष, उल्लासपूर्ण भावके लिए इनमे अधिक स्थान पाया जाता रहा। विषादका मिश्रण पीछे चलकर हुआ। कवि अपनी चंचल वृत्तियो और रागात्मक आवेगका सन्निवेश इनमे करने लगा। आधुनिक हिन्दीमे इस प्रकार अंग्रेजी ओड्सके पैटर्न (Pattern) पर अनेक गीतोकी रचना हुई। निरालाकी 'यमुनाके प्रति', पन्तकी 'छाया', भगवतीचरण वर्माकी 'नूरजहाँ' की कब्रपर, इसके उत्कृष्ट उदाहरण है। 'नववधू': (भगवतीचरण वर्मा) बालिकासे बधू : (दिनकर), नूरजहाँ : (रामकुमार वर्मा) 'समाधिके प्रदीपसे' (दिनकर) आदि सम्बोध गीतियोंमे मिश्र प्रणालीका प्रयोग भी होता रहा है जिसमे कवि रागात्मक आवेशसे पूर्ण वर्णन और सम्बोध तथा सम्बोधित वस्तुकी ओरसे उनकी भावनाओका वर्णन करता है। दिनकर की 'निर्झरिणी' इसी मिश्रित प्रकारकी हैं।'

अभिसारिका मैं मिलने हूँ चली,
प्रिय-पंथ रे कोई बताना जरा

किस शूली पै 'मीरा पिया' की है सेज
इशारोंसे कोई दिखाना जरा
पथ-भूली सी कुंजमें राधिकाके
हित श्याम ! तू बेणु बजाना जरा
तुझमे प्रिय ! खोनेको तो आ रही
पर तू भी गलेसे लगाना जरा

इन सम्बोध गीतियोमे कवि सम्बोधित वस्तुओकी गाथा गाकर अपने मनोभाव प्रकट करता है ।

चतुर्दशपदी-गीति

अंग्रेजीकी 'सानेट' प्रणालीपर खड़ी बोलीके युगमे कुछ इस प्रकार-की रचनाएँ हुई थीं । हिन्दीकी आत्माके समीप न होनेके कारण इस प्रकारकी रचनाएँ हिन्दीमे नहीं हुईं ।

अन्य प्रकार

प्रेम, प्रकृति, विषाद, उल्लासके गीतोकी चर्चा हो चुकी है । उत्सव और संस्कारोंके अनुरूप कला-गीतोकी रचना नहीके बराबर है । यह आजकल केवल लोक-गीतोतक सीमित है । लोक-गीतोकी रचना भी शिथिल है और उसमे किसी प्रकारकी वृद्धिके लक्षण नहीं दीखते । सभ्यताके नामपर इन गीतोके प्रचलनकी ओर लोगोकी शनि-दृष्टि पड़ने लगी है । मालूम पड़ता है सभ्यता स्वाभाविक वृत्तियोको नष्ट कर छोड़नेके प्रयासमे है । अनुरंजन-गीतो (Courting Lyrics) के लिए भारतीय समाजमें स्थान नही । गीति-काव्योके रूपमे रागात्मक, प्रेरणात्मक और विचारात्मक गीतियोकी रचना होती रही है । वास्तवमे

इनके वर्गीकरणमे विशेष सतर्कताकी आवश्यकता है। एकके साथ दूसरे भेदका इतना घनिष्ठ सम्पर्क है कि एक दूसरेके सीमा-क्षेत्रमे अज्ञात रूपसे प्रवेश पा लेता है। केवल इनके सम्बन्धमें इतना ही स्पष्ट रूपसे कहा जा सकता है कि इनमे अमुक तत्त्वकी प्रधानता है। अनुभूति, दर्शन (निरीक्षण) और भावनाके गीतोंके रूपोंमे भी इनका विभाजन सम्भव है। गीतियोका वर्गीकरण वस्तुनिष्ठ और आत्मनिष्ठ रूपमे किया जाता है। वस्तुनिष्ठ गीति-काव्यका तात्पर्य उन गीतोसे लिया जाता है जिसका परिस्थिति, व्यक्ति अथवा वस्तुसे सम्बन्ध हो और आत्मनिष्ठ गीतियोंमें इच्छा-शक्ति, भावना, अनुभूति और विचारकी अभिव्यञ्जना रहती है। किन्तु यह वर्गीकरण व्यावहारिक है, कारण गीतिकाव्य अनुभूति-प्रधान है अतः वस्तुका महत्त्व अनुभूति और रागात्मक आवेश जाग्रत करनेकी क्षमतामे है। विचार, इच्छा-शक्ति भावना आदि अनुभूतिसे ही प्रेरणा और शक्ति पाते है अतः गीतिकाव्य अनुभूति-मूलक होनेके कारण विकसित रूपमे एकाकार रूपमे प्रकट होता है और इसकी सफलता अनुभूति जाग्रत करनेकी क्षमतामे है, अतः इसकी एक ही कोटि है किन्तु अध्ययनकी सुविधाके लिए व्यावहारिक भेद किये जा सकते है। सामाजिक और नक्कासीके गीतोकी चर्चा हो चुकी है। गीतोका एक प्रकार प्रातिभ सहजज्ञान (Intutive Knowledge) के आधारपर निरूपित किया जा सकता है। सहज ज्ञान और विकसित ज्ञानके आधारसे उत्पन्न गीतोमे अन्तर रहता है। यह प्रश्न एक दूसरे प्रश्नकी ओर सकेत करता है। कवि उत्पन्न होते हैं अथवा अभ्यासके द्वारा भी बनाये जा सकते हैं। सामाजिक और वैयक्तिक, एवं रूपकात्मक, वर्गीय और रोमाचपूर्ण, रूपोमे भी इसका विभाजन सम्भव है। इस प्रकार गीति-काव्यके तत्त्वोके विश्लेषण और विवेचनसे इसके अनेक रूपो और प्रकारोकी कल्पना हुई है।

इसकी विविधता जातीय गीतोमे अधिक दीख पडती है। राष्ट्रीय और धार्मिक गीतोंके रूपमे महत्त्वपूर्ण साहित्य मिलता है।

गीति-काव्य और उसका कार्य

गीति-काव्य, सामान्य काव्यका विशिष्ट और महत्त्वपूर्ण अंग है। काव्य, कलाके अन्तर्गत आता है अतः गीति-काव्यके उद्देश्यकी सीमा कलाकी परिधिके अन्तर्गत है। उद्देश्यके अन्तर्गत उद्देश्य और प्रभाव दोनो आते हैं। कलाकी भाँति गीतिकाव्यका उद्देश्य सौन्दर्याभिव्यक्ति और तज्जनित आनन्दानुभूति है। इसके साथ ही इसके द्वारा नैतिक प्रभाव भी उत्पन्न किया जा सकता है। प्रचार और कलाकी सीमा रेखाको ध्यानमें रखकर नैतिकता और उसके प्रभावकी चर्चा होनी चाहिए। यह प्रश्न सौन्दर्यानुभूतिके क्षेत्रमे आ खड़ा होता है। मानवीय सौन्दर्य-वृत्तिकी तुष्टि कला द्वारा होती है। कला जीवनको नवीन चेतना देती है और पाठकको उस चेतनाके प्रति उन्मेष। सौन्दर्य क्या है और यह सौन्दर्यानुभूति क्या है, इस प्रश्नपर कोई निश्चित मत नही दिया जा सका है। सौन्दर्यानुभूतिके तत्त्वोमे द्रष्टा और दृश्यके सम्बन्धका विवेचन है। सौन्दर्यानुभूति प्रत्येक व्यक्तिमे समान रूपसे नही होती। इस अनुभूतिकी भी देश काल-गत और व्यक्ति-गत सीमाएँ हैं। कलाकी सामाजिकता अथवा वैयक्तिकता ऐन्द्रिय और बौद्धिक सीमाओंकी मध्यवर्त्तिनी है और शक्तिशालिनी जिसमे रेखा सौन्दर्यको है। कलाकी परखका मूल इसी अनुभूतिमें है। सुख और सुख-दुखात्मक अनुभूतियोकी अभिव्यञ्जना और आनन्दानुभूतिके प्रश्नोपर निर्णयात्मक विवेचन नहीं हुआ है। संस्कृत साहित्य-शास्त्रों और अरस्तूके काव्य-शास्त्र (Poetics) और उसकी व्याख्याओंमें इस प्रकारकी विवेचना की गयी है। कलाके प्रभाव साधारणीकरण और पर्याप्त

मात्रामे निस्सगताके कारण है । सौन्दर्यानुभूतिके मूलमें कलात्मकताका आधार है, कलात्मक संस्कार और आवेश जीवनको नवीन विकास देते हैं। युगकी चेतना नवीन सस्कार बनकर उपस्थित होती है। इस प्रकार कला सामाजिक जीवनकी वैयक्तिक अभिव्यञ्जना होनेके कारण प्रगतिमूलक चेतनाका कारण है । सौन्दर्यात्मक होनेका अर्थ अधिकसे अधिक भावात्मक और रागात्मक होना है। अनुभूतिकी अवस्थाके कारण इनके स्वरूपमे थोड़ा भेद आ जाता है। प्रथम अवस्थामें वैयक्तिक सुख-दुःख, राग-द्वेषका आवेश अधिक होता है यह चाहे वास्तविक अथवा काल्पनिक क्यो न हो । दूसरी अवस्थामे साधारणीकरणद्वारा कवि वैयक्तिक आधारको सामाजिक रूप देनेमें सफल होता है । इस अवस्थामें वैयक्तिक छाप अवश्य रहती है यद्यपि सामाजिक प्रभावके स्पष्ट रूप दीख पड़ते है । समाज व्यक्तियोका समूह मात्र नही । वह उनका समन्वय है । ऐसी अवस्थामें व्यक्तिके माध्यमसे प्रकट होनेवाली सामाजिक वृत्तियो और व्यक्ति-विशेषकी वृत्तियोमे अन्तर रहता है । अन्तर केवल मात्राका ही नही; स्वरूपका भी होता है। इस अन्तरका कारण वर्गीय और वैयक्तिक संस्कार होते हैं। कलाकारकी वृत्तियाँ सामाजिक चेतनासे ही प्राणवान और सजग होती हैं। वैयक्तिक धारणाएँ, आकाक्षाएँ सामाजिक भावनाओकी भित्तिपर बनती हैं। इस प्रकारकी अनुभूतिमे व्यक्ति सामाजिक भावनाओको सक्षमरूपमे अभिव्यक्त करता है। तीसरी अवस्थामे सौन्दर्यानुभूति नितान्त अवैयक्तिक होकर केवल सामाजिक रूप ग्रहण कर लेती है। इनमे सामाजिकताका आग्रह और सार्वभौम प्रभावके बीज रहते हैं । करुण रसमे अनुभूतिकी तीव्रताका कारण उसका सार्वभौम रूप है। चौथे रूपमे यह चेतना आदर्श रूपमे उपस्थित होती है । विश्वका कण-कण इस सौन्दर्यसे उन्मेषोद्भासित होता है । यहाँ वैयक्तिक जीवनके

विकास-क्रमकी बाधाके रूपमें इसके दर्शन नहीं होते बल्कि जान पडता है कि यह विकीर्ण सौन्दर्य व्यक्तिगत चेतनाको उन्मेष और बल देता है। सम्पूर्ण प्रकृतिके सौन्दर्यके साथ आत्म-भावना एकीकरण इसी रूपमे होता है।

इस प्रकार सौन्दर्यानुभूति वैयक्तिकताकी सीमा छोड़ सार्वभौमके क्षेत्रमें प्रवेश करती है। यहाँ रागात्मक संघर्षका स्थान नही रहता बल्कि सौन्दर्य-भावना पूर्ण, अन्वित और अविच्छिन्न रहती है। कला इसी सौन्दर्यको भिन्न-भिन्न माध्यमसे प्रकट करती है। माध्यमकी संकीर्णता अथवा विस्तार, स्थूलता अथवा सूक्ष्मताके कारण विभिन्न कला-स्वरूपोंकी विभिन्न आकृति और प्रभाव है। तूलिका और रंगका माध्यम स्वीकार करनेवाली चित्रकला है और नादको स्वीकार करनेवाली सगीतकला। काव्य संगीत और चित्र-का सन्तुलन है। गीतिकाव्यमे सगीत और चित्र भिन्न-भिन्न नहीं दीखते बल्कि एकाकार, एकात्म और अन्वित हो जाते हैं। सौन्दर्यानुभूति-के भी वैयक्तिक रूपके कारण इसे सीमाओका बन्धन स्वीकार करना पड़ता है। किन्तु अनुभूतिकी तीव्रता काव्यके इस सगीतात्मक चित्र और चित्त-मत्तापूर्ण संगीतको नवीन आवेश देती है। गीति-काव्य इस प्रकार सौन्दर्या-नुभूति एवं आनन्दानुभूतिके तीव्रतम क्षणो और आवेशकी अवस्था-का परिचय देता एव पाठककी कलात्मक भावनाको सन्तुष्ट करता है।

गीतिकाव्य और नैतिकताका सम्बन्ध कलामे नैतिक भावनाकी ओर ले जाता है। कला प्रचार नहीं है, प्रचार-कला चाहे स्वतत्र कलाका रूप क्यो न धारण करे? कलाकार उपदेशक भी नहीं; व्याख्याता भी नहीं। गीति-काव्यकी अनुभूति-प्रधानता नैतिकताके आग्रहके लिए उसे अधिक अवसर नही देती। किन्तु कला अनैतिक भी नही। कलाकी अपनी नैतिकता है जिसके कारण कलाके विकास और संस्कार हैं। समाजिकता-का दायित्व स्वीकार कर कला नैतिकताका प्रचार नहीं कर सकती।

कलाकी सफलता उसे भावात्मक और रागात्मक आवेश देनेमे है। सामाजिक भावनासे आवृत्त कला, किन्तु, समाज-दर्शन और उत्क्रान्तिका प्रतिबिम्ब मात्र नही; वह वाद-विशेषका मोर्चा भी नही बन सकती। गीतिकाव्यकी आत्मा नैतिकता-प्रचारका आग्रह स्वीकार नहीं कर सकती। गीति-काव्यकी आनन्दोपलब्धि कार्यमे परिणति है, उपदेश और प्रचारमे नही। कला अपने प्रति विद्रोह नही कर सकती।

गीति-काव्यकी कसौटी

गीति-काव्य सहसा उमड़ पड़नेवाली अनुभूतिकी सहज, स्वतः और तात्कालिक अभिव्यक्ति नही है, यदि ऐसा होता तो उसे छन्दके भीतर बाँध सकना सम्भव न होता और न उसे भावनाका स्वरूप ही दिया जा सकता। रागात्मक अनुभूति जो वैयक्तिक होकर भी साधारणीकरणद्वारा सार्वभौम और सार्वजनीन बन जाती है, गीति-काव्यकी जननी है। अनुभूतिके विस्तार और अभिव्यञ्जनाकी विभिन्नताके कारण, गीति-काव्य लोक-प्रिय और प्रमुख माध्यम है। व्यक्तित्वकी विभिन्नता इसे नवीन स्वरूप देती है। किन्तु इस साधारणीकरणका यह भी अर्थ नहीं कि आवेशके क्षणोंके समाप्त होनेपर कल्पनाद्वारा उसका आवेश कवि उत्पन्न करता है। जिस समय कल्पनाद्वारा वह गीति-काव्यके उपयुक्त क्षणोंकी सृष्टि करना चाहता है उस समय उसकी कविता विचार-प्रधान हो जाती है, भावात्मकताका अनेकांशमे अभाव हो जाता है। गीति-काव्यका मुख्य विषय उसमें अभिव्यञ्जित रागात्मक अनुभूति है, कुछ चित्रमत्ता नही जिसके द्वारा उन अनुभूतियोको वह अभिव्यक्त करता है। संगीतात्मकता, चित्रमत्ता आदिका महत्व उस रागात्मक अनुभूतिकी व्यञ्जना और सकेतमें है। ये उपकरण केवल अग हैं, अगी नहीं।

गीति-काव्य सार्वजनीन और सार्वभौम अनुभूति, राग और भावनाकी अभिव्यक्ति है , जिनकी व्यञ्जना इसके द्वारा होती है । मानवीय वृत्तियों-को गीतिकाव्य जाग्रत करती है और इस प्रकार गीति-काव्य जीवनको विचारके क्षेत्रसे दूर कर भावोके मनोराज्यमे ले जाता है, जहाँ द्विधा-संकोच और वितर्कका स्थान नहीं, जहाँ एकात्मता, अन्विति और आवेश है, जहाँ जीवनकी साधारण क्षुद्रताओसे त्राण मिल जाता है, जहाँ जीवन विशृंखल और विच्छिन्न नही बल्कि सन्तुलित और अविच्छिन्न दीख पड़ता है । गीति-काव्य सहज वृत्तियोको सन्तुष्ट नही कर सकता बल्कि उसे जाग्रत कर उन्हे नियत्रित करनेका प्रयास करता है । 'कविता तर्क प्रणाली नही वह तर्क प्रधान भी नही । उसमें मानसिक प्रभावोकी अभिव्यञ्जना है ।' शेलीका यह कथन सामान्य काव्यसे अधिक गीति-काव्यकी आत्माके समीम है । गीति-काव्य एक ओर संगीतात्मक है और दूसरी ओर आत्मनिष्ठ अर्थात् कविकी वृत्तियोका गायक, यद्यपि उसमे सार्वभौमताका अभाव नहीं । इसलिए नाटककी भाँति रागात्मक संघर्ष और संकरत्वके लिए स्थान नही और रागात्मक अनुभूति संगीतात्मक परिधानकी अपेक्षा रखती है । कथानक और वर्णनका आधार अतः अधिक नहीं लिया जा सकता ; उतने वर्णनसे ही प्रयोजन हो सकता है जितनेसे वृत्तिकी व्यञ्जनामे सुविधा हो । तर्क, वर्णन, विचारोके आरोप आदिसे यह मुक्त होता है । वास्तविक जीवनगत भावावेश ही गीतात्मक भावावेशके मूलमे हैं, किन्तु वास्तविक जीवनकी प्रत्येक अनुभूति गीतात्मक आवेश उत्पन्न नहीं कर सकती, नहीं कर पाती । केवल सौन्दर्यानुभूतिके द्वारा आनन्दानुभूति और रसास्वादनकी उपयुक्तता उसे कलात्मक अथच गीतात्मक बनाती है । सूक्ष्म मानसिक विश्लेषणद्वारा प्रेरणा और उसके स्वरूपके विवेचनकी चेष्टा हुई है किन्तु प्रेरणा मुख्य रूपमे मानसिक अतः विवेचन व्यावहारिक है, यह विश्लेषण

अस्वीकार कर देती है। सीमा-बोध हो नही सकता क्योकि एक दूसरे-की सीमाको इस प्रकार स्पर्श करती दीख पड़ती है कि वह उसीकी सीमा जान पड़ने लगती है। गीति-काव्य वैयक्तिक अनुभूतिकी अभिव्यञ्जना है जो भावना और अनुभूतिके अनुरूप स्वरूप ग्रहण करता है। इस प्रकार छन्द, शब्द आदि विधानके उपकरणको इस प्रकारका होना चाहिए कि उनके द्वारा कविकी वृत्तिका संकेत मिले और अभिव्यक्तिकी क्षमताकी अभिव्यञ्जना हो। छन्दकी गति, शब्दोके लय और भावनाकी गतिका सन्तुलन न होनेसे गीतिकाव्यको कदापि सफलता नही मिल सकती। संगीतात्मकताको रक्षाका अर्थ संगीतके शास्त्रीय विधानकी रक्षा नही अपितु भावनाका प्रसार और छान्दिक गतिका समन्वय है। यही छन्दकी चपलता, कोमलता एवं अपरिमित तरंगमत्ता सगीतात्मकता है और गेय काव्यका यही भाव गीति-काव्यके साथ अवशिष्ट है। गीति-काव्यकी सफलता अनुभूतिकी अक्षुण्णतामे है अर्थात् एक ही रागात्मक और काव्य-गत वृत्तिकी अभिव्यञ्जना सम्पूर्ण गीतिमे होनी चाहिए। गीति-काव्य इस अर्थमे पूर्ण अद्वैतवादी है और इसमें द्वैतके लिए स्थान नही। रागात्मक संघर्ष नहीं बल्कि अन्विति इसमे अपरिहार्य और अपेक्षित है तथा इसकी अभिव्यञ्जना सरल, निर्व्याज, अप्रयास-कृत होनी चाहिए। इन गुणोके कारण गीति-काव्यकी संवेदनशीलतामे विस्तार आ जाता है। गीति-काव्यमे विस्तृत समुदायको प्रभावित करनेकी सामर्थ्यका यही कारण है। कविताके प्रथम स्वरूपका यह काव्यात्मक और कलात्मक विकास है। इसमे सम्मिश्र विचारोके लिए स्थान नहीं; बौद्धिकताका यह बोझ नहीं सँभाल सकता अतः विचारको अनुभूतिके साथ मिलकर भावनाका स्वरूप लेना पड़ता है। गीति-काव्य अतः सहज संक्षोभ्य एव सुकुमार है रसात्मकता जिसकी आत्मा है।

निज कवित्त केहि लाग न नीका। सरस होउ अथवा अति फीका॥
जे परभनिति सुनत हरषाहीं। ते बर पुरुष बहुत जग नाहीं॥

—तुलसीदास

× × ×

शब्दानां विवनक्ति गुम्फनविधीनामोदते सूक्तिभिः।
सांद्रं लेढि रसामृतं विचिनुते तात्पर्यमुद्रां च यः॥
पुण्यैः संघटते विवेक्तृविरहादन्तर्मुखं ताम्यतां।
केषामेव कदाचिदेव सुधियां काव्यश्रमज्ञो जनः॥

—राजशेखर (काव्य मीमांसा)

['विवेकी समालोचक न मिलनेसे भीतर-ही-भीतर घुलते और मुर्झाते कुछ कलाकारोके भाग्यसे कदाचित ही कोई ऐसा पारखी और परिश्रमज्ञ भावुक निकल आता है जो उनके शब्द-गुम्फनकी बारीकियोमे से एक-एकको समझता है, उनकी सुन्दर उक्तियोपर रीझता है, उनके तात्पर्यकी भाव-भंगी या लोच-लचकको ढूँढ निकालता है और उनके गाढे रसामृतका जी खोलकर स्वाद लेता है।']

× × ×

Reviewers, with some rare exceptions, are a most stupid and malignant race. As a bankrupt thief turns thieftaker in despair, so an unsuccessful author turns critic.

—P. B. Shelley.

[कुछ विरल अपवादको छोड़कर आलोचकोंकी जाति अत्यन्त मूर्ख और दुराशय होती है। जिस प्रकार दिवालिया (परिक्षीण) चोर निराश होकर चोर पकड़नेवाला हो जाता है, उसी प्रकार असफल लेखक समालोचक बन बैठता है।]

परख

मन मस्त हुआ तब क्यो बोले ।
हीरा पायो गाँठ गठियायो, बार-बार वाको क्यों खोले ।
हलकी थी तब चढ़ी तराजू, पूरी भई तब क्यों तोले ।
सुरत कलारी भइ मतवारी, मदवा पी गई बिन तोले ।
हंसा पाये मानसरोवर, ताल तलैया क्यों डोले ।
तेरा साहब है घर माँही, बाहर नैना क्यों खोले ।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो, साहब मिल गये तिल ओले ।

—कबीर

जीवन मात्र अस्तित्व नहीं, केवल स्पन्दन नहीं, बल्कि 'जिन्दगी जिन्द:दिलीका नाम है' । अतः जीवनमे मात्र सत्य है अनुभूति । मनुष्य अपनी अनुभूतियो, वासनाओं, और विचारोमे जीवित रहता है । जीवन-की विस्तृत भूमिकाके रूपमे अनुभूतिका आलोक है और सारी अनुभू-तियोंमे श्रेष्ठ है प्रेम । जिसमे सारा ध्यान खिंचकर केवल एक बिन्दु-पर आ टिकता है, जहाँ दुराव नही, द्विधा नही, संकोच नही । व्यक्ति अपने व्यक्तित्वकी लघु सीमासे हटकर अनन्त व्यापक सीमामे जब प्रवेश करता है' जब 'पर' ही 'स्व' हो जाता है' प्रेमकी-अनुभूति होती है । किन्तु यह अनुभूति सबको नहीं होती, समान भावसे, समान रूपमें नही होती । तीव्रतम क्षणोंमे अनुभूतिकी व्याख्या सम्भव नहीं, उसका विश्लेषण शक्य नही । जबतक प्रेम सीमा और बन्धनको देखकर चलता है, वह प्रेमा-नुभूतिकी चरम अवस्था नही । यह प्रेम सहज और सर्वसम्भव भी नहीं जिसे व्यक्तित्वका, निजत्वका मोह है उसे इस मार्गमे आना भी नहीं चाहिए । यहाँ आकर पाना नही बल्कि खोना ही खोना है और अपने आपको खोना ही एक मात्र पाना है । जबतक अनुभूतिकी तीव्रता जगी

नहीं, मन इधर-उधर भटकता है, मन एक बार जब प्रेम बन्धनमें बँध जाता है उसे भागनेका अवकाश कहाँ, यदि वह भाग पाता, यदि भाग सकता है, वह प्रेम नहीं, प्रीति नहीं ।

छनिक चढ़ै छन ऊतरै, सो तो प्रेम न होय
आठ पहर भीना रहै, प्रेम कहावै सोय ।

वासना प्रेम नही , इसका कारण केवल काम्यता और अकाम्यता नही बल्कि अपेक्षाकृत क्षणिकता और स्थायित्व है । प्रेमकी इस प्रतीति-के आगे और कोई भावना जगती नही । प्रेम वह प्रकाश है जिसमें प्रेम छोड़कर और कुछ दीख पड़ता नही, दीख सकता नही । ऐसी अवस्थामें प्रेमी और किसी वस्तुकी कामना नही रखता, प्रिय ही एक मात्र काम्य है:—

नैना अन्तर आव तूँ नैन मूँद तोहि लूँ
ना मैं देखूँ और को, ना तोहिं देखन दूँ—कबीर

प्रियको अन्तरमे इस प्रकार छुपा लूँ, कि दूसरा कोई उसे देखने न पावे और न प्रेमी ही किसीको देखे । प्रियके अतिरिक्त और कोई सत्य नहीं, और दूसरा लक्ष्य नही ।

हर सुबह उठ के तुझसे मागूँ हूँ मैं तुझी को
तेरे सिवाय मेरा कुछ मुद्आ नहीं है ।—मीर

तेरे सिवाय मेरा कुछ मुद्आ जब नही है, जब तुम्हें प्राप्त कर लिया, जब प्रेम ही अलौकिक अनुभूति हो गया, जीवनकी इस भ्रान्त नौका-को जब किनारा मिल गया फिर विकलता क्यों, व्याकुलता क्या ? मस्ती जबतक थी नहीं ; जबतक प्रेमकी इस अगाध अम्बुधिसे परिचय न था, मन इधर उधर भटकता रहा, खोज करता रहा, जबतक प्रियको जाना-पह-

चाना न था, जबतक उसकी अनुभूति न थी, अन्वेषण आवश्यक था, खोज जरूरी थी। प्रियकी जब अनुभूति हो गयी, अनुभूति तीव्रतम हो उठी फिर बोलना कैसा? प्रेमका ढिढ़ोरा पीटना कैसा 'मन मस्त हुआ तब क्यो बोले?' हृदयमे जबतक यह प्रतीति पूर्ण नहीं हुई थी, जबतक अपने प्रेम और प्रियके प्रति अखण्ड, अनिर्वचनीय एवं पूर्ण विश्वास न था, अविचलित आस्था न थी, उसके खो जानेका भय था। उसे बार बार देखनेकी आवश्यकता थी—कही खो तो नही गया'। 'दिलके आईने'में बार-बार 'गर्दन झुका' कर देखनेकी अपेक्षा थी—

दिलके आईने में है तस्वीरे यार
जब जरा गर्दन झुकायी देख ली।

किन्तु प्रेमकी वास्तविक और सच्ची अनुभूति जब हो गयी, अन्तस्तलका जब रस उमड़ पाता है, फिर इतनी सुध-बुध कहाँ, बार-बार खोलकर देखनेका अवकाश कहाँ? आस्था और विश्वाससे परिपूर्ण प्रेमानुभूति एव आत्मानुभूतिमें द्विधा और संकोच, अविश्वास और अनास्थाका अवसर कहाँ?' इस बेखुदीमें होशहवास कहाँ? 'हीरा पायो गाँठ गठियायो' फिर 'बार-बार वाको क्यो खोले?' उस गाँठको खोलनेकी आवश्यकता ही कहाँ रह गयी। कबीरकी प्रीति ऐसी नही जिसे आँधी उखाड़ सके, निराशाका ताप झुलसा सके। इसमे अतृप्ति नही, आकाक्षा नही, मोह नही, उद्वेग नही, उच्छृखलता नही, आस्था है, विश्वास है, उन्माद नही मस्ती है, तीव्रता है पर कर्कशता नहीं, औत्सुक्य है, पर अवसाद नहीं। यह प्रेम साधारण नही। इसमे परखनेका आवेश नहीं, वह जानता है जो परखनेका प्रयास करता है वह हीरा नहीं कौड़ी पहचानता है—

'हीरा पाय परख नहिं जाने, कौड़ी परखन करता है'

प्रेमी जानता है, कि विचार, बुद्धि और तर्कके परे प्रिय है । सौन्दर्य और प्रेमकी अनुभूतियाँ अतर्क्य है, बुद्धि-विलास, बौद्धिकता एव तर्क इसकी सीमाओका स्पर्श नही कर पाते, भावुकता तथा भावात्मकताके द्वारा ही अनुभूति सम्भव है । अकबर इलाहाबादीने भी कहा —

मैं बीमारे होश था, मस्ती ने अच्छा कर दिया ।

होश (बुद्धि) रोग है और उसकी ओषधि है अनुभूति; प्रेमकी अखण्ड और अविचलित अनुभूति इस प्रेममे बन्धन नही; बौद्धिकताका आधार नहीं; तर्कका समावेश नही, मस्ती है, अनिर्वचनीयता है, तीव्रता है, आवेश है, आशा है, विश्वास है, इसीलिए गाँठको बार-बार खोलनेकी आवश्यकता नहीं, अपेक्षा नहीं ।

किन्तु प्रीति भी सरल नहीं; प्रिय भी सुगम नही । फिर भी प्रेमका 'मद' मिला, इतना पी लिया कि उसकी कोई सीमा नही, हद नही रह गयी। प्रेम असीम है, बेहद्दी है वह सीमा और असीमके परे है । सीमामे असीमता है और असीमतामे सीमाका समावेश । ससीम और असीमका भेद व्यावहारिक है, तत्त्वगत नही । प्रेम इन दोनोसे परे है । सीमा और असीमताके बन्धनसे मुक्त लौकिक नही, अलौकिक नही। वह भिन्न अनुभूति है । इसी लिए इसमे कोई बन्धन नहीं, कोई बाधा नही, यह अविश्रान्त, अथक जीवन-प्रवाह है, जिसमे दूरीका बन्धन नही, समीपताका दुराव नहीं । ऐसा प्रेमी विरला ही मिलता है—

सारा सूरा बहु मिले, घाइल मिलै न कोइ
घाइल ही घाइल मिलै, तब राम भगति दिढ़ होइ । कबीर

'घायलकी गति घायल जाने की जिन घायल होय' (मीरा) अतः जबतक किसी घायलसे भेंट नही तबतक प्रेमकी प्रतीति कहाँ, जबतक

चोट नही लगी फिर चोटका मजा क्या मालूम ? संसार बुद्धिका मोल-तोल करता है, नाप-जोख करता है, और ससीम-एवं ,असीमकी परिमिति देखना चाहता है , पुस्तकीय ज्ञानकी कसौटीपर प्रेमकी जॉच करना चाहता है । प्रेम अतः पुस्तकोकी सीमामे आनेवाला ज्ञान नही, यह परम सत्य है, जीवनकी पूर्णता इसी प्रेममे है । सूरदासने भी कहा है—

> प्रेम प्रेम सो होय प्रेम सो पारहि जैये
> प्रेम बॅधे संसार प्रेम परमारथ पैये ।

कबीर भी कहते हैं—

> पुस्तक पढ़ि-पढ़ि जग मुआ, हुआ न पंडित कोय ।
> ढाई अच्छर प्रेमका, पढ़ै सो पंडित होय ।।

प्रेम ही वह तत्त्व है जो जीवनको पूर्णता और अन्विति देता है। इसके अभावमे जीवन सूना सूना है । अनुभूतिकी तीव्रता जहॉ एक ओर मौन बना देती है, जहॉ अभिव्यक्तिको अशक्त कर देती है, वहॉ जीवनकी अपूर्णतामे रसका वह अमृत उडेल देती है कि जीवन-प्याला छलक पडता है। उस शून्यतामे गुरुता आ जाती है, वह गुरुता तोलनेकी वस्तु नही । उसके तौलने योग्य कोई 'बटखरा' नही बना, कोई मान तैयारतक नही हुआ। जब पूर्ण हो गया, फिर तौलनेकी आवश्यकता ही क्या रही । 'मनको मनसे तौलिये दो मन कभी न होय' । अतः 'हलकी थी तब चढ़ी तराजू पूरी भई तब क्यो तौले ?'

पियाका निवास ऊॅचेपर है, मनमे लज्जा भरी है, झिझक आती है, पथ बीहड़ है, मार्गमे बाधाऍ हैं। पॉव ठहरते नही, गिरनेका भय ही नहीं, बल्कि पैर लड़खड़ा उठते हैं, उठतेतक नही । फिर-फिर उठकर सॅभलने-पर भी सॅभलना कठिन है । अंग-अंग कॉप रहे हैं, मनमे आशंका भरी

है, भ्रममें मन पडा है, सँकरा मार्ग है, निपट बारी, निपट अनाड़ी रही है। सँकरा मार्ग है, अटपटी चाल है, भला मिलन कैसे हो —

पिया मिलनकी आस, रहौं कबलौं खरी।
ऊँचे नहि चढ़ि जाय, मने लज्जा भरी॥
पाँव नहीं ठहराय, चढूँ गिर-गिर परूँ।
फिरि-फिरि चढ़उँ सम्हारि, चरन आगे धरूँ॥
अंग-अंग थहराइ, तो बंहुविधि डरि रहूँ।
करम कपट मग घेरि, तो भ्रममे परि रहूँ॥
बारी निपट अनारि, ये तो झीनी गैल है।
अटपट चाल तुम्हार, मिलन कस होइहै॥

मिलनमे बाधाएँ, थी; कठिनाइयाँ थी, इनका अतिक्रमण कर आज मिलनका संयोग मिला है। घूमता-घामता, भटकता हुआ हंस मानसरोवरके तीर पहुँच गया है, जहाँ चुगनेके लिए मोती है, जहाँ आनन्द है, सौन्दर्य है, अनुभूतिकी गम्भीरता है। इतनी विपत्तियाँ सहन करनेके बाद जब गन्तव्य स्थान मिल चुका है तब इधर उधर भटकनेकी जरूरत क्या? हंसको जब मानसरोवरका तीर मिल गया, कीचडोसे भरी ताल-तलैयाकी अपेक्षा वह क्यो करे? वहाँ तो बगुलोकी पंक्ति शोभा देगी, वहाँ हसोंका क्या काम? प्रेमकी जब अनुभूति हो गयी, साधारण ज्ञान-विज्ञानके भ्रम-जालकी आवश्यकता कहाँ? आत्माने जब आनन्द-लोकमें प्रवेश पा लिया, जीवनकी क्षुद्रताओके प्रति उसे मोह कैसा? **'हंसा पायो मानसरोवर'** फिर **'ताल-तलैया क्यों डोलै?'** किन्तु मानसरोवर कही दूर नही; आनन्दलोक अन्तरमे है। उस प्रियको ढूँढनेके लिए मन्दिर और मस्जिदमे जाना नहीं पड़ेगा, बन-बन जंगलकी धूल भी छाननी नहीं

पड़ेगी, गर्दन भी झुकानेकी आवश्यकता नहीं। वह प्रियतम दूर नहीं जो सन्देश लिख भेजा जाय, पत्र लिखा जाय,—

प्रीतमको पतिया लिखूँ, जो कहुँ होय बिदेस।
तनमे मनमें नैनमें, ताको कहाँ सँदेस॥

मीरा भी कहती है—

सबके पिय परदेस बसत हैं, लिखि लिखि भेजैं पाती।
मोरा पिय हिरदयमे बसता, गूँज करूँ दिन राती॥

प्रियका बास अन्तरमे है, बाहर ढूँढ़नेकी चाह क्यों? उसकी चिर ज्योति अन्तरमे जल रही है, उसके प्रकाशसे सारी सृष्टि प्रकाशित है। उसकी प्रभासे ही संसार आलोकित है। प्रिय मनमे बसा है। **'मेरा साहब है घटमाँही, बाहर नैना खोले ?'** घटमे बसनेवाला प्रिय केवल प्राणवल्लभ ही नहीं, स्वामी भी है। उसने तन, मन, नैन सबपर अधिकार ही नहीं कर लिया बल्कि सर्वत्र रम गया है। वह रमण करने-वाला प्रिय केवल आँखोका विषय नही रह गया बल्कि जीवनका क्षण-क्षण और कण कण उसकी आभासे प्रज्ज्वलित और प्रदीप्त है। आज-तक मन उसे ढूँढ़नेके लिए बाहर बाहर भटकता रहा, अन्तरमे झाँककर उसे देखनेका प्रयासतक नही किया। कस्तूरी मृगकी भाँति अपनी सुगन्धिकी खोजमे भ्रमित हो जीवन व्यर्थ बहता जा रहा था, आज जीवनका चरम लक्ष्य प्राप्त हो गया। प्रीतिकी अनुभूति हुई, प्रियकी प्रतीति हुई, प्रिय हृदय-मे बसता है 'ज्यो पहुपनमें बास' इसलिए कस्तूरी मृग' की भाँति 'फिर-फिर घास' ढूँढ़नेके भ्रममे पडना उचित नही। आत्मा-परमात्माका ही स्वरूप है। आत्मा परमात्मासे विभिन्न होकर अलग सत्ता धारण करती है किन्तु

इसका यह स्वरूप उपलक्षण मात्र है। आत्माका समष्टिगत नाम परमात्मा है वस्तुतः परमात्मा आत्मासे विभिन्न नही। कबीरका वह निर्गुण प्रियतम आत्मतत्त्वकी उपलब्धिमे ही मिलेगा—ऐसा दार्शनिक मतवाद कहता है। कबीरकी यह दार्शनिकता अनुभूतिके साथ मिलकर भावना उत्पन्न करती है। 'मेरा साईं है घट मॉही'मे 'मन-प्रतिष्ठा'की साधारण चेष्टा है, दार्शनिक भाषा और शब्दावलीका प्रयोग है, बुद्धि-विलासका सामान्य परिचय है किन्तु भावात्मकता अमान्य नही। प्रिय जब केवल ऑखोका विषय न रहकर तन-मन सभीका विषय हो उठता है, अनुभूति जब इतनी तीव्र हो उठती है कि वह सदा पास ही दीख पड़ता है दूरीका भाव लुप्त हो जाता है। उस समय प्रेमी और प्रियतम, गायक और गेय मिलकर एक हो जाते हैं। वैसी अवस्थामे अविश्वास नही, निराशा नही, व्यथा नही, पीड़ा नही, दूरत्व नही, बल्कि आशा है, दृढ़ता है, विश्वास, अशेष आनन्द है, मस्ती है, मौज है; बाधा नही, बन्धन, नही, दंशन नही, सौन्दर्य है, सुषमा है, असीम उल्लास है। वह असीम उल्लास जीवनके कृत्रिम घेरेको तोड़कर असीमकी ओर उच्छ्वसित हो उठता है, प्रिय भी असीम हो उठता है, असीम ही प्रिय बन उठता है। मिलनकी एकान्त घड़ीमे विरहकी आशका नही। मात्र मिलनका सोच्छ्वास अभिनन्दन है, वन्दन है—

कहैं कबीर सुनो भाई साधो, साहब मिल गये तिल ओले।

यह उल्लास उस प्रदेशमे पहुँचा देता है, जहॉ—

दिवस औ रैन तहँ नेक नहिं पाइये,
प्रेम-परकास के सिधु मॉही॥
सदा आनन्द दुख-दन्द व्यापै नहीं,
पूरनानन्द भरपूर देखा॥

भर्म और भ्रान्ति तहँ नेक आवै नहीं, ॥
कहैं कब्बीर रस एक पेखा ॥

जहॉ दिन और रातकी पहुँच नही, जो प्रेमके प्रकाशका समुद्र है, जो सदानन्दका विशाल निर्झर है, जहॉ दुख और द्वन्द्वकी पहुँच नहीं, जहॉ पूर्ण आनन्दका साम्राज्य है, जो भ्रम और भ्रॉतिसे परे है, जहॉ आनन्द के सहज एक रसका प्रवाह है। कबीरके प्रेमकी अनुभूति असीमका आकार ग्रहण कर लेती है। अनुभूतिकी तीव्रताके साथ विचारका सामञ्जस्य है। भावना और अभिव्यञ्जनाका संतुलन है। कवि और पाठकमे दार्शनिक शब्दावलीके कारण आनेवाला व्यवधान कबीरकी वृत्तिके कारण है किन्तु बौद्धिकताका यह आग्रह रागात्मिका वृत्तिको क्षुण्ण नहीं करता। कल्पना और प्रकृतिके विशद चित्र इसमे नहीं, कबीरकी पहेली-प्रवृत्तिके दर्शन भी यहॉ नहीं। अनुभूतिपूर्ण वृत्तिका सहज अविरल प्रवाह है, जिसमें सौन्दर्य है, भावुकता है, संगीतात्मकता है, राग है, और है सवेदनशीलता।

सखि, कि पूछसि अनुभव मोय।
से हो पिरीत अनुराग बखानिये
तिल तिल नूतन होय।
जनम अवधि हम रूप निहारलु
नयन न तिरपित भेल।
से हो मधु बोल स्रवनहि सूनल
स्रुति पथ परस न भेल।
कत मधु जामिनी रभस गमाओल
न बूझल कइसन केल।
लाख लाख जुग हिय मँह रखलु
तइयो हिय जुड़ल न गेल।

कत विदग्ध जन रस अनुमोदई
अनुभव काहु न पेख।
विद्यापति कह प्रान जुड़ाएत
लाखवो मिलल न एक ॥

—विद्यापति।

सखि क्या कहूँ यह अनुभव कैसा है ? ऐसा अनुभव तो और कभी हुआ नहीं। जीवनकी अन्य अनुभूतियोसे इसमे विभिन्नता है जहाँ अन्य अनुभूतियाँ काल पाकर अपना आवेश और तीव्रता खोती जाती है, वहाँ यह पल-पल और गम्भीर होती जाती है। आँखोंमे छलियाके जिस रूपने घर कर लिया है, वह ओझल होता नही, दूर भागता नहीं और कोई दूसरा रूप आँखोमे समाता नहीं। प्रेमका यह अनुभव अपनी ही तरह है। ऐसा कभी जान तो पडा नहीं था। इसका स्वरूप पहचानमे नही आता। सखि, बार-बार पूछती हो,—यह क्या है ? कैसे कहूँ—'यह अनुभव कैसा है' ?—

छाती जला करे है, सोजे दरूँ बला से।
एक आग सी लगी है, क्या जानिये कि क्या है ?

सच 'क्या जानिये कि क्या है, कोई अनुभवी ही बतला सकता है कि यह क्या है ? किन्तु, नही, वह भी नही बतला सकता, वह अनुभव तो करता है किन्तु समझता नही, बस जानता है 'एक आग सी लगी है।' किसी वैद्यके निदानमें आनेवाला वह रोग नही। मीरा अपने चिकित्सकसे कहती है—

बावल बैद बुलाइया पकरि दिखाई बाँह।
मूरख बैद मरम नहिं जानत करक करेजे माँहि ॥

जाहू॑ बैद घर आपनो, तेरो किया न होय।
मैं तो दाधी बिरह कि रे काहे को ओषधि देय॥

इस रोगकी कोई चिकित्सा नही, यह अनुभूति एकान्त नवीन है। मूर्ख वैद्य इसे समझ नही सकता। अनुभवकर्त्ता भी समझ नही पाता आखिर यह क्या है ? शायद इस प्रकारकी अनुभूतिको ही लोग प्रेम कहते हैं—

शायद इसीका नाम मुहब्बत है 'शेफ्ता'
एक आग सी है दिलमें हमारे लगी हुई।'

जब इस अनुभूतिको स्वयं समझना कठिन है जब इसकी खुद पहचान नही, फिर क्योकर कहा जाय यह क्या है ? और बार-बार 'सखि! कि पूछसि अनुभव मोय ?'

जीवनका साधारण आकर्षण इतना गम्भीर हो उठेगा कौन जानता था ! कौन समझता था कि अपने आप बॅधे बन्धनको तोड़ सकना शक्य नही होगा। यह वह बस्ती नहीं जो फिरसे बसायी जाय। अनुराग भी ऐसा नही जो स्थिर हो जाय, क्षण-क्षण, पल-पल, और अधिक गम्भीर होता जा रहा है। इसका स्वरूप स्थिर नही, कि इसका सम्यक दर्शन किया जाय। यह तो तिल-तिल कर नवीन होता जा रहा है। इसे किसी प्रकार शब्दोंके बन्धनमे बॉधा नही जा सकता। अनुभव करनेवाला अनुभूतिकी गम्भीरतामे इस प्रकार तल्लीन हो जाता है कि मुखरता जाती रहती है वाणी मूक हो जाती है। 'मन मस्त हुआ तब क्यो बोले ?' और फिर यह अनुभूति तो तिल-तिल कर नवीन होती जाती है, इसे शब्दोमें बॉधा ही कैसे जाय और फिर भी सखि, बार-बार 'यह अनुभव कैसा है' पूछती हो ? क्या कहूॅ 'यह कैसा है ?'

यह नित्य नवीन रूपमे उपस्थित होनेवाली बिहारीकी नायिकाकी भॉति है जिसके लिए बिहारीने लिखा—

लिखन बैठि जाकी छबिहिं, गहि गहि गरब गरूर
भयो न केते जगतके, चतुर चितेरे कूर ॥

चित्रकार बिचारा क्या करे ? उस छबिको ऑक सकना कठिन था। एक तो जहॉ ऑखे उठा उसे देख उसकी शोभा देखनेका प्रयास करता है कि उसकी ऑखे उठी रह जाती है, टकटकी बॅध जाती है। ऑखे चित्रपटपर झुकनेसे अस्वीकार कर देती है। ऑखोमे ऐसी बेहोशी छा जाती है कि चित्र ऑकनेकी सुधि ही नही रहती। कुछ साहस कर चित्र ऑकनेका प्रयास करते है किन्तु चित्रके अकित हो सकनेके पूर्व ही उसका रूप बदल जाता है, वह नवीन रूपवाली दीख पड़ने लगती है। परिश्रम व्यर्थ जाता है। वह दूसरा चित्र ऑकनेका प्रयास करता है। किन्तु इसमे भी सफलता पहले चित्रसे अधिक नही मिलती। लाचार कूॅची फेक वह भाग खड़ा हो उठता है। यह अनुभूति भी वैसी ही है। यह पल-पल नवीन होती है। इसमे पुरानापन नही आता, जी उचटता नही। प्रेमानुभूतिका यही रहस्य है। प्रेमास्पद जबतक नित्यनवीन रूपमे दीख पडता रहे, प्रेमाधिक्यका आवेश है। प्रेमी अपने प्रियको प्रत्येक दिन, हर घडी, प्रतिपल नवीन देखता है। वह सोचता है, अरे ! उसका यह रूप तो देखा था ही नही। वह विचित्र पहेली सुलझती नही; सुलझानेपर और उलझती है। जिस दिन सुलझ जाय उस दिन प्रेमका अन्त समझना चाहिये। प्रेमकी स्थिरता, और अनन्तताका यही रहस्य है। गम्भीर प्रेमके आवेशमे मालूम नही पड़ता यह अनुभूति कैसी है। और बार बार 'सखि कि पूछसि अनुभव मोय ?'

यह साधारण आकर्षण मात्र नही, दिलकी कुनमुनाहट मात्र नही, यह जीवनकी गम्भीर वृत्ति है, रागात्मक आवेश है, जिसमे सुध-बुध नही। यह प्रेमकी बेलि है जिसकी 'मूल पताल गयी', हृदयके अतल तलमे स्थापित हो गयी है 'अब कैसे निरवारू सजनि ?' सब कुछ छोड़ा जा सकता है किन्तु रूपका यह मोह, प्रेमका यह आग्रह कैसे छोड़ा जाय ? प्यास मिटती नही, पीनेसे और प्यास बढ़ती ही है। घूँट-घूँटकर पीनेसे भी कोई लाभ नही, एक बार जीमे आता है, प्रियतमका रूप ऑखोमे भर लूँ जिसमे फिर कभी और कोई दूसरा रूप देखनेकी अभिलाषा मात्र शेष न रहे। किन्तु यह आशा पूरी होती नही, पूरी हो भी नही पाती। जी चाहता है, प्रियका रूप ऑखोके सामने रहे, कभी ऑखोसे ओझल न हो। युग-युगसे इस रूपके आसवका पान करती आ रही हूँ, पर कभी तृप्ति नही होती, कभी यह प्यास बुझ नहीं पाती। जिस रोज प्यास बुझ जायगी, उस दिन प्यार भी न रहेगा, उस दिन फिर देखनेकी चाह भी नही रहेगी। प्रेमकी नवीनतामें यह अमिट प्यास है। प्रेम इसीमे और इसीसे जीता है। प्यास ही जीवन है, तृप्ति ही मृत्यु है। अभाव ही जीवन-चक्रकी धुरी है और अभावकी पूजा ही जीवन है। फिर वह सौन्दर्य भी तो साधारण सौन्दर्य नही। ज्ञात होता है, जीवनका सारा सौन्दर्य ही वहॉ ढलकर एकाकार हो गया है। आखें वहॉसे हटना ही नही चाहती —

अवनत आनन कए हम रहलिहुँ
बारल लोचन चोर।
पिया मुख-रुचि पिवए धाओल
जनि से चॉद चकोर॥
ततहुँ सयँ हठ हटि मो आनल
धएल चरनन राखि।

मधुप मातल उड़ए न पारए
तइअओ पसारए पाँखि ।

क्या कहूँ सखि, उस अपरूप रूपके सामने आते ही इन लोभी और चोर आँखोको हठपूर्वक निवारण कर नीची किये बैठी रहती हूँ लेकिन 'ये नैना बिगरि परे' और प्रीतम छबि देखनेसे बाज नहीं आते। जिस प्रकार चकोर चाँदकी ओर दौड़ते हैं, उसी प्रकार 'पिया मुख-रुचि पिवए धाओल'। इतनेपर भी उन्हे हटाकर अपने चरणोकी ओर लगा रखती हूँ फिर भी मधु पीकर मतवाले बने भौरेकी भाँति ये आँखे भी उड़ नही पातीं। भौरा उडनेके प्रयासमे पंख पसारता है किन्तु उड़ नहीं पाता। आँखोकी वही गति है, आँखे हटनेका नाम नहीं लेतीं बिहारीने भी कहा है—

लाज लगाम न मानहीं, नैना मो बस नाहि।
ये मुँहजोर तुरंग लौं, ऐंचत हूँ चलि जाहि।

आँखोको इस प्रकार बहकानेवाला स्वरूप साधारण नहीं। 'जनम अवधि हम रूप निहारलुँ, नयन न तिरपित भेल'। फिर भी सखि, उस अनुभूतिकी बात पूछती हो। क्या कहूँ वह अनुभव कैसा है?

जीवनकी यह अनुभूति साधारण नही, वाणीकी असाधरण मधुरता कानोमे थमती नहीं। रोज-रोज उसका आस्वाद लेती हूँ किन्तु कानोमे यह माधुरी अँटती नहीं। वह माधुर्य, क्या कहूँ, कहीं टिक पाती। लेकिन नही, उस वाणीका सौन्दर्य उस माधुर्यके न टिकनेमे है। जीवन आनन्द हीन, निस्तेज अभ्यास-मात्र है। आनन्दके क्षणोमे ही जीवन सीमित है। माधुर्यका स्रोत जीवनको वह सरसता देता है, जो जीवनको सम्पूर्णतया छा लेता है। क्या कहूँ वह रस कैसा है?

'जो ज्ञान गीतामें नहीं; जो रस नहीं है काव्यमें
जो स्वर न तंत्री नादमें, वह सब तुम्हारी बातमें'

कहकर भी सन्तोष नही होता। वह इससे भी कही अधिक मधुर है। आनन्दका आनन्द उसके स्वरूपके अज्ञानमे है। व्यक्ति और आनन्दके एकोकारणमें आनन्द नही। अनुभूतिकी तीव्रता इतनी प्रगाढ़ जब हो उठे किसी प्रकारकी व्याख्या विवेचना सम्भव नहीं हो सकती। यह अनुभूति भी इतनी प्रगाढ़, इतनी तीव्र, इतनी गम्भीर है कि उसकी व्याख्या सम्भव नही। जीवनके रसका यह अद्भुत स्वाद केवल आस्वादनीय है, अनुभव गम्य है। वाणी इस प्रयासमे मौन है, काव्य केवल सकेत है। जिसने पूरा-पूरा आस्वाद नही लिया, जो इसमे निमग्न नही हुआ, वही बोलता अधिक है, वह मिलनके गीत गाता है, विरहमे सिसकियाँ भरता है किन्तु जीवनका यह रस जिसे मिल गया, वह हँसी और आँसुओंकी दुनियाके परे पहुँच जाता है। कविताकी आँखे उस सौन्दर्यको प्रत्यक्ष करनेकी शक्ति देती हैं। (Poetry is that which lifts the veil from the hidden beauty of the world (संसारके छिपे सौन्दर्यको प्रकट करना कविता है—शेली) किन्तु यह सौन्दर्य कविताके छंदोंमें अंट नही पाता। कविता इसके लिए सीमित है। केवल दो आँखोसे यह रूप नही देखा जा सकता है अतः

सुरपति-पाए लोचन मागओ, गरुड़ मागओ पाँखि।
नन्द क नन्दन मैं देखि आबओ, मन मनोरथ राखि॥

इन्द्रसे उनके सहस्र नेत्र माँगकर उस रूपको देखनेका प्रयास है। इसीलिए तो 'जनम अवधि हम रूप निहारलुँ, नयन न तिरपित भेल।'

यह अनुभव ऐसा नही जो छदोंकी वाणीके घेरेमे समा सके। जो

कहता है, उसने पहचान लिया जान लिया वह जानता नही। जो जान लेता है, वह बोलता नही। 'प्रेम-प्रेम' चिल्लानेवाला ही प्रेमी नही। यह अन्तरकी आग है जो धधकती कम, धुँधुआती अधिक है। ऐसे प्रेमका नाम लेनेवाले अनेक देखे, प्रेमी कोई विरला ही मिला। यह एक दिनका व्यापार नही, क्षणोका विनिमय नही। जीवनका प्रत्येक पल इसपर निछावर हो। युग-युगतक यह प्यास बनी रहे, यही प्यास है। इसीलिए तो 'लाख लाख जुग हिय महँ रखलुँ, तइओ हिय जुडल न गेल।' हृदयका ताप मिटना सहल, सहज, साधारण नही। यह अनुराग भी तो साधारण नही। यह तो क्षण-क्षण बढनेवाला रोग है। इसकी अबाध गतिमे जीवन अवरुद्ध होता जा रहा है—'तेल बिन्दु जैसे पानि पसारिए ऐसन मोंर अनुराग।' इस अनुरागकी, इस अनुभूतिकी बात क्या पूछती हो सखि!

इसका उपयोग करना और बात है, अनुभूति और वस्तु है। आनन्दोपभोग और आनन्दानुभूति एक नही। इसका उपयोग अनेक विदग्ध जन करते है, करते आये हैं, शायद करते रहेगे, किन्तु किसीने इस अनुभूतिका स्वरूप पहचाना नहीं। कहीं इसके स्वरूपका ज्ञान भी हो सकता है? संसारमे हृदय जुड़ानेवाले, प्राणोकी ऑच मिटानेवाले कहीं मिलते नही! लाखोमे भी एक नही मिलता, करोड़ोमे एक नही मिलता; सम्पूर्ण सृष्टिमे भी केवल एक ही ऐसा है—जो स्वय सृष्टिका रूप धरकर सामने आता है, अथवा सृष्टि ही जिसका रूप धारण करती है। वह अकेला है, केवल एक है। खोज करनेपर भी दूसरा मिलता नही, मिल नही सकता। प्रियका रूप ऑखोमे इतना छा जाता है कि कोई दूसरा रूप ऑखोमे टिक पाता नही। समा सकता नहीं।

प्रीतम छबि नैना बसी, पर छबि कहाँ समाय।
रहिमन भरी सराय लखि, आपु पथिक फिरि जाय॥

'मीराकी पीर मिटानेके लिए भी एक प्रियतम ही एक-मात्र वैद्य है, और कोई दूसरा तो इस रोगका निदान भी नही जानता—'मीरा की प्रभु पीर मिटैगी, जब बैद सॅवलिया होय।' प्राणोका ताप मिटाने-वाला, जीवनको सरस करनेवाला केवल प्रियतम है, जिसके रूपसे तृप्ति नहीं है, जिसकी वाणीके माधुर्यसे कानोंकी प्यास मिटती नहीं। युग-युग-तक हृदय, आखोमे बन्द रखनेपर भी शान्ति नहीं मिलती, प्यास बुझती नही। फिर बार-बार 'सखि कि पूछसि अनुभव मोय।'

विद्यापतिके आकुल अन्तरकी पुकार है इसमे। जिसने जीवनमें प्रेमका अनुभव नही किया, जिसने विरहका आनन्द नही उठाया, जिसके अन्तरमे अभाव और आकुलताकी पीड़ा नही जगी, जिसकी ऑखें सौन्दर्यके अन्वेषणमे इधर-उधर भटकी नही, जिसके हृदयमे रसोद्रेक नहीं हुआ, वह प्रेमकी यह मधुर व्यञ्जना कर नहीं सकता। विद्यापतिकी राधा संकुचित भी नहीं थीं, भयभीत भी नहीं। प्रेममे शराबोर हृदयका परिचय यहाँ है। प्रेमने जीवनको इतना आक्रान्त कर रखा है कि और कोई दूसरा सत्य नहीं। वह जीवनका एकमात्र सत्य है, पूर्ण सत्य है। सखिका प्रश्न-प्रेरक बन उठता है। अन्तरमे जो आकुल उच्छ्वास बन्द पड़ा था, सहसा ठोकर खाकर फूट पडता है। वह हृदयके घटमें अॅट नही पाता। वह असाधारण प्रेम असाधारण रूपमे प्रकट हो उठता है। इसमे उक्ति-वैचित्र्य नहीं, क्लिष्ट, कल्पना नहीं, अलकार-विधानका द्रविड प्राणायाम नहीं, भावनाओकी 'जिमनास्टिक' नहीं, वृत्तिकी सरल, स्वाभाविक अभि-व्यक्ति है—जिसमें आकुलता है, प्यास है, मार्मिकता है, स्निग्धता और उच्छ्वास है। शब्द और संगीत एकाकार हो उठे है। भाषा और भावमे व्यवधान नहीं। स्वच्छ, तरल, मादक प्रवाह जैसा सगीत सगीतात्मक है जिसमे शास्त्रीयताकी रक्षासे सगीत-सौष्ठव अधिक है। राग, रागात्मकता

और भाषाका अद्भुद समन्वय है। जीवनकी अनुभूतिकी मधुर व्यञ्जना है कविकी वाणी गूँजती रहती है—

लाख-लाख जुग हिय महुँ रखलुँ
तइयो हिय जुड़ल न गेल।

निसिदिन बरसत नैन हमारे।
सदा रहत पावस ऋतु हमपैं जबते स्याम सिधारे।
दृग-अंजन लागत नहिं कबहूँ उर कपोल भये कारे॥
कंचुकि नहि सूखत सुनु सजनी उर बिच बहत पनारे।
'सूरदास' प्रभु अंबु बढ़यौ है गोकुल लेहु उबारे॥
कहँलौ कहौ स्यामघन सुंदर बिकल होत अति भारे॥—सूरदास

अहीरोकी छोटी-सी टोली, वृन्दावनका गॉव है—हास-परिहास, आनन्द-उल्लाससे भरा। इसके बीच आ जाते है कृष्ण अनन्त सौन्दर्य-शील, चपल और मधुर। जीवनकी गतिमे एक धारा और आ मिलती है, गति तीव्रसे तीव्रतर, तीव्रतरसे तीव्रतम हो उठती है। फिर क्या जीवनमे प्रेमभरी खीझ है, स्नेह-पुलकित झुँझलाहट है, रस-आविल उलाहना है। गोपियोका जीवन सरस हो उठता है। रूप-लिप्साके साथ ही साथ साहचर्य-का सम्बन्ध दिन-रातका सम्बन्ध है। Love at first sight प्रथम दर्शनमे ही प्रेमका आवेश नही। 'जनम अवधि-हम रूप निहारलुँ नयन न तिरपित भेल' की कथा है। राहोमे, गलियोमे, यमुना-पुलिनपर, सघन कुंजों-की छायामे सर्वत्र कृष्णके अपरूप-रूपके दर्शन हैं, बक्रता मिश्रित सरल,

सरस परिहास है। यह कुमार कब युवक हो जाता है, पता नही। यह सरल भाव, साधारण आकर्षण प्रेम बन जाता है प्रेमकी यमुनामे सभी बहे चले जाते हैं, किसीको खबर नही, ध्यान नहीं, सुध-बुध नही। इसी बीच अक्रूर एक दिन क्रूर बनकर आते हैं और कृष्ण मथुरा जा पहुँचते हैं। तीन कोस दूर मथुरामे जाकर कृष्ण ऐसा फँस जाते है कि वृन्दावन लौटते नही' लौट पाते नहीं। इधर गोपियाँ बेहाल हैं, आतुर हैं, आकुल हैं। कृष्णके मथुरा चले जानेपर ही उनपर प्रकट होता है कि उनका प्रेम कितना गम्भीर कितना प्रगाढ है। मिलनके आनन्दने उन्हे आत्म-विस्मृत कर रखा था, इतना आविष्ट कर रखा था कि प्रेमकी गम्भीरताका ध्यान उनसे ओझल हो गया था। 'विरह प्रेमकी जाग्रत गति है और सुषुप्ति मिलन है'—ठीक कहा है रामनरेश त्रिपाठीने। नन्द-यशोदा, गोप-गोपियाँ सभी बेहाल हैं. कृष्णके बिना सारा संसार ऊजड़ ग्राम है। संयोग सुखके सारे उपकरण वियोगमे अधिक पीडा पहुँचाते है। प्रत्येक घड़ी, प्रति पल, हरेक क्षण कृष्णकी यादको और भडका देते हैं—

बिन गुपाल बैरिन भई कुंजैं
तब वै लता लगति अति सीतल अब भईं विषम ज्वालकी पुंजैं।

सोते-जागते, बैठते-उठते, एक क्षणके लिए वह श्याम-मूर्त्ति हृदयसे नही हटती। 'चलत चितवत, दिवस जागत, सपन सोवति रात, हृदयते वह श्याम मूरति छिन इत छिन उत जात' और आश्चर्य यह है कि वह मथुरा नगरी कुल तीन कोसपर है एवं यहाँ गोपियाँ बेहाल है, कृष्ण मथुरामे सुखकी नींद ले रहे हैं—

सागर कूल मीन तलफत है, हुलसि होत जल पीन।

ब्रजके बेहाल होनेकी क्या कथा कही जाय। प्रकृतितक संवेदन-

शील है ; गोपियोके हृदयका चित्र और दर्पण है। व्रजकी प्रकृति इतनी भाव-प्रवण है कि कृष्णके सयोग और वियोगका चित्र उपस्थित करती है। कृष्णके वियोगका इतना व्यापक प्रभाव पड़ता है कि

नाचत नहीं मोर ता दिन ते, बोले न बरसा काल।
मृग दुबरे तुम्हरे दरसन बिन, सुनत न वेणु रसाल।
वृन्दावन हर्यो होत न भावत, देखो स्याम तमाल।

जब प्रकृति, वन-बीथियो और वन्य पशुओकी यह अवस्था है फिर गोपियोकी दशाके विषयमे क्या कहा जाय ? ऊधो इसी बीच व्रजभूमिमें पधारते है, इस अपार विरह-सागरमे अपूर्व लहर दौड़ पड़ती है। ऊधोके ज्ञान-गर्वकी ठेस पाकर रुकी धारा एक बार और उग्र वेगसे फूट पड़ती हैं। प्रियकी निष्ठुरता, प्रीतिकी गूढ़ता, रसकी तन्मयता एक बार फिर ऑखोमे छा जाती है। पाती देखते ही कृष्णकी स्मृति और प्रबल होकर उभर पडती है। न-जाने ऑसुओका यह वेग कहॉ छिपा पड़ा था जो इस पत्रके देखते ही जग पड़ा—

निरखत अंक स्याम सुन्दरके बार-बार लावती छाती
लोचन जल कागद मसि मिलिकै हो गयी स्याम स्यामकी पाती।

रोशनाई और ऑखोका जल मिल जानेसे पाती लिप-पुतकर केवल श्याम ही नही हो गयी बल्कि श्यामकी पाती श्याम-मिलनके समान ही सुखदायिनी है। कहॉ गोपियोका यह हाल, और कहॉ ऊधोका ज्ञान-मय निर्गुणका उपदेश ! सरल, भोरी, गॉवकी 'ग्वारन' छछिया भरी छाछ पै नाच नचानेवाली गॉवकी छोहरियॉ भला निर्गुणको क्या जानें ? वे तो सरल हृदय और रागात्मक वृत्तिको जानती हैं। कृष्णको जानती है। उनके प्रेमको, स्नेहको जानती हैं। यह प्रेम इतना गाढ़ और गम्भीर

है कि वाणीद्वारा इसका कथन करना सम्भव नहीं। ये आँखें जो कभी रूपरस चखनेसे अघाती नहीं थीं, आज विकल हैं, बेबस हैं। हृदय-मंथन हो रहा है। क्या कहा जाय ! बस 'बरसत निसिदिन नैन हमारे' यह प्रेम साधारण नहीं। इसका रूप कुछ-कुछ 'तारेके लिए पतंगकी आकाक्षा, रजनीका प्रातके लिए आवेश, दूरस्थित किसीके लिए रागात्मक आवेश' की भाँति है।

The desire of the moth for the star,
of the night for the morrow.
The devotion to something afar.

आँसुओंके इस प्रवाहमे ज्ञानका टिकना सम्भव कहाँ ? एक-दो बूँद आँसू नहीं, आँसुओंकी धारा है, अनवरत वर्षा है। इन आँसुओंमें सारा व्रज डूब रहा है। व्रजका प्राणी-प्राणी रो रहा है और कृष्ण निष्ठुर बने बैठे हैं। आँसुओंका इतना प्राबल्य है—

कैसे पनघट जाऊँ सखि री डोलौं सरिता तीर।
भरि-भरि जमुना उमड़ चली है, इन नयननके नीर॥
इन नयननके नीर सखि री, सेज भई घर नाऊँ।
चाहत हौं, वाही पै चढ़िके स्याम मिलनको जाऊँ॥

आँसुओंके इस आधिक्यका वर्णन तोषनिधि करते है —

गोपिनके अँसुँवानको नीर पनारे भये, बहिके भये नारे।
नारेन हूते भईं नदियाँ नदिया नद ह्वै गये काट कगारे॥
बेगि चलौ तो चलौ व्रजको कवि तोष कहै व्रजराज दुलारे।
वे नद चाहत सिन्धु भये अब नाहिं तो ह्वै है जलाहल सारे॥

'तोषनिधि'की गोपियोको आशका है कि वे नद अब सिन्धु हो जायँगे और सारा ब्रज उस जलप्लावनमे डूब जायगा। सूरदासके लिए यह केवल आशकामात्र नहीं, बल्कि सत्य है 'सूरदास प्रभु अंबु बढ्यौ है गोकुल लेहु उँबारे'। एक बार ब्रजपर ऐसी विपत्ति आयी थी। घोर जलवर्षण हो रहा था, प्रलयकारी दृश्य उपस्थित था। उमड़-घुमड़कर बादलोंका दल ब्रज-मण्डलको घेर रहा था, बिजली कड़क रही थी। ब्रजमे जल-प्लावनका दृश्य उपस्थित था, चारो ओर हाहाकार मचा था, लोग डूब रहे थे। तुमने उस दिन ब्रजकी इस विपत्तिसे रक्षा की थी। आज भी वैसा ही दृश्य उपस्थित है। श्याम-विरहमे ऑखे मेघ बन गयी हैं, जिनसे अविराम वर्षा हो रही है। ब्रज-बालाओंकी शत-शत ऑखोंमे मेघोका जल भर गया है। श्याम जिस दिनसे गये उस दिनसे ऑखोकी वर्षाको विराम नही, सदा यहॉ पावस ऋतु ही बसती है। वर्षासे सारा ब्रज डूब रहा है। 'छबीले मुरली नेक बजाओ', एक बार झलक दिखा जाओ।

यह प्रेमकी दुनिया विचित्र है, ससार अलग है--

आह और अश्क है सदा ही यहाँ,
रोज बरसातकी हवा है यहाँ।—मीर

[यहॉ (इस प्रेम-देशमे) सदैव आहे और ऑसू दीख पड़ते हैं। सदा बरसाती हवा चला करती है !] मीर एक जगह और लिखते हैं —

उन्हीं गलियोंमें जब रोते थे हम 'मीर'
कई दरियाकी धारें हो गयी है।

इन ऑखोकी कौन चर्चा करे, कौन इनकी उपमा ढूॅढे। कोई

उपमा ठीक जॅचती नहीं 'उपमा नैन न एक नहीं' और फिर ऑखोका यह खारा जल ऑखोंमें समाता नहीं। प्रकृतिको सूर प्रकृत ऑखोसे नहीं देखते। 'सदा रहति पावस ऋतु हम पै' में मानव-सापेक्ष्य प्रकृतिका चित्रण है। गोपियो और प्रकृतिमें कोई अन्तर नहीं। प्रकृति भी गोपियों-की भॉति क्षीण विरह-कृश, दीन, दुःखी और सन्तप्त है। यह 'पावस ऋतु' उद्दीपन-मात्र नहीं ; आत्मा और हृदयका दर्पण है जिसमें गोपियो-का हृदय प्रतिबिम्बित है। पुरानी स्मृति जगाकर विरहकी व्यथा और बढा देती है अतः यह प्रकृति राधामय है, कृष्णमय है। बादलोकी उमड़ती घटा कृष्णकी याद दिलाती है। 'सरस कुंजै' प्रियके अभावमें 'वैरिन' बन गयी हैं। यमुना विरह-ज्वरमे जलकर काली हो गयी है, काली रात प्रियविरहमें 'सॉपिन' बन गयी है—'पिया बिन सॉपिन कारी रात' ब्रजमे केवल दो ऋतुएँ रह गयी हैं—

ब्रज ते द्वै रितु पै न गई

ग्रीषम अरु पावस प्रवीन हरि तुम बिनु अधिक भई।

ऑसुओंकी बाढ़का आखिर कारण क्या है? प्रेमका आधिक्य जब सीमाका अतिक्रमण कर उठता है, बौद्धिकता-संसार-सुलभ व्यावहारिकता-का ज्ञान नहीं रह जाता। प्रेमके इस प्रचण्ड प्रकाशसे दृष्टिमें चकाचौंध हो जाता है और कोई दूसरी वस्तु सूझती नहीं। प्रकाशके कम्पनोंकी सख्याकी अल्पता जिस प्रकार वस्तुको ऑखोंसे ओझल करती है, उसी प्रकार प्रकाशका आधिक्य भी चकाचौंध उत्पन्न कर अन्धकारकी सृष्टि करता है। प्रेम-दशाकी बुद्धि हीनताका तात्पर्य अबौद्धिकता नहीं बल्कि व्यावहारिक कौशलका अभाव और सरलता है। समग्र वृत्तियोकी चेतनापर प्रेमका जितना प्रभाव होगा उतनी ही अधिक मात्रामें 'बुद्धि हीनता' होगी।

गोपियोंका प्रेम 'बैठे ठाले'के लिए फैशनका व्यापार नहीं, रोमास-प्रिय वयस्क बालिकाओका विनोद मात्र नहीं, हृदयकी गूढ़ वृत्ति है। जिस 'कान्ह'के लिए सब कष्ट सहा, प्रीति-रसमें ढालकर तन-मन जिसके चरणो-पर डाल दिया, उसका बेगाना बन जाना क्या कम पीड़ाका विषय है—

पीरीते रसे ते, ढालि तन मन, दियाछि तोमार पाय
तुमि मोर पति, तुमि मोर गति, मन नाहि आन भाय
कलंकी बोलिया डाके सब लोके ताहाते नाहिक दुख
तोमार लागिया, कलंकेर हार, गलाय परिते सुख।
सती वा असती, तोमाते विदित, भालो मन्द नाहि जानि,
कहे चण्डीदास पाप पुन्य सम, तोमारि चरन खानि॥

[प्रीति रसमें ढालकर तन-मन तुम्हारे चरणोपर डाल दिया। तुम्ही मेरे पति हो, मेरी गति हो, मनको और कुछ अच्छा नही लगता। सब लोग मुझे कलंकिनी कहकर पुकारते है, इसका मुझे दुःख नहीं। तुम्हारे लिए कलंककी माला गलेमे धारण करनेमे ही सुख है। सती वा असती हूॅ, तुम्हें ज्ञात है। मै भला-बुरा नही पहचानती, जानती हूॅ केवल तुम्हारे चरण, जहाॅ पाप नहो, पाप-पुण्य जहाॅ समान है।] जब ऐसा है क्यो नही—'निशि दिन बरसत नैन हमारे'।

'कुंचुकी नहिं सूखत सुन, सजनि उर बिच बहत पनारे
'दृग अंजन लागत नहि कबहूॅ, उर कपोल भये कारे।'

मे आँसुओके अधिक्यकी सूचना है। अतिशयोक्तिमे कष्ट-कल्पना नही, ऑसुओके प्रवाहके कारण अंजन ही नही लग पाता बल्कि विरहकी अवस्थामे अंजन लगानेकी आवश्यकता ही क्या रही। कौन अजित ऑखोका सौन्दर्य देख सकेगा? 'कापर करूॅ सिगार पुरुष मोर ऑधर' तो नही किन्तु दूसरी

जगह जा छिपा है। जब कृष्ण नहीं किसके लिए यह सौन्दर्य-प्रसाधन हो। एवं जब कृष्ण नही फिर कौन ऐसा रूप है जिसे देखनेके लिए अजनद्वारा परिष्कारकी आवश्यकता हो। इसपर भी आँखोमे जब अंजन लग ही जाता है, निगोड़े आँसू आँखोमें ठहरने देते तो नही, और आँसुओकी धाराके साथ मिलकर अंजन फैल जाता है। 'उधर कपोल भये कारे'। उरके काले होनेका कारण केवल बाह्य नहीं बल्कि निराशा, पीडा, व्यथाके कारण हृदयमें कोई उल्लास नहीं, कोई उत्साह नही। कृष्णके विरहमे वह रूप भी इतना अधिक प्रिय है कि अजनकी कालिमा कपोलो और हृदयपर छा जाती है किन्तु उसे हटाने-का ध्यान नहीं। कारण कृष्णका स्वरूप उसमे छिपा है और कृष्णके अभावमें रूप-साद्दश्यके कारण सन्तोष प्रात करना कम नहीं। कृष्ण चले गये किन्तु कृष्ण भी अपने स्वरूपको छीन तो नहीं सकते। कृष्ण तो 'तनमे, मनमे, नैनमे' हैं। उर और कपोलकी कृष्णता, रूप-लिप्सा और उससे तादात्म्यका सकेत देती है। कृष्णके अभावमें सारा संसार ही कृष्णमय है। यह व्यथा इतनी व्यापक, इतनी विस्तृत और विशद है कि और कोई भावना शेष नहीं रहती, और कोई भाव उठता नही।

अतिशयोक्ति है किन्तु उर्दूके उस कविकी भाँति नहीं जिसकी प्रेमिका-के गाल सपनेमें तस्वीरका चुम्बन करनेके कारण नीले पड जाते है।—

क्या नजाकत है कि आरिज उनके नीले पड़ गये,
हमने तो बोसा लिया था ख्वाबमें तस्वीर का।

और बिहारी की भाँति 'दूरकी कौड़ी' लानेका प्रयास भी नहीं था। व्यथा और पीड़ाका सरल चित्रण ही यहाँ लक्षित है। इतना रंग नहीं जो चित्र विकृत हो उठे। शब्द और संगीतका संतुलन है। 'निसि-

दिन बरसत नैन हमारे' आकुलता, आतुरताका चित्र आँखोंके सामने खड़ा कर देता है। प्रकृतिका स्वतन्त्र चित्रण नहीं, कल्पनाकी अतिशय रंगीनी भी नहीं। सूरके सहज, स्वाभाविक व्याकुल मानसिक-दशाका चित्रण है। इसमें सूरकी व्यथित आत्मा कराह रही है, गोपियाँ तो उप-लक्ष्य मात्र हैं। सूरदासकी आत्मा इस गीतके अन्तरसे, रह-रहकर अत्यन्त आकुल और कातर भावसे चीख रही है—

"रुदन, जल नदी सम बहि चल्यो उरज बिच.मनों गिरी फोरि सरिता पनारी।" और सूरकी मर्म बेदना चिल्ला-चिल्लाकर कह उठती है—

'निसिदिन बरसत नैन हमारे"

जब जब भवन विलोकति सूनो।
तब तब विकल होति कौसल्या दिन दिन प्रति दुख दूनो॥
सुमिरत बाल-विनोद रामके सुंदर मुनि-मन हारी।
होत हृदय अति सूल समुझि पदपंकज अजिर बिहारी॥
को, अब प्रात कलेऊ माँगत रूठि चलैगो, माई।
स्याम-तामरस-नैन स्रवत जल काहि लेउँ उर लाई॥
जीवौं बिपति सहौं निसि बासर मरौं तो मन पछितायो।
चलत विपिन भरि नयन रामको बदन न देखन पायो॥
तुलसिदास यह दुसह दसा अति, दारुन बिरह घनेरो।
दूरि करै को भूरि कृपा बिनु सोक-जनित सब मेरो॥

—तुलसीदास

राम बनको जा रहे हैं; अयोध्या का सारा ऐश्वर्य और विषय, उन्हे रोक नहीं पाता। इस त्यागमें कोई मोह नहीं, संकोच नहीं—

कीरके कागर ज्यों नृपचीर विभूषन, उप्पम अंगनि पाई।
औध तजी मगवासके रूख ज्यों, पंथके साथी ज्यों लोग लुगाई।
संग सुबंधु, पुनीत प्रिया मनो धर्म क्रिया धरि देहु सुहाई।
राजिवलोचन राम, चले तजि बापको राज बटाऊकी नाई॥
कागर-कीर ज्यौं भूषन चीर सरीर लस्यो तजि नीर ज्यौं काई।
मातु पिता प्रिय लोग सबै सनमानि सुभाय सनेह सगाई।
संग सुभामिनि भाइ भलो, दिन द्वै जनु औध हुतो पहुनाई।
राजिवलोचन राम चले तजि बापको राज बटाऊकी नाई॥

राम भले अयोध्या और पिताके राज्यको 'बटाऊ' की भाँति छोड़कर चले जायँ, भले अयोध्या-वास दो दिनोकी 'पहुनई' हो, भले माता-पिता, परिजन-पुरजनका प्रेम 'बहते तिनकोका पलभरका साथ हो, भले पथमें मिलनेवालोका सा स्नेह-सिन्धु उमड़ता हो किन्तु माताका हृदय तो 'माताका हृदय' है पुत्रकी मंगल कामनासे उद्वेलित, उसके वियोगमे माता आकुल। माताके अन्तरकी यह आकुल पुकार एक ओर जहाँ विशुद्ध वियोग है, वहाँ रामकी व्यथा और पीड़ाकी कल्पनाके कारण शोक भी कम नहीं। महलोमे रहनेवाले राम और सीता किसे प्रकार बनके कष्ट सह सकेगे, इसके लिए माताकी चिन्ता स्वाभाविक है। राम-बनवासके शोकसे व्याकुल राजा दशरथ कहते हैं—

विपिने क जटा निबन्धनं तव चेदं क मनोहरं वपुः
अनयोर्घटना विधेः स्फुटं ननु खड्गन शिरीषकर्तनम्॥

[कहाँ जंगलमे जाकर जटाओका बाँधना, और कहाँ तुम्हारा

(रामका) यह सुकुमार मनोहर शरीर। विधिकी यह अनुचित घटना वैसी ही है जैसे तलवारसे शिरीषके फूलका काटना।]

कृष्णके मथुरा जानेपर ऐसी ही अवस्था उपस्थित हुई थी। यशोदा-के हृदयमे वैसी ही व्यथा है। यद्यपि यशोदाका कृष्ण वन-वन मारा नहीं फिरता, राज महलमे रहता है, राज्य-सुखका उपभोग करता है किन्तु माता-के हृदयकी आशंका यशोदामे है। उसका पुत्र सकोच करता होगा, भला माताकी भाँति उसकी परिचर्या कौन करेगा? कौन ऐसा है जो प्रातःकाल माखनका कलेवा देगा? कौन उसके रूठे लालको मनावेगा? लोग बार-बार समझाते हैं, फिर भी माँका हृदय मानता नहीं। रह रहकर उसे कृष्णकी याद आ जाती है—

यद्यपि मन समुझावत लोग
सूल होत नवनीत देखि के मोहन मुख के जोग।

यशोदाके हृदयकी व्यथामे स्वाभाविकता है किन्तु इसके साथ ही यह व्यथा हृदयकी निर्बलताके कारण भी है, केवल इसी आशकाके कारण है, कि उसके (यशोदाके) समान और कोई दूसरा उसकी परिचर्या करने-वाला नहीं हो सकता। कौशल्याकी पीड़ाका कारण और व्यापक है, उसकी व्यथा और गम्भीर है। उसके राजा-बेटेको अयोध्याका राज्य मिलते-मिलते बनवास मिला। संगमें सीता सुकुमारी और 'लक्खन लरिका' हैं। यद्यपि विश्वामित्रके साथ राम और लक्ष्मणने बन भ्रमण किया था, किन्तु उसमे भ्रमणका आनन्द था, बनवासकी व्यथा नहीं कहीं ठहरने-का ठिकाना नही, खाने-पीनेकी व्यवस्था नहीं; फिर माताका हृदय दुसह पीड़ाका अनुभव क्यो न करे?

भूख लगे भोजन कहँ पैहैं, प्यास लगे कहँ पानी।
नींद लगे आसन कहँ पैहैं कुस काँकर गड़ि जाई॥

रिमझिम रिमझिम दैव बरीसे पौन बहै पुरवाई ।
कौनो बिरिछतर भींजत होइहैं, राम लखन दुइभाई ।।

(भोजपुरी लोक-गीत)

'हाय भूख लगेगी तो भोजन कहाँ पायेंगे, और प्यास लगनेपर पानी; नींद लगनेपर बिछौना कहाँ पायेंगे ? शरीरमे कुश और ककड़ गड़ेंगे न ? बादल रिमझिम रिमझिम बरस रहे हैं। पुरवैया चल रही है। न जाने किस वृक्षके नीचे दोनों भाई भींग रहे होंगे।' और 'कोई समुझावत नाही'। न जाने किसने यह अयोध्या उजाड़ दी। कौशल्या विलाप करती है, बिलखती हैं 'किन मोरी अवध उजारी हो' रामके दैनन्दिन दिनचर्याकी अनिश्चितता, बनवासका कष्ट, सीता और लक्ष्मणकी सुकुमारता याद कर कौशल्याके प्राण सूख रहे हैं। और जब सूने भवनकी ओर ध्यान जाता है,—'तब तब बिकल होति कौसल्या' क्योंकि 'राम बिना मोरी सूनी अयोध्या, लछिमन बिन चौपारी'। यह वैकल्य केवल क्षणोंका नहीं, जैसे-जैसे दिन बीतता है, यह सूनापन और बढ़ता जाता है, अधिक खलने लगता है। रामकी बाल-क्रीड़ाएँ याद पड़ने लगती हैं। रामके उपयोगमें आनेवाली वस्तुएँ उनकी यादको और भड़का देती हैं। "जननी निरखत बान धनुहियाँ" और "बार बार उर नैननि लावति प्रभुजूकी ललित पनहियाँ"। मनोवैज्ञानिक भाषामे जी चाहे इसे हम fetishism कह सकते हैं। यशोदा और कौशल्याके इस रूपमे भी अन्तर है। रामका शैशव बीत गया था, बाल-क्रीड़ाएँ अतीतकी बातें हो चुकी थीं, अतः उनके कारण जगनेवाली स्मरण-शक्तिमें उतनी तीव्रता सम्भव नहीं। रामके उस विगत बाल-जीवनकी याद वर्तमानके साथ केवल इतनी दूरतक ही मेल खाती है कि उनकी स्मृतिको सजग होनेका अवसर मिल जाता है किन्तु कृष्णका 'माखन माँगना' रोजका व्यापार था। 'माखन' देखते ही कृष्ण-

की याद जितनी स्वाभाविक है यह 'बान धनुहियाँ' और 'पनहियाँ' के कारण नहीं । कौशल्या तुलसीके हाथ पडकर केवल माता नहीं बल्कि भक्तका प्रतीक भी बन जाती हैं । 'सुन्दर मुनि-मन-हारी' कहकर तुलसी रामके लौकिक आदर्शकी ओर झुक जाते हैं और तुलसीका सामाजिक आदर्श-वाद सजग हो पडता है । रामके इस मर्यादावाद और सामाजिक रूपपर तुलसी इतने आकृष्ट है कि राम केवल राम और कौशल्याके पुत्र नहीं बल्कि नारायण हैं, और कौशल्या माता केवल माता नही रह जाती बल्कि भक्त स्वरूपिणी बन जाती हैं । ऐसी अवस्थामे रागात्मक वृत्ति श्रद्धाके साथ मिलकर शुद्ध, सरल भावमे नहीं रह पाती । तुलसीकी प्रतिभा इस रूपमे सफल नही होती । और सूरकी यशोदा माता केवल माता है । कृष्णके पारलौकिक स्वरूपका दिग्दर्शन उन्होने भक्तोकी परिपाटीमे किया है अवश्य, किन्तु यशोदाके वर्णनमे मातृ-हृदयकी अनुभूति जो सूरको होती है, वह तुलसीको नही । तुलसीकी भावुकता पाडित्यपूर्ण है, सूरकी सहज, सरल, और स्वाभाविक । कविता अचेतन मानसिक क्रिया है, इस कथनको स्वीकार करते समय तुलसीकी काव्य-कला सामने उपस्थित होगी, और इस कथनकी सत्यतामे अनेक अंशोमे बाधा पहुँचावेगी । तुलसीकी प्रतिभामें गीति-काव्यत्वका अभाव-सा है । 'मेरे कुँवर कान्ह बिनु सब कुछ वैसेहि धर्यो रहै' तथा 'सूने भवन यशोदा सुनिके गुनि-गुनि सूल गहै' मे जो भाषाभिव्यञ्जना है वह 'जब-जब भवन बिलोकति सूनो, तब-तब विकल होति कौशल्या' में नहीं दीखता । जान पडता है भाषा भावका साथ नहीं देती अर्थात् अनुभूति अपने सम्पूर्ण रूपमे नहीं होती । तुलसीको 'मात-पिता जग जाइ तजो' के कारण माता और उसके हृदयको पहचाननेका अवसर नहीं था । तुलसीका नारी-जातिसे क्षणिक साक्षात्कार प्रेयसीके रूपमें था, किन्तु वह भी मोह था, अतः माताके हृदयकी गम्भीरताका अनुभव भावनात्मक और कल्पनात्मक था ।

"'को अब प्रात कलेऊ माँगत रूठि चलैगो, माई !
स्याम-तामरस-नैन स्रवत जल काहि लेउँ उर लाई !"

बन-गमनके पूर्व राम वय प्राप्त हो चुके थे। प्रातःकाल 'कलेऊ' माँगते समय 'रामका रूठना' 'नाबालिक अहीरों' का स्मरण कराता है। स्याम-तामरससे नयनमे आँसुओंका भरना कम अस्वाभाविक नहीं। यह बात नही कि जवानीमे लोग रोते नहीं, अथवा यह अस्वाभाविक है, किन्तु कलेवाके समय रूठना, रोना, मचलना अस्वाभाविक है। 'तुलसी-दास' के लेखक और समर्थ आलोचक पं० रामचन्द्र शुक्लने लिखा है कि 'बन-गमनके समय राम इतने बच्चे न थे, पर वात्सल्य दिखानेके लिये गोस्वामीजीने कौशल्याके मुखसे ऐसा ही कहलाया है' किन्तु इतना स्वीकार हमे करना पड़ेगा कि यह अस्वाभाविक है, कृत्रिम है, तुलसीकी भावुकता माताका हृदय पहचाननेमे असमर्थ रही और उनमे वास्तविक रागात्मक आवेशका अभाव है।

जीवौं तो विपति सहौं निसिबासर मरौं तो मन पछितायो
चलत विपिन भरि नयन रामको बदन न देखन पायो।

में रागात्मक वृत्तिकी गम्भीरतासे अधिक काव्य-चमत्कार, उक्ति-सौष्ठव और व्यञ्जना है। 'मरौं तो मन पछितायो' का कारण मरनेका भय नहीं। बल्कि मरनेके समय रामका वह स्वरूप, पुत्रका मुखड़ा सामने नहीं रहेगा और आकुल आँखे उसे चारो ओर ढूँढ़ती फिरेंगी, मरकर भी चैन नहीं मिलेगा, उसके रूप-दर्शनकी प्यास बनी रहेगी—

आँखें जो खुल रही हैं, मरनेके बाद मेरी।
तो हसरत यह थी कि उनको एक निगाह देखूँ॥

'एक निगाह देखूँ' की हसरत बची रहेगी। देखनेकी यह प्यास और अधिक तीव्र होगी कारण चलते समय रामका पूरा-पूरा दर्शन भी नहीं हो सका था। निगोड़े आँसुओंने आँखोंमें कुछ ऐसा अन्धकार छा रखा था, देखनेकी शक्ति इतनी धूमिल कर रखी थी कि रूप-दर्शन सम्भव न था। बन-गमनका यह प्रसंग इतना अनायास और अप्रत्याशित रूपमें आ खड़ा हुआ कि समग्र चेतना लुप्त हो गयी, देखनेकी सुध-बुध नहीं, वह दारुण प्रसंग इस गम्भीरताके साथ उपस्थित हुआ कि चेतना न जाने किधर भूल गयी। सहसा विश्वास न हो सका कि राम चले ही जायँगे। जब सुधि आयी 'सूनो भवन विलोकति' अतः 'मुखड़ा' देखनेकी अभिलाषा जगी है। एक साथ ही व्यथा, पीड़ा, चेतना-लोप, आँसुओंके आधिक्य, मानसिक शैथिल्यकी सूचना इन पंक्तियोंमे है। किन्तु तुलसीका सुधारक 'भूरि कृपा'की ओर ध्यान आकर्षित कर अपनी याद दिला देता है। कौशल्या यदि माता रह सकतीं, सिर्फ माता, तो चित्र उदात्त स्वाभाविक, गम्भीर और सवेदनशील होता। इस गीतमे संगीतात्मकताका अभाव नहीं किन्तु यह सगीत चट्टानके नीचेसे फूट पड़नेवाले निर्झरके संगीतकी भाँति उन्मुक्त और सहज नही। शब्दोंसे यह संगीत फूटता हुआ नहीं दीखता। साधारणरूपमे लोग कह सकते हैं कि भाषा इस मार्गमें अवरोधक बन जाती है, इसे ही तो मै गीति-काव्यात्मक प्रतिभाका अभाव समझता हूँ। वैज्ञानिकता और व्यक्तिगत अनुभूतिकी अभिव्यञ्जनामें कौशल्या और भक्तकी एकात्मकताके कारण व्यवधान आ खड़ा हुआ है। तुलसीके गीतोंमे यह निश्छल सरल प्रवाह नहीं दीख पड़ता जो सूरमे है। विरह-जनित वियोगकी अभिव्यञ्जनामे वह स्वाभाविकता नहीं रही। शुद्ध विरह होनेके कारण इसे विप्रलम्भ शृंगारके अन्तर्गत आना चाहिए, उसमे शोकका स्थायित्व नहीं जो इसे करुण कहे। अवधि निश्चित होनेके

कारण करुण-विप्रलम्भ भी यह नहीं। वात्सल्य रसके अन्तर्गत यदि इसे स्वीकार करें—यद्यपि वात्सल्यको इस प्रकार स्वीकार करनेमें शास्त्रकार एकमत नहीं—तब भी इसमें रामकी आयु और वन-गमनकी परिस्थितियोंके कारण वात्सल्यके रसत्वकी प्रतिष्ठा नहीं हो पाती।

हे री मैं तो प्रेम दिवाणी, मेरो दरद न जाणे कोय।
सूली ऊपर सेज हमारी, किस विधि सोवण होय।
गगनमण्डल पै सेज पियाकी, किस बिधि मिलणा होय॥
घायलकी गति घायल जाणे की जिण लाई होय।
जौहरीकी गति जौहरी जाणे की जिण जौहर होय॥
दरदकी मारी बन बन डोलूँ, वैद मिल्या नहिं कोय।
मीराकी प्रभु पीर मिटैगी, जब वैद सँवलिया होय॥

मीराकी प्रीति एक दिनकी नहीं, मीरा दासी 'जनम जनम'की है, जिसके गलेमे प्रेमकी 'फॉसड़ियाँ' पड गयी हैं। बालमके रूपने मनमे ऐसा घर कर लिया है कि नयनके चित्रपटपरसे उतरता नहीं, ऑखे वहॉ खुद रम गयी हैं।

पूर्व जनम की प्रीति हमारी, अब नहिं जात निवारी
सुन्दर बदन जोवते सजनी, प्रीति भई छे भारी

और वही छलिया जिसका भरा 'मनमे, नैनोमे रूप' एक दिन—

छोड गया विस्वास संगाती, प्रेम की बाती बराय
विरह समँदमें छोड़ गया छो, नेहकी नाव चलाय।

यह प्रीतिकी आग भी ऐसी है जो 'लगाये न लगे, जो बुझाये न बुझे' । कौन जानता था प्रेम कर यह निष्ठुरताका व्यापार चलेगा 'प्रीति कर दीन्हे गर्ले छुरी ।' 'जोगियासे प्रीति किया दुख होय' । पहले ज्ञात होता कि प्रेममे ऐसी पीड़ा, ऐसी व्यथा होती है । काश मालूम होता ! आज यह अवस्था नही होती, सारी कथा बदलती होती । रूपके फदेमे फँसे मनकी डूबनेके सिवा और कोई गति नही, और कोई उपाय नही । यदि ऐसा पहलेसे जानती, इसके फदेमे कौन पड़ता ? कौन जान बूझकर इसमे प्राण देता ?

जौ मैं ऐसा जानती रे, प्रीत कियें दुख होय,
नगर ढिंढोरा पीटती रे, प्रीत न करियो कोय ॥

लेकिन जब मालूम हुआ, कोई उपाय शेष नहीं रह गया । अब इस 'प्रेमकी बेली' की जड़ पातालतक पहुँच गयी । अब इसे उखाडने-की शक्ति किसमे है ? 'अँसुवन जल सींचि सींचि प्रेम-बेलि बोई' क्या किया जाय 'कोई समुझत नाहीं' । इस वेदनाकी अनुभूति इतनी गम्भीर इतनी तीव्र है कि क्या कहा जाय । 'विरहकी मारी बन-बन डोलूँ, लेकिन कोई ऐसा नहीं मिलता जो प्रियको इसकी सूचना दे । सभी इस दर्दको बढ़ानेवाले ही मिलते हैं, कोई ऐसा नहीं है जो शीतलता दे जो तनकी तपन बुझाय' । आँखें उस 'छलिया' के दर्शनको आकुल हैं ! लेकिन हाय रे अभाग्य उसे किसी दिन अच्छी तरह देखा भी तो नहीं जा सका, सामने आनेपर अनुभूतिको वह इतना तीव्र कर देता है कि देखनेकी चेतना ही नहीं रह जाती । कभी खुलकर बोल भी न सकी । जान पड़ता है, आन्तरिक 'आर्ति' को उसने पहचाना नहीं, और हृदय

उसके दर्शनोंको व्याकुल है। सारा संसार सुखकी नींदमे सो रहा है, केवल अकेली मैं आँसुओंकी माला पिरो रही हूँ।

मैं बिरहिन बैठी जागूँ, जगत सब सोवे री आली ॥
बिरहिन बैठी रंगमहलमें, मोतियनकी लर पोवे।
एक बिरहिन हम ऐसी देखी, अँसुवन माला पोवे ॥
तारा गिन गिन रैन बिहानी, सुखकी घड़ी कब आवे।
मीरा के प्रभु गिरिधर नागर मिलके बिछुड़ न जावे ॥

जबसे बिछोह हुआ है, कभी चैन मिलती नहीं, 'भई छमासी रैन, राह देखते-देखते आँखे पथरा गयी, किन्तु 'मनभावनके आवन'की बात नहीं होती, और अब यह 'बिरह बिथा कासो कहूँ सजनी' कहनेसे ही कौन जान सकेगा अन्तरकी इस आकुलताको, 'हे री मै तो प्रेम दिवानी, मेरे दरद न जाणे कोय।'

मूर्ख वैद्य नाडिया टटोलता है, वह अन्तरकी आग, मनकी व्यथाको क्या जाने? शरीरकी व्यथा समझ इस रोगका उपचार करना चाहता है वह! कैसा भोला है, कैसा मूर्ख है, 'मूरख वैद मरम नहि जानत करक करेजे माँह'। यह रोग शरीरके उपचारसे मिटने-वाला नही, इस रोगकी ओषधि तुम्हारे पास नहीं। तुम्हारे किये कुछ हो नहीं सकता, तुम्हारा प्रयत्न व्यर्थ होगा, चेष्टा निष्फल जायगी। इसलिए—

जाहु वैद घर आपनो, तेरो किया न होय
मैं तो दाधो बिरह की रे काहे को ओषधि देय।

मीरा विरहकी अग्निमे दग्ध है, साधारण लेपोंका प्रभाव केवल शरीर धर्मपर है, अन्तरकी पीड़ा इनसे मिट नहीं सकती।

'विरहकी मारी बन-बन डोलूँ' लेकिन 'बैद मिल्यो नहिं कोय' यह साधारण दर्द तो नही जो प्रकट किया जा सके। यह अनुभूति इतनी गम्भीर है कि इसकी अभिव्यक्ति नहीं हो सकती। यह दर्द इतना व्यापक है कि प्रकटीकरणका कोई साधन नही। भला कौन ऐसा है जो इसकी सूचना 'प्रिय' को दे। कोई इस पीडाको समझता नहीं फिर कौन इसकी खबर दे। 'दरद दिवाणी' के'दरद' का हाल कैसे अभिव्यक्त हो? कोई इस दर्दको तो जानता नही; कारण—

घायल की गति घायल जाणे की जिण लाई होय
जौहरी की गति जौहरी जाणे, की जिन जौहर होय।

घायलकी गति घायल ही जानता है अथवा जिसके कारण चोट पहुँची हो, वह जानता है। सनातनधर्मी घायलको अपनी व्यथा, अपनी पीड़ासे इतनी फुर्सत कहाँ जो दूसरोके दुखकी जाँच-पडताल करे, समझे-बूझे। वह अपने आपमे इतना खो जाता है कि दूसरोकी चिन्ता नहीं रह जाती। और फिर मीराकी अनुभूति तो साधरण नहीं। वैसी अनुभूति तो दूसरेकी शायद नहीं। व्यथाकी गतिको तो घायल ही जानता है, उसे अभिव्यक्त तो नहीं कर पाता। अनुभूतिकी गम्भीरता व्याख्याके परे है। दूसरा समझनेवाला वही पीडा पहुँचानेवाला छलिया है और वह तो समझना चाहता नही। 'घायलकी गति पहचानता तो है, मगर 'समझता नही' केवल उसकी एक नजर इस कसक, इस पीडाको मिटानेके लिए पर्याप्त थी, 'चितै दे मेरी ओर करक मिट जाय रे' मगर 'मै चितवत तू चितवत नाही' ऐसा हृदय कठोर है। वह 'श्याम' जो इस पीड़ाकी गति समझता है, वह तो 'हो गये स्याम दूजके चदा'। और वह मूर्ख वैद तो केवल 'बाँह' पकडने भर जानता है और मै—

खिण मंदिर खिण आँगणारे, खिण खिण ठाढी होइ
घायल ज्यों घूमूं सदा री, म्हारी बिथा न बूझै कोइ ।।

मीराकी यह चिन्ता है कि कोई उसकी व्यथा समझता नही और आँखे बरसाती हैं, ज्ञात होता है 'सावनके जलधर, इनमें आ बसे हैं। पर कठिनाई यह है कि 'कोउ बूझत नाहीं'। यह प्रीति साधारण नही, प्रेम-का मार्ग सीधा नहीं, यह राह बड़ी रपटीली है, पग-पगपर फिसलनेका भय है, गन्तव्य-स्थान भी कोई समीप नहीं, पैर कॉप रहे हैं, राहमें टिक पाते नहीं—

ओहि मिलान जौ पहुँचे कोई। तब हम कहब पुरुष भल सोई ।।
है आगे परबत के बाटा। विषय पहार अगम सुठि घाटा ।।
बिच बिच नदी खोह औ नारा। ठॉवहिं ठॉव बैठ बटमारा।। 'जायसी'

'गगन-मण्डल पे सेज पियाकी' भला 'किस बिध मिलना होय' प्रेम-पथका स्वरूप-निरूपण बोधा करते है—

अति खीन मृनालके तारहुतें, तेहि ऊपर पाँव दै आवनो है।
सुई बेह कै द्वार सकै न तहाँ परतीति को टॉड़ो लदावनो है ।।
कवि बोधा अनी घनी नेजहु तें चढ़ि तापै न चित्त डरावनो है।
यह प्रेम को पंथ कराल महा तरवारिकी धार पै धावनो है ।।

'गगन-मण्डल पे सेज पियाकी'में केवल 'सुई-बेहकै द्वार सकै न तहॉ परतीति को टॉड़ो लदावनो' का ही भाव नहीं बल्कि 'गगन-मण्डल'की चर्चाद्वारा प्रियके उस अनन्त और व्यापक रूपककी अभिव्यञ्जनासे इसमें साकारत्वका तिरोधान हो जाता है। 'शून्य महलमे रहनि हमारी' अथवा 'गगन-मण्डलके बीचमे, तहवॉ झलकै नूर (कबीर) का भाव है। वह प्रिय केवल ऑखका विषय नहीं, दार्शनिकताका

मोह यहाँ अवश्य है। गगन-मण्डलके द्वारा उस निर्गुण 'पीव' की अभिव्यञ्जना होती है जिसके लिए कबीर कहते है—

मैं अबला पिउ पिउ करूँ, निर्गुन मेरा पीव।
शून्य-सनेही राम बिन, देखूँ और न जीव॥

अथवा—सुन्न महलमें सुरत जमाऊँ सुखकी सेज बिछाऊँ री (मीरा)

किन्तु इस दार्शनिकतामे सिद्धान्त-निरूपणका आग्रह अधिक नही। साधारणतया ध्यान प्रेम मार्गकी कठिनाईकी ओर जाता है जिसके लिए कबीरने कहा—

पाँव नही ठहराय, चढ़ूँ गिर गिर परूं।
फिरि फिरि चढ़उँ सम्हारि, चरन आगे धरूं॥
अंग अंग थहराइ, तो बहुबिधि डरि रहूं।
करम कपट-मग घेरि, तो भ्रममें परि रहूं॥
बारी निपट अनारि, ये तो झानी गैल है।
अटपट चाल तुम्हार, मिलन कस होइ है॥

और सहसा तब ध्यान जाता है, 'सूली ऊपर सेज पियाकी' और तब प्रेम-मार्गके सँकरेपनकी याद आती है—

प्रेम-गली अति साँकरी, ता में दो न समाय
जब मैं था तब गुरु नहीं, जब गुरु मैं तब नाहिं। (कबीर)

प्रेमके मार्गमे द्वैतकी भावना नहीं। प्रिय और प्रेमीमे जबतक पार्थक्य है, प्रेमकी पूर्ण परिणति नही। जबतक अहम्का भाव वर्तमान है, साधक और साध्यमें तादात्म्य नहीं। 'सूलीपर सेज पिया'में अपनत्व, निजत्वके खोनेकी इसी भावनाका संकेत है। जबतक आत्म-भावनाका

विनाश नही तबतक मिलनकी आशा नही । चाहे अगम अगोचरका प्रेम हो, या लौकिक प्रेम-भावना हो, जबतक इस निजत्वका विनाश नहीं हो जाता तबतक प्रेमकी पराकाष्ठा नहीं हो सकती । प्रेम त्याग है, इस कथनमे निजत्वके इसी त्यागकी चर्चा है। मीराकी इस बौद्धिकता, इस दार्शनिकताके कारण 'गीति-काव्य'मे विकृति आ जाती है किन्तु ऐसा सहज स्वाभाविक आत्माभिव्यञ्जन है कि सहसा इनकी ओर ध्यान नही जाता और विचार भावना बनकर उपस्थित होता है ।

मीराकी यह पीडा कोई बूझता नहीं, कोई जानता नहीं कि—

तलफै बिन बालम मोर जिया ।
दिन नहीं चैन रात नहिं निदिया, तलफ तलफके भोर किया ।
तन मन मोर रहँट-अस डोलै, सून सेजपर जनम छिया ।
नैन थकित भये पंथ न सूझै, साईं बेदरदी सुध न लिया । (कबीर)

'साईं बेदरदी' ने सुध न ली और, 'घायलकी गति घायल जानै की जिन लाई होय ।'' अथवा—

जनकी पीर राजा राम जानै कहूँ काहिंको मानै ।
नैनका दुख बैन जानै बैनका दुख श्रवनाँ ।
प्यंड का दुख प्रान जानै प्रान का दुख मरनाँ ।।
आस का दुख प्यास जानै प्यास का दुख नीरं ।
भगति का दुख राम जानै कहैं दास कबीर ।।

और कोइ दूसरा समझता तो नही, समझ सकता भी नही । 'मेरा दरद न जाने कोय' । यह पीड़ा कहीं चैन न्ीं लेने देती । 'दरदकी मारी वन-बन डोलूँ' कोई वैद्य नही मिला; कोई ऐसा नहीं मिला जो मनकी पीर पहचाने, 'अन्तर बेदन विरह की, वह पीर न जानी

हो' । 'मीराकी यह पीर मिटैगी, जब बैद साँवलियाँ होय' लेकिन जबतक ऐसा होता नहीं 'कहा करूँ मेरो बस नहिं सजनी, नैन झरत दोउ नीर' और यह पीर तो मानसिक है अन्तरकी है 'बाहरि घाव कछू नहिं दीसै, रोम रोम दी पीर' । केवल एक ही अभिलाषा है, आशा है, 'प्रेम-नदीके तीरा' 'साँवरियाके दरसण पाऊँ, पहर कुसुम्भी सारी' । बस यही काम्य है, यही कामना है । लोग तरह तरहकी बातें करते हैं, सत्य-को समझते नही, 'कोई कहे मीरा भई बावरी, कोई कहे मतमाती रे' । किन्तु मीरा—'मैं तो प्रेम दीवानी, मेरो दरद न जाने कोय' । जिसने यह पीर दी है, जब वही नही समझता, जब वही उपचार नही करता, यह दर्द जानेगा कौन ? सचमुच 'मीरा' प्रेमकी दीवानी है, उसका दर्द जानेगा कौन ?

अनुभूतिके आवेश, विचार और अनुभूतिका सन्तुलन, भाषा और भावका एकीकारण, शब्द और संगीतका समन्वय मीराकी विशेषताएँ हैं । आकुलताकी तीव्र धाराका निर्बन्ध उन्मुक्त प्रवाह है । मीराका प्रेम मन्द-गतिसे बहनेवाली शरत-कालीन धारा नही है । किन्तु उसमे बरसाती नदीका क्षणिक प्रवाह भी नही । तीव्रता क्षणिक आवेश नही अन्तरकी व्यथा केवल अनुभवका विषय है । मीरा उद्वेलित हैं, उद्वेगमें वासनाका आग्रह नही । सूरकी तरह अपनी पीड़ा व्यक्त करने-के लिए गोपियोकी ओट नहीं लेना पड़ती; मीरामें सहज स्वाभाविक स्वानुभूति और आत्मानुभूतिके साथ आत्माभिव्यक्ति और रसानुभूति है । मीराके लिए 'सोफो'के निमित्त कहे गये निम्नलिखित शब्द पूर्णतया उपयुक्त हैं—

Love's priestess, mad with pain and joy of song.
Song's priestess, mad with joy and pain of love.

यथार्थ था सो सपना हुआ,
अलीक था जो अपना हुआ है।

उर्मिलाको व्यथा है कि 'दिन देख नहीं सकते सविशेष, किसी जनका सुख भोग कभी!' आँखसे उमड़ते हुए आँसुओंको वह क्या करे, वे तो थमनेका नाम ही नहीं लेते। उसके विषादसे शून्यमें उमड़-घुमड़ घूम उठनेवाले घन किसीके छाये हुए उच्छ्वास-जैसे मालूम पड़ते हैं। वह घटाके सग बरसना चाहती है, शरदका स्वागत अश्रु-अर्घ्यसे करना चाहती है, उसके आँसू हंसोको मोतियोका भ्रम उत्पन्न करते हैं। वह अपने मनसे कहती है:—

नयनोंको रोने दे, मन तू संकीर्ण न बन, प्रिय बैठे हैं,
आँखोंसे ओझल हों, गये नहीं वे कहीं, यहीं बैठे हैं।

वह इन आँसुओंको लेकिन थामना कम नहीं चाहती। किन्तु विवशता है, लाचारी है:—

हे मानसके मोती, ढलक चले तुम कहाँ बिना कुछ जाने?
प्रिय है दूर गहनमें, पथमें है कौन तुम्हें पहचाने?

कोई पहचाननेवाला नहीं, कोई तुम्हे जानता नहीं, पहचानता नहीं, तुम्हारी पहुँच प्रियतक हो नही सकती, वे केवल बहुत दूर ही नही बल्कि गहनतम वनमें है जहाँ प्रवेश सहज नहीं, आसान नही। इतना ही नहीं, वह दृगम्बुको धूलमे नही जाने देना चाहती, बल्कि दुकूलमे बटोर रखना चाहती है। आँसुओ और फूलोंमे एक ही भावना की अभिव्यक्ति उसे मिलती है। फिर भी उसे गौरवका ध्यान कम नहीं है। वह जानती है उसका प्रिय महत् उद्देश्यकी पूर्तिके लिए गया है। रामका उच्च आदर्श भले मत हो, बुद्ध-जैसी लोक कल्याणकी भावना भले मत हो किन्तु स्नेह और शीलकी रक्षाके लिए त्याग अपनेमें कम महत्वपूर्ण नहीं। वह जानती है,

जीवन केवल हास-विलास, रंग-रास नहीं, जीवनका लक्ष्य उत्सर्ग है—

जाये नहीं लाल लतिकाने झड़नेके लिए,
गौरवके संग चढ़नेके लिए जाये हैं।

यह उत्सर्ग, यह त्याग ही जीवनकी श्रेष्ठ कामना है अभिलाषा है। जीवनके इस त्यागमय सत्यसे वह अनभिज्ञ नही; और उसके प्रिय इसकी पूर्तिमे गये हैं, इसका भी कम ध्यान नहीं, किन्तु अपनी ऑखोको वह क्या करे! मनको किसी भाँति मना तो लिया मगर 'ये दोउ नयना बिगरि पड़े, अतः 'निसिदिन बरसत नैन हमारे' वह जीवनमे 'प्रेमकी जय' दिखानेके लिए 'छोड़ धाम-धन जाकर मै भी रहूँ उसी वनमे, लेकिन लक्ष्मणके व्रतका उसे ध्यान है, वह नही चाहती कि उसका प्रिय व्रत-च्युत्य हो लक्ष्य-भ्रष्ट हो, और वह 'प्रियके व्रतमे विघ्न' डाल सके अतः चाहती है—'रहूँ निकट भी दूर।'

मनकी यह द्विधा, यह सघर्ष ही उसकी भावनाका रहस्य है। एक ओर—

'अवधि'शिला का था उसपर गुरु भार,
तिल तिल काट रही थी दृग जल धार।

और दूसरी ओर—

कठिन साधना किन्तु तत्व की,
प्रथम चाहिए सिद्धि सत्व की।

उसका 'यही रुदन ही मेरा गान' बनकर फूट पड़ता है और 'रोता है मेरा गान' ऑसुओंकी तीव्रताके लिए जिस गम्भीरतम अनुभूतिकी आवश्यकता है वह उर्मिलाके लिए सम्भव नही, कारण लक्ष्मणके गौरवका ध्यान और अपनी तुच्छताका ज्ञान इस अनुभूतिको तीव्र और गम्भीर नहीं होने देते, वह पागल होना चाहती है। किन्तु—

न बियोग है न यह योग सखी,
कह कौन भाग्य-मय भोग सखी।

मनका यही द्वंद्व, गुप्तजीके गीतियोंको गम्भीर होने नहीं देता। उर्मिलाके आँसू बहते हैं किन्तु सूरके गोपियोकी जल-धाराकी भाँति अनवरत और निर्बन्ध नही, बल्कि रुक-रुक कर निकलती है जिसमे उच्छ्वास है, ताप है, बिरहकी कसक ओर पीड़ा है किन्तु वह तीव्र आवेगमय, उन्मुक्त प्रवाह नहीं है। उर्मिलाका यह रुदन महाकाव्यका विषय है, यह गुप्तजीकी स्वतत्र गीति-रचना नही अतः व्यक्तित्वके एकत्वकी ओर ध्यान देनेपर चरित्रकी प्रधानता नष्ट हो जाती। ऑसुओके साथ आदर्शके प्रति उन्मेष रखनेका इसके अतिरिक्त और कोई दूसरा फल नही हो सकता। महाकाव्यमे भी कवि आत्माभिव्यञ्जन करता है यद्यपि उसको गीतिकार जैसी सुविधा और स्वतत्रता नहीं। मेरे विचारमे गुप्तजीकी आस्तिकता और वैयक्तिक अनुभूतिके सघर्षका चित्र यहाॅ है। हृदयकी पीडा ऑखोमे उमडनेको होती है, कुछ अशोमें उमड़ती भी है, किन्तु सहसा यह ध्यान हो आता है। सुख-दुःख उसके वरदान हैं क्यो? 'सुखमे आनन्द मनाऊँ' 'दुःखमे क्यों ऑसू बहाऊँ' और ऑखोसे उमड़नेवाले ऑसुओंकी धारा मन्द पड जाती है। व्यक्तित्वका यही विरोध उर्मिलाके इस मानसिक द्वन्द्वमे है। फिर भी पहले क्षणोमे जीवनकी निस्सारता यह विफलता विकल तो करती है, और 'स्वजनि रोता है मेरा गान' यदि प्रियतक यह स्वर पहुँच पाता, यदि इस मनोव्यथाका पता लग जाता, यदि यह रोदनका गान प्रियके कानोमे पड़ जाता फिर इतनी विकलता नही रहती, कमसे-कम इतना ख्याल नहीं रहता कि उसे पीड़ाका, व्यथाका ध्यान नहीं बल्कि प्रिय यह जान पाता कि वियोगिनी उर्मिलाके भाव क्या है? वह राजभवन

में रहकर भी कम दुःखिनी नहीं, सीताने रामका साथ देकर जिस आदर्शकी स्थापना की है, उर्मिला भी उसमे पीछे नहीं पड़ती और लक्ष्मणका साथ देती है। किन्तु लक्ष्मण जिस आदर्शकी प्रतिष्ठाके लिए गये हैं, उसमे उर्मिलाके कारण बाधा उपस्थित होती, लक्ष्मण शायद व्रतकी रक्षा नहीं कर पाते अतः वह साथ नहीं गयी; किन्तु उसने प्रियसे ऐसा कहा भी तो नहीं, कह भी तो नहीं सकी। सीताका आदर्श सामने देखकर शायद लक्ष्मणको उर्मिलाके प्रति वह आस्था वह विश्वास न रहे—ऐसे उर्मिलाके विचार हैं और उर्मिला यहाँ अकेली रोती है, गाती है, उसके मनमे पीडा है, व्यथा है, उद्वेग है, विह्वलता है, किन्तु हृदयके इस आवेगसे प्रिय तो अपरिचित ही रह गये। उन्हे यह भी पता नहीं कि उर्मिलाके ऑसू किस प्रकार छलछला रहे है! हाय री विकलता, इस विषादपूर्ण गीतकी तान प्रियतक पहुँच पाती, इसके सभी स्वर-ताल शून्यमे बिखर जाते हैं। कही आकाशमे फैल जाते तो उनकी ध्वनि इसी आकाशके तले कहीं बसे प्रियके कानोमे प्रवेश कर ही जाते; लेकिन नही, शून्यमे बिखर जाते हैं जहाँ कोई नही, जहाँ कोई सुननेवाला नही, कोई ऐसा नही जो प्रियको इनका सन्देश देता। चपल-गति समीर भी हृदयकी यह तपन समझता नहीं, उसमे भी इसके कम्पन उत्पन्न नहीं होते जा प्रियके कानोमे यह तान जा पहुँचे। प्रियके वियोगके कारण गाना ही रोना बन गया किन्तु इसका कम दुःख नहीं कि यह रुदन प्रियतक पहुँच नहीं पाता। यह अधीरताका कम कारण नहीं, काश यह प्रियके कानोंतक पहुँच पाता। फिर इतनी व्यथा नहीं रहती, आखिर इस आलाप-विलाप-प्रलापका कुछ मूल्य तो हो जाता। 'स्वर-तालके' शून्यमें झड़ पड़नेके कारण उस वन-फूलकी ओर ध्यान चला जाता है जिसकी मदिर, अन्ध-गन्ध जगको मतवाली नहीं करती, जो प्रेयसीके अलकोंका शृगार नही बनता, रसिकोंके

गले नहीं लगता, एक दीर्घ निःश्वास छोड़कर जो अनन्त शून्यमें बिखर जाता है। उर्मिलाके गीत भी इसी प्रकार व्यर्थ फैल जाते हैं जहाँ इनकी परिणति थी वहाँ इनकी पहुँच नहीं। उक्ति-वैचित्र्य और लाक्षणिक प्रयोग यहाँपर है किन्तु भावोन्मादका सहज प्रवाह नहीं—

उड़ने को है तड़पता मेरा भावानन्द,
व्यर्थ उसे पुचकार कर फुसलाते हैं छन्द।
दिलाकर पद-गौरव का ध्यान,
स्वजनि, रोता है मेरा गान।

उर्मिलाके भाव उडनेको तैयार हैं उसके भाव प्रियतक पहुँचना चाहते हैं, लेकिन छन्द उन भावोके लिए बन्धन बन जाते हैं। भाव पख पसार कर उड़ नहीं पाते। सूरदासकी गोपियोंकी आँखे इस प्रकार नहीं उड़ पातीं पर यहाँ तो भावानन्द ही उड़ना चाहता है, अभिव्यक्ति इतनी अपूर्ण रह जाती है कि भाव अभिव्यक्त हो नहीं पाते। पद-गौरवका ध्यान दिलाकर छन्द फुसलानेकी चेष्टा करते है किन्तु यह प्रयत्न व्यर्थ-सा जाता है। भाव छन्दोकी फुसलाहटमे नहीं आते और उन्मुक्त विहग-से पिजड़ेमे फँसते नहीं। इस पद-गौरवमें केवल छान्दस 'पद'का ही ध्यान नहीं बल्कि उर्मिलाकी उस हार्दिक वृत्तिकी भी अभिव्यञ्जना है जिसके कारण वह खुलकर रो नहीं पाती। उसके आँसुओमे तीव्रता आ नहीं सकती। भाव और छन्दकी इस भूमिकामें पन्त और निरालाके छन्द-स्वातन्त्र्यकी व्याख्या-सी है। अभि-व्यक्ति और अभिव्यक्त तथा भाव एव शैलीका सम्बन्ध साधारण नहीं।' विषम वस्तुको उसकी अभिव्यञ्जनासे विछिन्न कर देखनेका प्रयास अनेक अंशोमे शव-परीक्षा मात्र है। भाव और छन्दके विरोधद्वारा स्पष्ट प्रदर्शित हो जाता है कि भावानन्द भले हो, भावोन्माद नहीं है जो गीतिकाव्यका

शिलाधार है। यहाँ गम्भीरतम अनुभूतिका नैसर्गिक स्वच्छन्द प्रवाह नहीं बल्कि विचार और बौद्धिकताके कारण कलाकारी है, कलात्मकता कम। मालूम पड़ता है कवि भाव, छन्द, पद इनकी व्याख्या कर रहा है। मानसिक सघर्षकी तीव्रता, भावोन्माद एवं अनुभूतिके गम्भीर क्षणोंमे ऐसी व्याख्या, यह लाक्षणिक प्रयोग, यह श्लेषात्मक आग्रह नहीं हो सकता।

अपना पानी भी नहीं रखता अपनी बात,
अपनी ही आँखें उसे ढाल रहीं दिन रात।
जना देते हैं सभी अजान।

उर्मिला चाहती है आँसू आँखोंमे ही बन्द रह जायँ क्योंकि वे बाहर आकर हृदयका सारा रहस्य प्रकट कर देते हैं, भेद बुझा देते हैं।

रहिमन अँसुवा नयन ढरि, जिय दुख प्रकट करेइ।
जाहि निकारो गेह ते, कस न भेद कहि देइ॥

लेकिन यहाँ घरसे निकलनेकी बात नहीं। वह तो आँखोंके बाहर इन्हे निकालना नहीं चाहती। हाय री विवशता! अपनी आँखोंपर, आँखोंके पानीपर भी वश नहीं रह गया और यह पानी ढलता ही जा रहा है, रोके रुकता नहीं। वह नहीं चाहती कि 'मनका भरम खो जाय'—

अरे एक मन, रोक थाम तुझे मैंने लिया,
दो नयनोंने, शोक, भरम खो दिया, रो दिया।

अकेले दिलकी बात तो न्यारी थी, मन एक था कोई दस बीस तो था नहीं अतःकिसी प्रकार उसकी रोक थाम हो गयी किन्तु उधर एक मनको रोका तो दो आँखे रो पड़ी। एकको तो रोकना आसान था,

दूसरे मनकी रोक-थाममे उर्मिला उलझ गयी तो दो नयन बह चले। आखिर इस बेबसीको क्या करे कोई ?

उर्मिला अपने ऑसुओंकी रोक-थाम क्यो चाहती है ? क्या केवल इसलिए कि प्रियतक रोदनकी तान पहुँच नहीं पाती ? क्या वह आशा करती है. कि उसकी व्यथाकी तान उनतक यदि पहुँच पाती तो क्या वे रुक नहीं पाते, रुक नहीं सकते ? और नहीं तो उसने जाना ही कैसे कि उसके गान प्रियतक नहीं पहुँच पाते ? लेकिन, इतना ही नहीं, हो जाता है 'पद-गौरवका ज्ञान', इस पदका नहीं कि वह राजकुलकी है, बल्कि उस पद-गौरवकी याद जग पडती है जो लक्ष्मणके उच्च आदर्श-पालन, सहज त्याग एव अनिर्वचनीय स्नेहके कारण मिला है, उसके साथ ही वह कर्त्तव्य-बुद्धि भी है, जो उसके कारण सॉसोके जाग्रत विषादसे उसमें जगती है। भला इस द्वन्द्वमे पड़े मनको वह स्वच्छन्दता कहाँ, जो खुलकर एक बार रो ले। वह रोती है अवश्य किन्तु सहसा पद-गौरवका ध्यान उसके ऑसुओंकी झडी बन्द कर देते हैं ठीक वैसे ही जैसे अक्षम कविके छन्द उसके भावोंका पर कुतर देते हैं। यदि अपना वश चलता, वह इन ऑसुओको निकलने नहीं देती, कारण उनके द्वारा मनका सन्ताप, हृदयकी व्यथाका रहस्य प्रकट हो जाता है। किन्तु भाषा यहॉ कविका साथ नहीं दे रही है। शैलीकी सफलता केवल शब्दोंके प्रयोगमे नहीं बल्कि भावनाको उपयुक्त अभिव्यक्ति देनेमे है। जितनी विवशता, जितनी लाचारी इन भावनाओमें है, उनकी सगीतात्मक अभिव्यक्ति नहीं हो पाती। वह करुणा, वह बेबसी सगीत होकर नहीं फूटती जो व्यथाको ध्वनिमय साकारता मिलती। 'जना देते हैं' मे 'कस न भेद कहि देउ' जैसी आकुलता नहीं और फिर कौन ? ऑखोका पानी ही तो फिर 'जना देते हैं' क्यो ? 'अपनी ही ऑंखे उसे ढाल रही दिनरात'मे 'ऑसुओके

प्रवाहमें जो स्वच्छन्दता होनी चाहिये, वह नही मिलती। मालूम पडने लगता है जैसे आँखे जान-बूझकर अश्रु-वर्षा कर रही हों, उनका प्रवाह वर्षाकी उमड़ती सलिल राशि जैसा भी नही, और न शरत्कालीन सरिता-की स्निग्ध शान्त धाराकी भाँति है बल्कि नहरोंके कृत्रिम चाञ्चल्य जैसा है।

दुख भी मुझसे विमुख हो करे न कहीं प्रयाण,
आज उन्हींमें तो तनिक अटके हैं ये प्राण।
विरहमें आजा तू ही मान !
स्वजनि रोता है मेरा गान।

बिछुड़े प्रियकी याद सदा सताती है, कभी चैन नहीं लेने देती, किन्तु प्रिय उसी वेदनामे जीवित रहता है। वेदना, व्यथा, पीड़ा उस जीवनके आधार और तत्त्व है। सुख-सयोगमे जिस प्रकार प्रियका साहचर्य जीवनका आधार है उसी प्रकार वियोगमें उसकी स्मृति। उर्मिला पागलपनका आह्वान करना चाहती है जिसमे क्षणभरको ही इस पीड़ासे त्राण मिले, लेकिन यह क्षणिक भावावेश है। वह इस पीड़ासे छुटकारा नहीं चाहती यही तो उसका धन है, 'उसकी भूखी झोलीका मोती है' प्राणोका यही सहारा है, आज उनसे छुटकारा पाकर अपनी और प्रेमकी मृत्यु वह नहीं चाहती। प्रियसे भिन्न होकर उनकी व्यथा सदा बनी रहे नहीं तो जीवनका आधार कौन होगा ? और जीवनके इस आधारके अभावमे जीवन ही कैसा ? वह तो मृत्यु है। ऐसी अवस्थामें उर्मिला मर जायगी, जीवन-मृत हो जायगी। अतः वह आँखोके मोतियोंको सँजो रखेगी—

तुम्हारे हँसनेमें है फूल हमारे रोनेमें है मोती

अतः

न जा अधीर धूलमें, दृगम्बु आ दुकूलमें।

इस गीतिमे भावावेशका स्वच्छन्द, निर्बंध, उन्मुक्त प्रवाह नहीं, जिनकी गीति-काव्यके लिए अपेक्षा होती है। कल्पना और सौन्दर्य-बोधसे जाग्रत और उदीप्त सगीतात्मकतासे अधिक उक्ति-चित्रोपमताका आग्रह है। भावावेशके अभावका कारण उर्मिलाका द्विधामय व्यक्तित्व एव गुप्तजीका दृष्टिकोण है। सगीत यहाँ है, लेकिन शब्दोके अन्तरालसे फूट पडनेवाली सगीतात्मकता नहीं। ऐसा नही मालूम पड़ता कि सगीत शब्दोकी आत्मामे घुल गया है। गुप्तजीकी प्रतिभा गीति काव्यात्मक नहीं प्रबन्धात्मक है। प्रबन्धमे इन गीतोका समावेश नवीन प्रकारका ही प्रयोग है। कथाके आग्रहके कारण व्यक्तिमे प्रबन्धात्मकताका जो आरोप है, वह व्यक्तित्वके विकासका विरोधी न होकर भी वैयक्तिकताकी प्रबल अभिव्यक्तिका विरोधी अवश्य है। ऐसा नही कि व्यक्तिगत सुख-दु:खके गीतोंका प्रभाव उन चरित्रोपर नहीं होता बल्कि उस सुख-दुःखकी समुचित अभिव्यक्तिका अवसर न होनेके कारण ही स्वानुभूति रसानुभूतिकी सीमातक नहीं पहुँच पाती। अनेक लोगोने—महात्मा गाँधीतकने—साकेतमे उमड़े आँसुओका विरोध किया है किन्तु मै कहना चाहता हूँ कि साकेतमे—विशेषकर उर्मिलाके गीतोमे—शुद्ध आँसुओका इतना अभाव क्यो है?

तुम कनक किरणके अन्तरालमें
लुक छिपकर चलते हो क्यों?
नत मस्तक गर्व वहन करते
यौवनके घन रस कन ढरते,

हे लाज भरे सौन्दर्य !
बता दो मौन बने रहते हो क्यों ?
अधरोके मधुर कगारोंमें
कलवल ध्वनिकी गुञ्जारोंमें
मधु सरिता-सी यह हँसी,
तरल अपनी पीते रहते हो क्यों ?
बेला विभ्रमकी बीत चली
रजनी-गंधाकी कली खिली
जब सान्ध्य मलय आकुलित
दुकूल कलित हो, यो छिपते हो क्यो ?

—'चन्द्रगुप्तसे' : प्रसाद

कवि प्रसादके इस सौन्दर्य-चित्रकी भूमिकाके रूपमे विद्यापतिकी राधाको देखना चाहिये। विद्यापतिकी राधा कलामय, किशोरी है। शैशव और यौवनका मेल है, वयःसन्धि है। आँखोने कानकी राह पकडी है 'श्रवनक पथ दुहुँ लोचन नेल' अब वे आँखे आमने-सामने नही देखती, तिरछी हो गयी हैं, कटाक्ष-पातका श्रीगणेश हो गया है। हँसीकी रेखा अँधरोंपर खेलने लगी है। रह-रहकर आँचल खिसक पड़ता है, आधा आँचल खिसककर नव अकुरित यौवनकी सूचना दे देता है। हँसी खिल-खिलाकर फूटती नही, आधी मुँहमें ही रह जाती है। मुस्कानकी क्षीण रेखा अधरोंपर फैल जाती है। आनन्दकी तरंग आँखोकी राह छलकती नही, आँखोंमें ही बन्द रह जाती है। आधे अधखुले वक्षकी ओर, अर्द्धो-भिन्न उरोजोकी तरफ दृष्टि जाती है। दन्त-पंक्तिमे मोतियोका हास है, अधर प्रवाल हिल रहे हैं। अपरूप है विद्यापतिकी यह बाला। विद्यापतिकी

मुग्धा, किशोरी है, चचल है, प्रेमका उल्लास है किन्तु गाम्भीर्य नहीं, वह आनन्द विह्वल है, मुग्धा है। ईषत् लज्जाका भाव भी अधिक देरतक टिकता नहीं। कोई संकोच नहीं, कोई द्विधा नहीं।

आध आचर खसि आध वदन हॉसि आधहि नयन तरग।
आध उरज हेरि आध ऑचर भरि तब धरि दगधे अनंग।
दसन मुकता पानि अधर मिलायत मृदु-मृदु कहतहि भाषा।
विद्यापति कह अनएसे दुख रह हेरि-हेरि ना पुरल आशा।

इस सौदर्य चित्रमे मनोरमता है, आग्रह है, किन्तु सौन्दर्य स्थूल रेखाओमे घिरा है। चित्रोमें रग अस्पष्ट है। प्रसादके चित्रमे स्थूलता नहीं, सौन्दर्य प्रगल्भ नहीं। सौन्दर्थिक चेतनाकी लहर दौड रही है।

तुम कनक किरनके अन्तरालमें
लुक छिपकर चलते हो क्यो?

लाम-भरे सौन्दर्यको इस प्रकार सिमटकर प्रकट होनेकी आवश्यकता था। उसे राधाकी भॉति यौवनके ईषत् उद्भेदहीमे—

छने-छने दसन छटा छट हास
छने-छने अधर आगे करु वास।

होना चाहिये था। लेकिन यह सौन्दर्य लुक छिपकर चलता है। यह सौदर्य साधारण नहीं। कनक किरणोके अन्तरालमे छिपनेवाले सौन्दर्य-मे वही सौन्दर्य, वही मनोरमता, वही रग-विलास आवश्यक है। छिपना तभी सम्भव है जब दोनोका रग रूप एक हो। यह बिहारीकी नायिका भी नहीं जिसकी सूचना 'भ्रमरावली देती हो। कनक किरणोके अवगुण्ठनमे सिमटे सौन्दर्यमे यौवनका उभार है। यौवन अपना रस घट उडेल रहा

है। रसके कण विकीर्ण हो रहे हैं। उमडते घनसे प्राप्त रस अंग-अगमें प्रदीप्त हो उठा है। यहाँ शैशव और यौवनका मेल नहीं। शिशुता छूट-चुकी है। यौवनकी आशा है, जिसमे अग अग दीपित है। फिर यह लज्जा कैसी? यह सलज्ज सम्भार कैसा? यह सौन्दर्य अगोसे ही नहीं फूटता बल्कि वचन और क्रियासे भी प्रगल्भ हो उठता किन्तु, सौन्दर्य लाज भरा है, मूक है, मुखर नहीं। विद्यापतिकी राधाने यौवन प्राप्त नहीं किया और तब इतनी निस्सकोच है। जयदेवकी राधा युवती है अतः उसकी प्रगल्भता स्वाभाविक है—

स्फुरितमनङ्ग तरङ्गवशादिव सूचित हरि परिरम्भम्।
पृच्छ मनोहरहार विमल जलधारममुं कुच कुम्भम्॥

किन्तु प्रसादकी बालाका यह भाव विलक्षण है। जहाँ उमड़ते सौन्दर्यमे सकोच, भय और आशकाका त्याग उचित था, जहाँ उसे मुखर बन यौवनकी लहरोकी सूचना देनी थी, जहाँ रसानुभूतिकी मग्नता स्वीकार करनी चाहिये थी, वहाँ यह यौवन-भरा सौन्दर्य मौन है। प्रसादके इस-चित्रमे नारी-सुलभ लज्जाका मिश्रण है। इस चित्रमे पन्तकी बाल-सुलभ चचलता नहीं, शैशवका निश्छल हास नहीं, महादेवीकी करुणविषादमयी रूप-मूर्ति नही। यौवनका साकार चित्र है किन्तु सलज्ज लज्जा भारावनत मौन मधुर और तरल अङ्गोसे शोभा फूट रही है, छटा छलछला रही है। किन्तु अपने सौन्दर्यमे लीन यह 'चली भरि उतराई' भी नहीं। प्रसादका यह चित्र रवि बाबूकी 'उर्वशी'का भी चित्र नहीं।

वृन्तहीन पुष्प सम अपनाते अपनी विकशि।
कबे तुमी फुटिले उर्वशि।
आदिम बसन्त प्राते, उठे छिले मन्थित सागरे।

डान हाते सुधा पात्र, विष भाण्ड लिए बाम करे,
तरंगित महा सिन्धु मंत्र शान्त भुजंगेर मत।
पड़े छिलो पद प्रान्ते, उच्छ्वसित फणा लक्ष शत
करि अवनत।
कुन्द शुभ्रनग्नकान्ति सुरेन्द्र वन्दिता,
तुमी अनिन्दिता।
कोनो काले छिले नाकि मुकुलिका बालिका बयसी
हे अनन्त यौवना उर्वसि
आँधार पाथार तले कार घरे बसिया एकेला
मणिक मुकुता लये करे छिले शैशवेर खेला
मणि दीप दीप्त कक्षे समुद्रेर कल्लोल संगीते
अकलंक हास्य मुखे प्रवाल पालके घुमाइते
कार अङ्कटी ते?
जखन जागिले, यौवने गठिता
पूर्ण प्रस्फुटिता।

[बिना वृन्तके फूलकी भाँति, अपने ही अपनेको विकसित करके, ऐ उर्वशि, तू कब खिली? आदिम वसन्तके प्रभात कालमे मन्थित सागरसे दाहने हाथमे सुधापात्र और बायें हाथमे विषभाण्ड लेकर तू निकली थी। तरङ्गित महासिन्धु मन्त्रमुग्ध भुजङ्गकी भाँति अपने लाखो उच्छ्वसित फनोको झुकाकर तेरे पदतलमे पड़ा हुआ था। कुन्दके समान तेरी शुभ्र-कान्ति इन्द्रद्वारा सम्मानित है, तू अनिन्दिता है, भला कौन तेरी निन्दा करे?

हे उर्वशि, तेरा यौवन अनन्त है, फिर क्या कलीकी तरह तू बालिका थी अथवा नहीं? अतलके अन्धकारमे तू किसके यहाँ अकेली बैठी

हुई मणियो और मुक्ताओको लेकर अपने शैशवका खेल करती थी। मणियोके दीपोसे प्रदीप्त भवनमे समुद्रका कल्लोल-सगीत सुनकर निष्कलङ्क मुखसे हँसती हुई प्रवालोके पलङ्गपर तू किसकी गोदमे सोती थी? इस विश्वमे जब आँखे खुली, तेरा यौवन गठित हो चुका था। बिलकुल तू खिल चुकी थी।]

उर्वशीके इस चित्रमे उन्मद यौवनका हास विलास है। लज्जा नहीं, संकोच नही, कोई द्विधा नहीं, अनन्त रूपवती है उर्वशी, वह इन्द्र-लोक-की रानी है, वह उस लोककी प्रेयसी है, उसके कटाक्षसे तीनो लोक चचल हो उठते हैं। नशीली सुगन्ध अन्ध वायु ढोती है। मधुमत्त भौंरोको भाँति कवि लुब्ध-चित्त सगीतकी वर्षा करते हैं। उसके छन्द छन्दपर सिन्धु तरङ्गित हो उठता है, धराका वक्षस्थल काँप उठता है। वह स्वप्नलोक विहारिणी है। इस सौन्दर्य चित्रमे तीव्रता है, आवेश है, उच्छ्वसित तरङ्ग, उद्दाम वेग है। प्रसादका चित्र सयमित है, लज्जाके भारसे झुका हुआ। वासनाएँ उद्दाम नही, तरङ्गाकुल भावनोदधि नहीं, मूक, सरल और निश्छल सौन्दर्य है। उर्वशीका 'बारागणा सौन्दर्य' है। वह अनन्त यौवना है। सुवासिनी प्रेयसी है, प्रियतमा है, प्रेमिका है। वह 'कीट्स'की नायिकाकी भाँति भी नही—

Light feet, dark violet eyes, and parted hair,
Soft dimpled hands, white neck and creamy breast.

प्रसादके इस सौन्दर्य-चित्रमे तरल हास भी नही, हँसी अधरोपर छला-छला नहीं पडती। कगारोके सीमा-बन्धमे पड़ी, कल-कल ध्वनिकी गुञ्जारसे मुखरित मधु-सरिता-सी हँसी वह सौन्दर्य पीता रहता है। हँसी अधरोके कगारोका अतिक्रमण नहीं कर पाती; अधरोपर रेखा-सी खिल कर रह जाती है। मधु सरिताकी कल-कल ध्वनि फैल नही पाती, वह

सौन्दर्य नित्य उसे पीता रहता है। वह हँसी कभी मुखरित भी नहीं होती, कभी मरती भी नहीं। प्रसादके इस सौन्दर्य चित्रमें विद्यापतिकी राधा वाली 'आधी हँसी' भी नहीं, मुस्कानकी क्षीण रेखा मात्र है, सकोच-हीन उल्लासमय पूर्ण हास्य नहीं। इसमें नशीले यौवनके क्षणोंका भी चित्र नहीं—

पलकें मदिर भारसे थीं झुकी पड़तीं।
नन्दनकी शतशत दिव्य कुसुम कुंतला
अप्सराएँ मानो वे सुगन्धकी पुतलियाँ
आ आ कर चूम रहीं अरुण अधर मेरा
जिसमें स्वयं मुसकान खिली पड़ती।

× × ×

कितनी मादकता थी?
लेने लगी झपकी मैं
सुख रजनीकी विश्रम्भ कथा सुनती,
जिसमें थी आशा
अभिलाषासे भरी थी जो
कामनाके कमनीय मृदुल प्रमोदमें
जीवन-सुराकी वह पहली प्यालीकी।

—प्रसाद

इस चित्र जैसी मादकता भी नहीं और न रूप-गर्व ही है। उद्दाम सौन्दर्यका स्वच्छन्द वर्णन है, जिसमें गति है, प्रवाह है, रमणीयता है। लाज-भरे सौन्दर्यके चित्रमें मन्थर, शान्त प्रवाह है, रमणीयता-पूर्ण सौन्दर्यका आग्रह है। यौवनकी कली खिल रही है। शैशव-यौवनके संगमकी सन्ध्या बीत चुकी। कामनाओंकी कली खिलनेहीवाली है। आशाएँ जगेंगी, उन्माद

बिखरेगा। मलयके मदिर अन्ध-गन्धसे आकल सन्ध्याका दुकूल आशाओं-की कलियोंसे भरेगा। रजनी आ रही है, जिसमें उन्माद है, मिलन है, उद्दाम गति है, प्रेमकी पुलक-भरी तरङ्ग है, अब लज्जाके इस अवगुण्ठनकी अपेक्षा ही क्या? यौवनके इस मधु-हासमे यह अपनेको छिपानेका विभ्रम कैसा? सौन्दर्य, इस सन्ध्याकी अरुणाभ छायामे छिपनेकी अब आवश्यकता नहीं। एक बार मुखरित हो दिशाओंको चाँदनीके हाससे परिपूर्ण कर दो, जीवनमे सौन्दर्य, सुषमा और ज्योत्स्नाका प्रसार हो।

इस चित्रमे सजीवता है, होठपर मन्द मुस्कान है, आँखोमे यौवनकी बेहोश मदिराकी ईषत् लाली है, यौवन घनसे बरसती कामनाओकी फुहियाँ, बूँदें है, किन्तु मौन, सलज्ज और भारावनत। यह रूप रेखाओमे बाँधता नही, सीमामे रहता नही। चित्र और सगीतका समन्वय है। शब्दोमे तरल, मन्थर प्रवाह है, सयम है, उद्दाम वेग नहीं। जिस प्रकार सौन्दर्य उद्वेग-रहित निश्चल, निष्कम्प दीपककी लौ है, उसी प्रकार संगीतात्मकता मधुर, मुखर, मन्द है। उल्लासका उन्मत्त नर्त्तन नहीं, वासनाका विकट अट्टहास नही। कल्पना अनुभूति और भावनाके साथ मिलकर एकाकार हो जाती है। कौतुक-भरा, मुस्कानकी रेखासे घिरा, सजीव चित्र है। इस चित्रमें सूक्ष्मता है किन्तु अस्पष्टता नहीं। चित्रकारकी कुशल तूलिकाने बारीक रेखाएँ खीची है महादेवीकी अस्पष्टतासे इसकी कोई तुलना नहीं। कल्पनाकी तूलिकासे चित्र खीचते समय महादेवीकी रेखाएँ चित्रपटसे दूर कहीं दूसरे लोकमे पड जाती है। चित्रपटपर चित्र देखनेका आग्रह रखनेवाले व्यक्तिको इसमे कठनाई हो जाती है। वह महादेवीका कल्पना सूत्र पकड उस विस्तृत चित्रपटकी रेखाओतक पहुँच पाता नहीं और फलस्वरूप वह महादेवीकी कविताओमे चित्रात्मकताका अभाव मान बैठता है। प्रसादके इस चित्रकी रेखाएँ किसी

बाहरी चित्रपटपर नहीं पड़ती किन्तु वे सूक्ष्म अवश्य हैं अतः उन्हें देखनेके लिए दृष्टिगड़ानी तो अवश्य पड़ेगी। प्रसादकी अनुभूति पन्तकी भाँति कल्पनात्मक नही वल्कि कल्पनाके प्रसारसे उस अनुभूतिमें गम्भीरता और तीव्रता आती है। पन्तमें सौन्दर्यकी छायात्मक कल्पनाका आवेश है—

आज उन्मद मधु-प्रात
गगनके इंदीवरसे नील,
भर रही स्वर्ण मरंद समान,
तुम्हारे शयन-शिथिल,
सरसिज उन्मील
छलकता ज्यों मधुरालस, प्राण।

शयन-शिथिल उन्मील सरसिजकी निद्रालस पलकोंमें माधुर्य है, मतवालापन है किन्तु वह लज्जाका भार नही जो 'मधु-सरित सी यह हँसी तरल अपनी पीते रहते हो क्यों'में है। और इसमें नहीं—

काली आँखोंमें कितनी
यौवनके मदकी लाली
मानिक मदिरासे भर दी
कितने नीलमकी प्याली (प्रसाद)

चिर सलज्ज अवगुण्ठनमयीका यह सौन्दर्य तरल, छायामय और नवीन है।

नयनोंके डोरे लाल गुलाल-भरे, खेली होली !
जागी रात सेज प्रिय पति-सँग रति सनेह-रँग घोली,
दीपित दीप-प्रकाश, कञ्ज छवि मञ्जु-मञ्जु हँस खोली—
मली मुख चुम्बन रोली।
प्रिय-कर कठिन-उरोज-परस कस कसक मसक गयी चोली
एक-वसन रह गई मन्द हँस अधर-दशन अनबोली—
कली-सी काँटेकी तोली।
मधु-ऋतु-रात, मधुर अधरोंकी पी मधु सुध बुध खो ली,
खुले अलक, मुँद गये पलक-दल, श्रम-सुखकी हद हो ली—
बनी रतिकी छबि भोली।
बीती रात सुखद बातोंमें प्रात पवन प्रिय डोली,
उठी सँभाल बाल, मुख-लट, पट, दीप बुझा हँस बोली—
रही यह एक ठठोली।

— निराला

सौन्दर्य चेतनाके उन्मेषसे जागरित निरालाके इस रूप गीतमें सौन्दर्यात्मक अभिव्यक्तिके साथ सौन्दर्यकी कलात्मक सृष्टि है। जबतक 'वह रूप जगा उरमें' न था तबतक जीवनमें माधुर्यकी सृष्टि नहीं हुई थी ; कारण स्नेहकी बूँदें ही तो ज़ीवनको जीवन देती हैं, अतः उस रूपके जगते ही 'बजी मधुर वीणा किस सुरमें' ? 'किस सुरमें' जो कौतूहल्य है वह केवल वीणावादकके अजनबीपनके कारण नहीं बल्कि सुरके उस सरस अनजानेपनके कारण है जैसा और कभी जग न पाया था। रवि बाबूके 'जागिलो काहार वीना मधुर स्वरे'में स्वर तो मधुर अतः जाना हुआ है केवल 'काहार वीना'के कारण कौतूहल, उत्सुकता और जिज्ञासा है। 'किस सुर'की जिज्ञासाको तुष्टिके साथ 'प्यार करती

हूँ अलि' अतः 'इसलिए मुझे भी करते हैं वे प्यार।' सौन्दर्यमे स्नेह-की पुलक और स्पर्शकी कोमलता है।

'नयनोके डोरे लाल गुलाल-भरे'मे जिस मिलनका सकेत है वह क्षणिक आवेश नहीं ; दो क्षणोका व्यापार नही ; इसमे परकीयत्वकी सम्भावना नहीं वैष्णव साहित्यमे परकीयाकी कल्पनाद्वारा प्राणोंके नवोन्मेष, चञ्चल आवेग और गम्भीर प्रेरणाको अभिव्यक्ति हुई है किन्तु उनके साथ अन्याय भी कम नही, प्रेम ही स्वकीया अथवा परकीयाका मापदण्ड होना चाहिए अतः प्रेमके इस प्रबल और प्रचण्ड आवेशमे परकीयत्वकी छाया नही हो सकती। परकीयत्वकी कल्पना द्वारा मिलनके क्षणोकी क्षणिकताका चित्र उपस्थित किया जा रहा है। निरालाकी नायिकाका यह मिलन आधी रातमे छिपकर आनेवाले प्रियका सयोग मात्र नही। इस सौन्दर्यपूर्ण शृगारिक चित्रणमे मानवीय भावना-की प्रतिष्ठा है! नारीका सौन्दर्य मात्र शरीरमे आबद्ध नही बल्कि अरूपको वहाँ मूर्तता प्राप्त होती है। 'रूप और नारी' शीर्षक निबन्ध-मे निरालाने लिखा है ;—"साहित्यमें इस अरूपकी स्वतन्त्र सत्ताको नारियोमे स्थिर रूप दिया है। ××××× बाह्य महाशून्य चेतन-स्पर्शसे जगी हुई असख्यो रूपसी अप्सराओकी तरह ये साहित्यकी पृथ्वीपर चपल-चरण, नम्र, शिष्ट, भिन्न-भिन्न अनेक प्रकृतिकी श्री शृंगारमयी, रूपके ऊषा लोकमे अपलक ताकती हुई, लावण्यकी ज्योतिसे पुष्ट यौवना युवती कुमारिकाएँ हृदय-शून्यके चेतन स्पर्श-से जगकर उठी हुई है, जो मूर्त बाह्यरूप राशिहोकी तरह अमर हैं।"

इसी भूमिकामे निरालाके इस शृगार गीत को देखना चाहिए। 'प्रिय कर कठिन उरोज परस कस कसक मसक गयी चोली' और जय देवके 'धीर समीरे यमुना तीरे वसति वने वनमाली, गोपी-पीन पयोधर-

मर्दन-चञ्चल-कर-युगशाली’मे रूप साम्य होते हुए भी सौन्दर्य-भावना-की मूर्तता से आच्छन्न रूप-विधानकी चेतनाके कारण अन्तर है। कुंज-की एकान्तता, यमुना तीर और उन्माद मदनकी कल्पना गीत-गोविन्द-की राधाके परकीयत्वका सकेत करती है। इस शृंगार-भावनामे अबाध वेग है जिसमे ‘लोक लाज खोई’की तीव्रता है। जयदेवकी राधा सुकु-मार, किञ्चित् लज्जिता किन्तु प्रगल्भा है और प्रेम-विह्वला है। वह अनुराग उन्मादकारी हो उठा है। राधाके कृष्ण ‘गोप कदम्ब नितम्बवती मुख चुम्बन’... है, जिसमे स्नेहकी एकान्तिकता नही, शठनायकत्व है। विद्या-पतिकी राधाका रूप उन्माद और प्रेमोल्लास विह्वल है। मिलनके उल्लासमे उन्मत्त राधाकी वाणी फूट पडती है:—

कि कहब रे सखि आनँद ओर
चिर दिने माधव मन्दिर मोर।

इस मिलनमे कोई द्विधा नहीं किन्तु है अचेतन मानसकी सकोच-भावना जिसका मूल विकास नैतिकताकी भावनाके आधारपर हुआ है। ‘प्रातःकाल हो गया। आकाशके सभी तारे अव्यक्त हो गये। कोयलने कूकना शुरू कर दिया। विरहके कारण चीत्कार करनेवाला चक्रवाक मिलनके विभोर क्षणोमे मूक हो गया। चाँद मलिन हो गया। नगरकी गाते डगरपर चली आयीं। कुमुदिनीमे मकरद ढँक गया। होठोंके पान-का रग भी म्लान हो चला। अब विलास करनेका समय नहीं रहा। देखो, ससारभर इसकी निन्दा कर रहा है:—

हे हरि! हे हरि! सुनिय स्रवन भरि,
अब न विलास क बेरा।

गगन नखत छलसे अवेकत भेल,
कोकिल करइछ फेरा।
चकवा भोर सोर कए चुप भेल,
उठिए, मलिन भेल चन्दा।
नगर क धेनु डगर कए संचर,
कुमुदिनी बस मकरन्दा।
मुखकर पान से हो रे मलिन भेल,
अवसर भल नहि मन्दा।
'विद्यापति' भन एहो न निक थिक,
जग भरि करइछ निन्दा।

'जग भरि करइछ निन्दा' में नैतिक संकोचके साथ रूप और स्वाधीनपतिका होनेका गर्व है। जग निन्दाकी परवाह नही करनेवाले प्रियके कारण लोक-लाजकी भावनाके कारण अचेतन मनमे होनेवाले संघर्षका अस्पष्ट चित्र अंकित हो गया। हर्षके साथ अवरोधक (Censor)का बन्धन-विधान भी है।

'जागी रात सेज प्रिय पति-सॅग रति सनेह रँग घोली,
दीपित दीप प्रकाश, कञ्ज छबि मञ्जु-मञ्जु हँस खोली—
'भली मुख चुम्बन रोली।'

इसमे सकोचका कोई बन्धन नहीं। 'प्रिय पति-सॅग' मे स्वकीयत्व-विधान है। जयदेवकी राधाकी भॉति निरालाकी रूप-सुन्दरी 'उन्मद-मदन' उत्पीड़िता प्रगल्भता नहीं और विद्यापतिकी राधाकी तरह सकोच-शीला किशोरवय बालिका ही है। रविबाबूके एक चित्रमे विवश-सकोचका चित्र है यद्यपि दोनो चित्रोमे अन्तर कम नहीं। विद्यापतिकी

राधामें स्वाधीनपतिका होनेके कारण गर्वोन्माद और नायककी विलास-प्रियताके प्रति संकोच-भरी आसक्ति है और रविबाबूकी किशोरीमें संकोच-की सलज्ज और कातर भावना—

'रात बीतनेसे पहले मुझे जगाया क्यों नहीं ? दिन चढ़ आया और मैं लाजके मारे मरी जा रही हूँ। लज्जाके कारण जकड़े पैरोंसे मैं राह कैसे चलूँ ? आलोकके स्पर्शमात्रसे लज्जाके कारण संकुचित हो शेफालिकाएँ झड़ी जा रही हैं। अपनी इस कामिनीकी शिथिल लज्जाको देख किसी तरह प्राण सँभाले हुए हूँ। उषाकी वायुसे बुझ बुझकर बेचारे प्रदीपकी जान बच गयी और रातके चन्द्रमाने गगनके एक कोनेमें छिपकर शरण ली है। पक्षी पुकार-पुकारकर कहते हैं—रात बीत गयी। बगलमें कलसी दबाए बधुएँ पानी भरनेको चली जा रही हैं, अपनी खुली हुई व्याकुल बिथुरी वेणीको मैं सँभाल रही हूँ। मैं कैसे इस समय काम करनेको निकलूँ ?

यामिनी ना जेते जागाले ना केनो
बेला होलो मरि लाजे।
सरमे जड़ित चरणे केमने
चलिब पथेर माझे।
आलोक परशे मरमे मरिया
देखो तो शेफाली पड़िछे झरिया,
कोनो मने आछे परान धरिया—
कामिनी-शिथिल साजे।
निबिया बाँचिलो निशार प्रदीप
उषार बातास लागी।

रजनीर शशी गगनेर कोने
लुकाय शरण मॉगी!
पाखी डाकी बोले—गैलो विभावरी;
बधू चलै जलै लोइया गागरी,
आमी ए आकुल कवरी आवरी
केमने जाइबो काजे॥

विद्यापतिकी नागरीको चिन्ता है कि 'जग भरि करइछ निन्दा' और रविबाबूकी सुकुमार बालाको चिन्ता है कि 'आमी ए आकुल कवरी आवरी, केमने जाइबो काजे।' प्रभातके प्रदीपकी भॉति कही बुझकर आलोकमे यदि वह छिप पाती अथवा गगनके कोने अस्तमित चॉदकी भॉति कहीं लुक पाती। इस कामिनीमें एक अपना सौकुमार्य और भाव-तन्मयता है, वह विद्यापतिकी राधाकी भॉति प्रगल्भा नहीं, प्रौढा नहीं।

'मधु ऋतु रात···भोली'मे कोई द्विधा नहीं, कोई सकोच नहीं, मानसिक दबाव भी नही, मनका कुञ्चित आवेश भी नहीं। सहज प्रेमासक्तिकी सरल और स्पष्ट अभिव्यक्ति है। इसमे विद्यापतिकी राधाकी भॉति प्रगल्भता भी नही; और न रविबाबू सुकुमार बालिकाके 'सरमे जड़ित' चरण ही इसके हैं। स्वस्थ भावनाकी उन्मुक्त और बन्धन-हीन अभिव्यक्ति इसमे है जिसमे ब्रजभापा काव्यकी स्थूल शृगारिकताका स्पर्श नहीं।

अधखुली कंचुकी उरोज अध आधे खुले,
अधखुले वेष नख रेखनके झलकैं।

कहै पद्माकर नवीन अधनीबी खुली,
अधखुले छहरि छराके छोर छलकैं।
भोर जग प्यारी अध उरध इतै की ओर,
भावी भिखि भिरकि उचारि अध पलकैं।
आँखें अधखुली, अधखुली खिरकी है खुली,
अधखुले आनन पै अधखुली पलकैं॥

अलस-सौन्दर्यके अस्त-व्यस्त और विपर्यस्त वेश-विन्यासका सफल चित्रण यहाँ हुआ है। 'उठी सँभाल बाल, मुख लट, पट' मे न तो यह अलस भावना है और न वेश-विन्यासकी विपर्यस्तता; निरालाकी नायिकामे वह उन्मुक्तता, सकोच-हीन निरावरणता और आशंका-हीन किया है जिसकी अभिव्यक्ति 'प्रेम और मृत्यु' (Love and dream) मे हुई है—

Her dress she soon discards
And falls into my arms and laughs and cries
And tells me life was sad until I came.
—Herbert Read

निरालाको इस गीतकी प्रेरणा 'आँखोके डोरे लाल' से मिलती है और 'आँखे बता रही है कि जागे हो रातभर' क्योकि इन आँखोमे मदिराका मतवालापन नहीं। 'इति सनेह रंग' मे घुली बालाका यह मिलन उन्मुक्त और पूर्ण है उसमे आशका नही, द्विधा नहीं, संकोच नही, बाधा-बन्धन नही। यह प्रेरणा भावात्मक नही यद्यपि इसके द्वारा भाव जागरित होते हैं। इस प्रेरणाका पूर्ण और अन्वित चित्र कवि अंकित करता है जिसके द्वारा निरालाका तटस्थ और निरसंग व्यक्तित्व

दे, जिसकी सुधामिश्रित बोल सान्त्वना और सन्तोष दे, जिसके हाथो दवा-की कड़वी घूँटे सुधा-सी बन उठें, किन्तु वह तो आयी नही वह अन्त-र्वासिनी ही रही और आकाशमे मेघ छा रहे हैं आषाढ़के झीने मेघ है फिर क्यो न मन अधिक उन्मन हो? क्यो न स्मृति और तीव्र हो? सन्ध्याका उमडता मेघालोक कविकी अनुभूतिको जाग्रत करता है उस अनुभूतिको, जिसमें अभावकी चेतना है, चेतनाका विस्तार है। इस एकाकी जीवनमे बादल मनके साथी हैं। उड़ते मेघोके साथ उसका मन किसी अज्ञात देशकी ओर उड़ रहा है। मनके बिषादने बादलोमे अपनी अनुरूपता देखी है 'मनका साथी बना बादलोका बिषाद है नीरव!' मेघ आकाशको छाते जा रहे है,मनके विस्तृत नभमे भी अनेक स्वप्नोंके मेघ जुड़ आ रहे हैं और मथित आकाशकी भाँति स्वप्नोके मेघोका यह व्यापार मनको उद्वेलित कर उठता है ; इस 'एकाकी ऑगन' मे भावीके बहु स्वप्न जग रहे हैं। प्रकृतिका अनन्त सौन्दर्य-चित्र उसके सामने फैला है 'आलोकित हो उठता सुखसे मेघोका नभ चंचल' और मनमे किसीकी याद जग पडती है किन्तु यह स्मृति करुण नही बल्कि मादक है , कटु नहीं मधुर है। इस माधुर्यमे अनुपम स्वाद है। शय्यापर पीड़ित कविके मनमे विषादकी वह करुण घटा नही घिरती जो महादेवीके गीतोमे है। प्रकृतिके सोल्लास चित्रका अपूर्व आवेश है। इसमे ऐन्द्रीयताका सौन्दर्य-चित्र है, रङ्गोसे पूर्ण रेखाओमे दृढ़।

असाढकी सोधी सोधी गन्ध किसीके श्वास समीरण-सी स्मृति जगाती है और हृदय और भी मधुर गन्धसे भर उठता है। शत-शत विह्वल भाव उमड़ते आते हैं। बादलोकी प्रिया क्षणभरको चमक विलीन हो जाती है। अन्तर्वासिनीकी निगूढ भावनामें सन्ध्याका :यह चित्र एकाकी जीवनकी करुण-मधुर वेदनामे क्षण भरको स्मृति तीव्र कर देता है।

'यह सच है कि व्यक्तिगत सुख दुःखके सत्यको अथवा अपने मानसिक

संघर्षको मैने अपनी रचनाओमे वाणी नही दी है, क्योकि यह मेरे स्वभावके विरुद्ध है'—पन्तजीका यह कथन कमसे कम इस रचनाके सम्बन्धमे सत्य नही। 'अनुभूतिकी तीव्रता' और आवेश नहो। कविका विषाद हलाहल विष नही मन्द, और मधुर-मधुर है। उसके हृदयमे किसी अभावकी अनुभूति होती है उस अभावको वह बौद्धिक आवरण भी नही देता जैसा अन्यत्र हुआ है। पल्लवकी चित्रोपम भाषामे कल्पनाका सतरङ्गी मेल है। छायावादकी विशेषताओमे कल्पनाके इस झीने किन्तु इरान्वित रूपका आवेश कम नही मिलता। पन्तकी कल्पना अपनी भावनाओका प्रसार यहाँ प्रकृतिके मनोरम चित्रमे अधिक नही पाती। अपनी रुग्णतापर मीठा-सा क्षोभ इसलिए है कि 'नव असाढकी सन्ध्या' है मेघोका 'कोमल तम' है। उसका हृदय एक बार बाहर प्रकृतिकी गोदमें खेलनेको उत्सुक हो उठता है किन्तु आजकी रुग्णता उसकी भावनाओके पर बाँध देती है। उसे याद आते हैं बचपनके दिन जब मेघोकी इस लुका-छिपीमे वह अनन्त कौतुक और विस्मयका भाव देखता था, उसे याद आते है जवानीके दिन जब मेघोकी इस छायामयी सृष्टिमे प्रकृति-सौन्दर्यकी असीम भावना जग पडती थी किसीके साहचर्यका स्पन्दन था। आजके एकाकी जीवनमे कितनी विरसता है। वह अन्तर्वासिनी है और 'मेघोंका क्रन्दन' उसकी याद जगा देती है। पृथिवीसे उठती हुई सोंधी गन्ध कितनी मादक और उन्मादक है किन्तु उन्माद ऐसा नही जगता जो उसे बहा ले जाय। ज्ञात होता है कवि केवल 'पीडित' अवयव शय्यापर लेटा नही बल्कि उसका मन भी रुग्ण है आज उसमे वह भावना नही जब उसने लिखा था 'मै नही चाहता चिर सुख' और जीवनमे 'सुख-दुखकी' आँख मिचौनीका आग्रह भी उसमे नही रह गया है। यद्यपि व्यथाकी वह हाहाकारमयी तीव्रता नही, द्विज जैसा वेग नहीं और न महादेवी जैसी संयत किन्तु आकुल करुण कथा है। बल्कि

पन्तके इस लोकमे वेदनाका स्फुरण मात्र है हल्का-सा आघात है विक्षुब्ध करनेवाला आवेश नही। अनुभूतिके इस हल्केसे कम्पनके कारण ही पन्तमे प्रवाहकी तीव्रता कम है। पन्त कल्पनाप्रिय और अलंकार-प्रधान भाषाके पक्षपाती हैं अतः गीतिकाव्यका निर्वाह सम्यक् रूपमे नहीं मिल सकता; किन्तु जहॉ उनकी अनुभूति उनके कल्पनात्मक और आलंकारिक आवेशको छोड पाती है वहॉ गीतिकाव्यका स्वरूप निखर आता है। मुझे १९३९के लिखे इस गीतमे 'ग्रन्थि' और 'पल्लवकी' रचनाओका आभास मिलता है।

कौन दोषी है ? यही तो न्याय है ?
वह मधुप बिध कर तड़पता है, उधर
दग्ध चातक तरसता है,—विश्वका
नियम है; रो अभागे हृदय ! रो !!

और 'मुखर विरह दादुर पुकारता उत्कंठित भेकीको

किन्तु तीव्रता और आवेश नही जिसने ग्रन्थिमे लिखनेको बाध्य किया था—

शून्य जीवनके अकेले पृष्ठपर
विरह! —अहह, कराहते इस शब्दको
किस कुलिशकी तीक्ष्ण चुभती नोकसे
निठुर विधिने अश्रुओंसे है लिखा !!

पन्तकी आधुनिक बौद्धिकताके भीतर हार्दिकताके दर्शन काव्य-प्रेमियोके लिए शुभ सकेत हैं। बौद्धिक सहानुभूतिके मर्ममे हार्दिकताका—मुझे रागात्मिकता कहना चाहिये—अभाव हो जाता है। कविता अबौद्धिक नही, बौद्धिकतासे उसका बैर नही किन्तु बुद्धि-तत्त्वके अतिशय भारको वह वहन

नहीं कर सकती। काव्य जिस प्रकार बौद्धिकताका तिरस्कारकर अपना आधार खो देता है, उसी प्रकार बौद्धिकताके अत्यधिक आग्रहके कारण भावना खो बैठता है। पन्तकी स्मृति इसलिए नही जग पडती कि कल्पनाके द्वारा सन्ध्या और असाढ़की धूमिल अरुणाभ छायाका काल्पनिक चित्र वे खडा करते हैं बल्कि सन्ध्याकी बेला अजीब रहस्यात्मकताके साथ उनके समक्ष उपस्थित होती है और ठीक वैसे समय जब मन विरस हो रहा है, एकाकीपन खल रहा है। उन्मन कविके अन्तरमे अभावकी अनुभूति जग पड़ती है ; यही प्रेरणा है और सहसा कविको याद आती है, वे सन्ध्याएँ जिस समय यह एकाकीपन नहीं था, यह विरसता नही थी। अभावको बौद्धिक प्रेरणाके द्वारा सामाजिक सास्कृतिक एवं मानवीय भावनाका आवरण उसने दे रखा था। एक ओर निराशाके कारण जहाँ व्यक्तिवाद अव्यक्त असीम कल्पनामे साकार प्रियतमका चित्र आँकता है, वहाँ उसमे बौद्धिक आवेशके कारण नवीन सामाजिक अभावात्मकताका आवेश उत्पन्न करनेकी क्षमता स्वीकृत होनी चाहिये। जहाँ भक्तिका अथवा रहस्यात्मक आग्रह स्वीकार कर कवि अनुभूतिका स्वरूप एवं आलम्बन परिवर्तन कर देता है, शोध कर देता है वहाँ दूसरे प्रकारका कवि अनुभूतिको व्यापक करनेके लिए बुद्धिका सहारा लेता है, जिसे प्रसादने 'इड़ा' और 'कामायिनी', 'बुद्धि और श्रद्धा' के रूपकद्वारा प्रतिष्ठित करनेकी चेष्टा की है पन्तमें बुद्धिऔर भावनाका समन्वय न हो सका था किन्तु हार्दिकता कहीं अलग थी नहीं, वही उसकी अन्तर्वासिनीके रूपमें, प्रच्छन्न भावसे हृदयमे स्थित थी। भँवोका लोक इस भूले रागको आलोकित कर गया और—

एक मधुरतम स्मृति पलभर विद्युत-सी जलकर,
याद दिलाती मुझे, हृदयमें रहती जो तुम निश्चल।

पन्तमे चित्रात्मकता, चित्रोपम भाषा एवं अलंकार विधानद्वारा स्वरूप निर्देशका आग्रह अधिक दीख पढ़ता है। इस साकेतिक चित्रणमे महादेवी जैसा चित्रपटका विस्तार नहीं, प्रसाद-जैसी सूक्ष्मता नही बल्कि पन्तके चित्रोका रहस्य समझनेके लिए कल्पनाके सूक्ष्म सौन्दर्यिक आवेशकी अपेक्षा है। कवि और पाठकके मानसिक स्तरकी विभिन्नता ही अस्पष्टताकी सृष्टि करती है। इस गीति रचना-मे चित्रोका अभाव नहीं 'विनत मुखपर झीना आँचल धर' 'केसरी दुकूल अभी भी फहरा रहा क्षितिजपर' 'विद्युत्-सी जलकर' आदिके द्वारा सन्ध्या केवल सौन्दर्यका सूक्ष्म विधान नही उपस्थित करती बल्कि चाक्षुस प्रतिमाएँ खडी करती है। सन्ध्याका यह अपार्थिव सोन्दर्य अनुपम है। प्रसादके लाज-भरे सोन्दर्यमे जो ऐन्द्रिय चेतना है वह पन्तकी इस सन्ध्या-मे भी है केवल भूमिका और रेखाका अन्तर है।

पन्तकी इस गीति-रचनामें सगीतका विक्षुब्ध प्रवाह और शब्द-झकारका मोह नही जो 'धूम धुँआरे, काजर कारे', और 'चमक झमक मय' आदिमे है। अनुभूतिकी अपेक्षाकृत अतीव्रता संगीतमे भी वही मधुर मन्द गति भरती अन्यथा अनुभूति और सगीतात्मक वेगमें अन्तर आ जाता ओर एक दूसरेको बल प्राप्त नहीं होता। पन्तकी संगीतात्मकतामें माधुर्य है, शब्दोमे निश्चित प्रवाह है कल्पनाद्वारा अनुभूतिका सवेग, अलंकार प्रधान चित्रोपम भाषा, सगीतका मधुर, मन्द, संयत प्रवाह इस गीति-रचनाकी विशेषताएँ है।

जाने किस जीवनकी सुधि ले
लहराती आती मधु बयार।

रञ्जित कर दे यह शिथिल चरण ले नव अशोकका अरुण राग,
मेरे मण्डनको आज मधुर ला रजनीगन्धाका पराग।
यूथीकी मिलित कलियोसे
अलि, दे मेरी कबरी सँवार।

पाटलके सुरभित रंगोसे रँग दे हिम-सा उज्ज्वल दुकूल,
गुथ दे रशनामे अलि-गुञ्जनसे पूरित झरते बकुल-फूल।
रजनीसे अञ्जन माँग सजनि
दे मेरे अलसित नयन सार।

तारक-लोचनसे सींच सींच नभ करता रजको विरज आज,
बरसाता पथमे हरसिंगार केशरसे चर्चित सुमन-लाज।
कण्टकित रसालोपर उठता—
है पागल पिक मुझको पुकार।
लहराती आती मधु बयार।

—महादेवी वर्मा

× × ×

आँसुओका कोष उर, दृग अश्रुकी टकसाल,
तरल जल कणसे बने घन-सा क्षणिक मृदुगात।
जीवन विरहका जलजात।

ऐसे 'विरहका जलजात जीवन' मे मधु बयार किसी बीते जीवनकी सुधि दिला जाती है। बयारका यह पुलकमय कोमल स्पर्श जीवनके उन क्षणोंकी याद दिला देता है जिस समय सन्ध्याकी धूमिल अरुणाभ

छाया, मिलन, उल्लास, और उत्तेजनाका आवेश भर जाती थी। जीवन आज जैसा उस समय 'रीता रीता' न था बल्कि था पूर्ण और आनन्द-मय। 'बयार' का यह सन्देश जीवनमे स्फुरण देता है, इसके मधुर स्पर्श-से 'मुर्झाये फूलोके लोचन' भी 'फीकी मुस्कान' से भर जाते है—

जाने किस बीते जीवनका सन्देशा दे मन्द समीरण,
छू देता अपने पंखोसे मुर्झाये फूलोंके लोचन।

किन्तु इस 'बयार' की उत्तेजना चपल और उद्धत नही। यह उत्तेजना प्राणोको विह्वल तो करती है, मिलनकी उत्कण्ठा तो बढाती है, प्राणोमे स्पन्दन भर जाती है किन्तु मतवालापन नहीं, उन्माद नही,'सुधि' ऐसी नही जो सारी सुधि भुला दे। वायुके स्वरमे आनेवाली बॉसुरीकी सॉसें ऐसी नही जो महादेवी गोपिओकी भॉति सारे व्यवधान, सारे सॅभार छोड निकुञ्जोकी ओर दौड पड़े। सिंगार नही कर सकनेकी ग्लानि भी नहीं, वह दिनकरकी भॉति ऐसा नही कहती कि 'अभी तो कर पायी न सिंगार, रासकी मुरली उठी पुकार'। निरालाकी यह 'शिशिर समीर' भी नही। केवल बयारका मधुर, हलका झोका है, जो जीवनको झकझोरता नही केवल हौले हौले स्पन्दन जगा देता है। उस जीवनके लिए 'आकुल क्रन्दन नहीं, भावोन्मेष और उल्लासोन्माद नही। 'जीवन की सुधि' मात्र है, वह कौन-सा जीवन है, उस जीवनमें कौन सा उन्माद था उसका पता नही। केवल उस जीवनका क्षीण आभास ही मिलता है, उसकी अनुभूति केवल मनको कॅपा देती है। किन्तु उस सुधिमे कसकती वेदना नहीं बल्कि मिलनका सन्देश है। न जाने प्रियतम कहॉ छिपा था, उसकी सुधितक न थी, आज उसका सन्देश मिला है, बयार उस मिलनका सन्देश सुना जाती है। आज फिर मन

कैसे लगे ? इस घर, आँगनकी सीमाओमे घिरकर रह कैसे सके ? उसे प्रियतमसे मिलने चलना है । आज कितने युगोके बाद जीवनमे ऐसा मधुर अवसर आया है, इसे व्यर्थ जाने देनेकी इच्छा नही । किन्तु मिलनकी इस लालसामे उद्दाम वेग नही, यह वर्षाकी हहराती, लहराती खरधारा नही, इसमे शरत्कालीन नदीका-सा सयम है, गम्भीरता है चञ्चलता नही ।

युग-युगकी खोजके भीतर विश्रान्ति घेर लेती है, आगे बढनेकी लालसा नही, शक्ति नही, आवेश नहीं, पैर अपने-आप रुक जाते है, किंवा रुक-रुककर आगे बढते हैं । अँधेरी रात घिरनेको है, रहा-सहा आलोक भी जाता रहेगा, हाय क्या किया जाय ? सहसा 'लहराती मधु बयार' जीवनके रीतेपनको सुधिसे भर जाती है और एक बार मन कह उठता है—शिथिल पग है, कोई चिन्ता नहीं, मिलनका सन्देश मिला है, मुझे उस प्रियतमतक पहुँचना है, इस विवशतापर विजय पानी होगी । सखि, मेरे इन चरणोको शीघ्र रँग दे, मुझे प्रियतमसे मिलने जाना है । अनेक युगोके व्यवधानके बाद यह 'मिलन यामिनी' आयी है । बिना किसी सँभारके अभिसार कैसा ? 'नव अशोकके अरुण राग' से इन शिथिल चरणोको रँग दे । हृदयका राग—रागात्मिका वृत्ति—अंग-अगसे फूट पडे । आज जब मिलनके आवेशमे हृदयकी वृत्ति मचल पड़ी है, अनुभूति उद्वेलित है, फिर क्यो न कण-कण इस रागसे रँग न जाय, मनके उल्लासकी लाली सब ओर फूट पडे, मिलनोत्सुकताकी लाली, मादकताका प्रतीक बनकर उमड़ पडे । लेकिन 'अशोक' नवीन लेना, कही उसका रग धूमिल न हो गया हो, कारण जीवनका यह 'अशोक' भी नवीन है, नूतन है । 'नभका कोई कोना' जिसका अपना नही और 'उमड़ी कल थी, मिट आज चली' वाली

बदलीके जीवनका यह नवीन उल्लास है, फिर पुराने, धूमिल रंगसे उसकी वृत्तियोंकी सूचना तो न मिल सकेगी, इसलिए 'नव अशोकका अरुण राग' चाहिए। रजनीगन्धा अपने प्रियतमके मिलनका उल्लास अपने भीतर बाँध नहीं पाती, वह उसे चारो ओर फैला देती है, उसका उल्लास, उन्माद सभीको बेसुध कर देता है। रजनीगन्धाका पराग केवल मण्डन ही नहीं करेगा, अन्तर्हित इस उल्लासकी सूचना देगा। मनमे उल्लास भरकर, श्रम और विश्रान्तिके कारण शिथिल चरणोको गति देगा। अन्धकार पूर्ण जीवनकी कवरीको, अलकोको 'यूथीकी मिलित' कलियोसे, आशाओसे गूँथ दो नवीन—आशाओसे, कारण मिलनका यह सन्देश नया है, यह अनुभूति नवीन है, यह आवेश नूतन है, अत मनकी लालसाएँ नवीन हैं। इस निराशासे भरे जीवनमे आशाओका नवीन स्फुरण हो।

'हिम सा उज्वल दुकूल' मे चिर-कौमार्यकी भावना है, जिसमें किसी रागका, रगका चिह्न नहीं। कबीरकी भाँति 'नैहरकी दाग लगी चुनरी' भी यह नहीं, यह वह दुकूल है जिसमे अभिलाषाओंका रग नहीं लग सका था। आज जीवनके नवीन उत्कर्ष उस उज्वल दुकूलको, जिसमे कोई दाग नही, रँगनेकी अपेक्षा है। बासन्ती रग नहीं चाहिए, वह उल्लासका, मादकताका चिह्न नही बल्कि चाहिए पाटलोका रग, सन्ध्याकी रक्तिम आभासे उन्मेष पानेवाली बकुल फूलोंकी माला जिन्हे अलि रशना-भ्रमरोके गुञ्जनके धागेमे पिरोया गया है। बकुल फूलोकी माला हृदयकी उस वृत्तिकी सूचना देगी, जिससे सृष्टिका कण कण रञ्जित हो उठा है। भ्रमरोका गुञ्जन आशाओकी मधुर कल्पनाका प्रतीकत्व करता है। इन अलस नयनोमे रजनीका अञ्जन होगा। अन्धकार, घिरता अन्धकार इस ससारको इस सासारिकतापूर्ण संसारके अन्य धर्मोंको छिपा ले। दिनका विकीर्ण प्रकाश आँखोंको अपनी ओर खींच ध्यानको बिखरा

देता है। प्रिय बसी आँखें भी ससारको छूने लगती हैं जीवनकी एकान्तिक साधनाके लिए दृश्य जगतसे सम्बन्ध छोडना ही होगा। जिसे हम वैराग्य विराग कहते है वह किसी दूसरेके प्रति प्रबल राग है जिसे प्रेम या अनुराग कहते हैं वह प्रियके अतिरिक्त सबसे विराग है। सुधि आज ससारको, दृश्य जगतको, ससारकी छोटी आवश्यकताओ और जीवनके प्रति मोहको दूर कर देती है। यह आज आँखोसे दूर हो जाय जिससे केवल प्रिय और मिलनकी आतुरता भर शेष रह जाय। 'करुणामयको भाता है तमके परदोमे आना' अतः 'नभकी दीपावलियाँ' ही नही बुझें बल्कि रजनीके अञ्जनसे 'अलसित नयन सार' लेनेकी आवश्यकता है। पथ देखती, आँखे, और पलकें अलसित और शिथिल है। अञ्जन दृष्टि-परिष्कार कर दर्शनकी शक्ति देता है अन्धकार जीवनकी क्षुद्रताएँ ओझल कर प्रियको देखनेके योग्य बनाता है अतः अन्धकार अञ्जन है, आँखोमे आँजने योग्य है। राहमे धूल भी नही उडती पथ-धूलि नभने तारक लोचनोसे सींच सींचकर दूर कर दी है ओसोकी बूँदें पृथिवीपर पडकर मोतियोका हास नहीं, देती बल्कि प्रिय मिलनोत्कण्ठिताकी राह सुवासित कर देती है, मार्गमे कठिनाइयाँ भी कम हो गयी है। मार्गमे हरसिगार-के फूल बिछे पड़े हैं कोमल शिथिल चरणोंको कष्ट न होगा। पथकी कठिनाइयाँ दूर हो जाती है फिर पागल पिक बार बार पुकारकर सुधि दिला देता है, बारबार प्रियका स्मरण करा देता है उसकी वाणीमे मादकता है, उल्लास है, प्रेरणा है। रसालपर बैठी पिककी वाणी भी रसभरी है, रसीली है और रसाल भी साधारण नही पुलकमय है रोमाञ्चित है।

रहस्यवादिताका आग्रह स्वीकार कर आत्मा परमात्माके मिलनका सन्देश और प्रकृतिके साथ एकात्मभावकी स्थापना की जा सकती है। मनुष्य भी प्रकृतिका अङ्ग है, प्रकृति परमात्म-तत्त्वकी ही अभिव्यक्ति है आत्माने परमात्मासे बिछुड़कर नवीन जीवन धारण किया है लेकिन यह

उसका वास्तविक स्वरूप नही। आत्मा परमात्मासे मिलनेके लिए उत्कंठित तो रहती है किन्तु सासारिकता, शरीर-धर्म इस मिलनमे बाधा उपस्थित करते है और वह अपने स्वरूपको भूलकर इसमें फँस जाती है। फिर कोई त्राणका उपाय नही दीखता। कबीर उस परमात्माको अपने भीतर ही देखते हैं, कारण आत्मा और परमात्मामे अग्निराशि और चिनगारीका-सा सम्बन्ध है दोनोमे एकही आग है 'उजियाला जिसका दीपकमे मुझमे भी वह चिनगारी', युग-युगके विछोहके बाद तो कभी उसकी सुधि जग पडती है। विरहके क्षणोकी करुण-भावना मिलनोत्कठा और उल्लास मे परिणत हो जाती है। करुण-भावनामे निराशाकी धधकती आँच नही, व्यथाकी आर्द्रतामे सूरके गोपियोकी आँखोकी यमुना नही जिसके आवेशमे आकर वे कहती है :—

कैसे पनिघट जाऊँ सखी री डोलौं सरिता तीर।
भरि भरि जमुना उमड़ चली है इन नैननके नीर॥
इन नैननके नीर सखि री सेज भई घर नाऊँ,
चाहति हौ वाही पै चढ़िके श्याम मिलनको जाऊँ।

तोषनिधिकी गोपियोकी आँखोके करुण-प्रवाह जैसी व्यथा-धारा नहीं।

गोपिनके अँसुवानको नीर पनारे भये, बहिके भये नारे,
नारेन हूँते भई नदिया, नदिया नद ह्वै गये काट कगारे।
बेगि चलो तो चलो ब्रजको कवि 'तोष' कहैं ब्रजराज दुलारे,
वे नद चाहत सिन्धु भये अब नाहि तो ह्वैहैं जलाहल सारे।

सर्वत्र एक संयम है उद्दामवेग नही। मिलनके इस उल्लासमे प्रकृति, आत्मा और परमात्माके भीतर सप्राण चेतना है। प्रकृति आत्मा-

से विच्छिन्न और विभिन्न न रहकर समष्टिगत एकप्राणताकी सूचना देती है। उल्लास केवल आत्मिक नहीं, बल्कि यह उल्लास सम्पूर्ण प्रकृति-की आत्मामे परिव्याप्त है। प्रकृति भावनाकी भूमिकाके रूपमें ही नहीं आती बल्कि एकात्म-भाव स्थापित कराती है। आत्मा और प्रकृति उल्लासके सूत्रमे गुँथकर एक हो जाते हैं, प्रकृति शृगार-प्रसाधन करती है और उसके उपकरण आनन्दोल्लासकी सूचना भी देते है। प्रकृति यहाँ निरपेक्ष नहीं मानव-सापेक्ष है। प्रेरणा अपने हरहराते वेगसे नही जगती, वह तूफान भी नही उठाती बल्कि कोमल स्पर्शसे स्फुरण करती है। भावनाओकी यह मन्थर गति छन्द-छन्दमे मन्द्र, मन्थर गति देती है। भावोकी गति और छन्दके लयमें अपूर्व सामञ्जस्य है। अलकारत्व विधानकी चेष्टा नहीं। चित्र इतना अस्पष्ट भी नही और न इसे स्थूल रेखाओमे घेरा जा सकता है। प्रकृतिके विस्तार और तादात्म्य-स्वरूपके कारण भिन्न-भिन्न अग विछिन्न न रहकर सतेज, प्राणवान और एकप्राण हो जाते हैं। 'कोयलकी पुकार' और 'बयार' एकहीके विभिन्न किन्तु विच्छिन्न अग नहीं। यहाँ मनुष्य और प्रकृतिमे केवल अत्यन्त समीपका सम्बन्ध नहीं; दोनों दो भिन्न चेतनाएँ भी नही। प्रकृति केवल सहज संक्षोभ्य और सप्राण नहीं, मानवीय वृत्तिकी भूमिका मात्र नही बल्कि एक प्राण है। निराला जैसा निर्बन्ध मुक्त स्वरूप नहीं, तीव्र प्रवाह भी नहीं, पन्त जैसी चित्रमत्ता और स्वरूपप्रियता भी नहीं, सहज, सयत मानवीय अनुभूतिकी भावनागत अभिव्यञ्जना है, प्रकृति यहाँ 'सर्ववादकी धार्मिकता' सूचित नही करती। महादेवीकी कविताके दार्शनिक आधारके अन्वेषणमे रत आलोचक अनुभूतिके भावनात्मक विकासकी ओर ध्यान नहीं देते। महादेवी यहाँ दर्शनके सिद्धान्त नही देतीं, रहस्य-भावनाके इतिहासकी व्याख्या नहीं करती, आत्मा-परमात्मा और प्रकृतिके सम्बन्धको

मीमासा नहीं करतीं बल्कि मधुर अनुभूतिकी कलात्मक अभिव्यञ्जना करतीं हैं। मीराका उद्वेग, चाञ्चल्य नही। महादेवी स्वप्नोकी दुनियामे जागरण करती दीख पड़ती है। रहस्यवादिता यहॉ है किन्तु यह साधनात्मक, बौद्धिक रहस्यवाद नही। सूफियोकी-सी भी इसमे भावना नहीं। -यहॉ रूपकात्मकताका मोह नही, चित्रित सौन्दर्यकी अपेक्षा नही बल्कि अन्तर्हित सौन्दर्यको भावात्मक व्यञ्जनाका सहज प्रयास है।

महादेवीका यह संयम किन्तु बाह्य, परिस्थितिगत आत्मसंवरण या सकोचका फल नहीं जीवनके व्यापक दृष्टिकोणके कारण है। प्रेम जीवनकी अमूल्य अनुभूति है। लोक-गीतोमे प्रेमका जो सहज सुकुमार वर्णन है, वह अकृत्रिम, सरल और सहज प्रवाहयुक्त है। 'प्रेमके अबुद्धिवाद' का प्रश्न ही नही उठता। मीराके प्रेम प्रदर्शनमे वही सहज सरल उच्छ्वास है, पन्त भी कम उच्छ्वसित नहीं किन्तु प्रेमका यह आग-भरा उच्छ्वसित आवेश महादेवीमे नही। यहॉ प्रेम और वासनाकी भिन्न स्वरूपताका प्रश्न नही। प्रेमके अतिरञ्जित चित्रोके द्वारा अचेतन रूपसे मानसिक सन्तुष्टिका मोह महादेवीमे नही दीखता। कल्पना जहॉ उल्लासको विस्तार और व्यापकता देती है, वहॉ इसके स्वरूपमे निश्चिन्तता कम कर देती है। महादेवीके कुछ चित्रोंमें अस्पष्टताका जो मोह मिलता है, उसका यहॉ स्पष्ट अभाव है। अस्पष्टता भावना और अनुभूतिका समन्वय न देख पानेके कारण लक्षित होती है। इस गीतमे 'मधु बयार' की प्रेरणाके, उल्लासकी अनुभूतिका प्रकृतिके चित्रोद्वारा व्यञ्जना हुई है। भावनाके स्पष्ट वर्णनके स्थानमे संकेतात्मक अभिव्यञ्जना हुई है जिसमे मिलनके उल्लासका संकेत मिलता है। यहॉ जीवनके साधारण राग द्वेषका चित्र नही। इसे—

'Tis a common tale
An ordinary sorrow of man's life.'

नही कह सकते। इस उल्लासका भी सामाजिक आधार है। वैयक्तिकताका इतना अधिक मोह नही कि प्राण-प्राणमे इसके स्वर गूँज न सके। महादेवी बौद्धिक चेतना नही उत्पन्न करती, चमत्कारपूर्ण बुद्धिसे उद्वेगपूर्ण बात भी नही कहती बल्कि भावावेश उत्पन्न कर देती है और पाठक भी अनायास कह उठता है—

जाने किस जीवनकी सुधि ले
लहराती आती मधु बयार।

किन्तु इस जीवनमे द्विधा नही, सकोच नही, पराजित होनेका भाव भी नही। शिथिल चरणमे उत्तेजनाका अभाव भी नही। 'कवरी' के अन्धकार-पूर्ण सकेतमे भी निराशा नही, एक मधुर-करुण-भावना है अवश्य। यह करुण-भावना केवल आत्माको घेर ही नही रखती, इसे नवीन प्राण देती है और यह करुणा—

'रज कणपर जलकण हो बरसी
नव-जीवन अंकुर बन निकली।'

हो जाती है। जीवनके जिस स्नेह सुलभ, सरल उज्ज्वल उल्लासका वर्णन है वह शिशुके हासकी तरह भी नही, बन-बालाके गीतो सा उन्मुक्त भी नही, यौवनकी मदिरासा मतवाला भी नही और परकीयाके प्रेम-सा दबा हुआ, उच्छ्वसित, सकुचित पर उद्दाम भी नही। यह स्वयं महादेवी-जैसा है करुण-मधुर मधुर-करुण।

कता और धार्मिकताका आग्रह नहीं; 'घनीभूत पीड़ा' ही जीवनका रस बनकर आती है। विषाद जब जीवनका रूप धारण कर लेता है कवि कहता है—

अयि अमर शान्तिकी जननि
जलन अक्षय तेरा शृंगार रहे।

इस भावोन्मादके पीछे व्यक्तित्वका वही मोह है जिसमें वेदना घुलमिल कर एक-सी हो गयी है और तब वह समझने लगता है—

अमर वेदना ही हो मेरे
सकल सुखोंका सार।

वेदनाकी गम्भीर अनुभूतिके क्षणोमे कभी वह विस्मृतिकी भीख माँग बैठता है, किन्तु वह उपलक्ष्य मात्र है, वह स्वयं भूलना नहीं चाहता, भूल भी नहीं सकता। उद्वेगके क्षणोमे यह भाव उठ खड़ा होता है कहीं यह स्मृति नहीं होती जीवनधारा कही और प्रवाहित होती अतः कभी-कभी वेदनासे घबरा उठना सहज स्वाभाविक है, किन्तु उसकी अन्तः वृत्ति इस वेदनाको खोकर अपने प्रियको, अपने आपको खोना नहीं चाहता।

इसीमे हो तुम, हूँ मैं; और
इसीमें भरा तुम्हारा प्यार।

इसी कारण वह 'सूनापन' चाहता है, किन्तु 'सूनापान' अभावात्मक नहीं। इस सूनेपनमे बैठकर वह अपने प्रियको, अपने खोये व्यक्तित्वको पा लेता है अतः—

इसी सूनेपनमें है शान्ति,
तृप्ति, सुख, संयम, हर्ष, हुलास।

एक ओर एकान्तमे बैठ कवि जीवनका रस ले रहा है कि—

लिये जो हलचल अपने साथ,
'यहाँ आये हो मेरे पास ।
उसे दे पाऊँगा किस भाँति
इसी छोटे-से घरमें वास ?
लूट लेंगे मुझको ये लोग
समेटो इनकी भीड़ अपार ।

वेदना उसे इतनी प्रिय है कि वह इस 'अभाव'को छोडना नही चाहता। अभावको खोकर वह अपने आपको, अपने प्रेमको, अपनी भावनाको अपने व्यक्तित्व और निजत्वको खोना नहीं चाहता। उसे सुखकी इच्छा-नही, यह बात नहीं, वह मिलनके लिए कम उत्सुक नही, किन्तु उनके सुखको सँभाल तो नही सकेगा। कितनी लाचारी है! कितनी बेबसी है! इसीसे वह कहता है—'जा भूल मुझे अब उदार' जिसमे फिर लोभ उसे घेर न सके उसका अभाव मिट न जाय! यह अभाव अनायास प्राप्त नहीं हुआ है जो केवल तुम्हारी लालसाओ और प्रलोभनसे भरी दुनियाके कारण मिट जाय अतः विभवकी दारुण ज्योति पसारना व्यर्थ है। करुणा जिससे आँखोमें आँसू छलछला आये हैं, व्यर्थ है। कृपा करो, व्यर्थ मुझे विचलित न करो।

करो विचलित मत मुझको देव।
दिखा कर कुछ देनेका चाव।

यह अभाव ही जीवनका सर्वस्व है, अन्यतम है, निधि है अतः—

साधनाकी वेदीपर बैठ
पूजने दो यह 'अमर अभाव'।

'कुछ देनेका चाव' दिखानेसे यह अभाव मिटनेका नहीं अतः विच-लित न करो। जीवनके इस प्रवाहको फेरनेका प्रयास न करो। तुम यह न समझ बैठो कि दुःखी हूँ। दुःख ही प्रेमीका सुख है जलन ही शीत-लता है, सूनापन ही वैभवका भाण्डार है—

सुखी रहता हूँ दुखहीमें डूब,
कहाँ जाऊँ—किस सुखके पास ?

पीडाओंका यह संसार निराला है, सन्ताप, व्यथा, पीड़ाकी मोहकतामें निजी आनन्द है। अभावकी इस पूजामें हलचल नहीं, वासनाओंकी क्रीड़ा नहीं, लालसाओंका उत्कट प्रबल आग्रह नहीं। अभिलाषाओंका क्रन्दन नहीं, हसरतोंकी मौत नहीं। निश्चल, शान्त जीवनकी सरिताका प्रवाह है, लालसाओंकी लहर और कामनाओंके तूफानसे मुक्ति है। अभाव ही जब जीवनका सर्वग्रासी रस बन बैठा है फिर कोई अभाव तो टिकता नहीं अतः अभाव ही काव्य है, अभिनन्दनीय है। प्रलोभन डिगा पाते नहीं, आशाएँ उद्वेग उत्पन्न कर पाती नहीं। दुर्बलताओंके इस संसारमें 'कुछ देनेका चाव' न दिखाओ क्योंकि—

बहुत सुन्दर लगता है मुझे
यही मेरा 'सूना संसार'।

किन्तु इसमें सन्तोष नहीं, खीझ-भरी व्यथा है, जिसमें उग्र प्रचंड प्रवाह भले न हो जलनमयी दाहकता अवश्य है। अब इसे छोड़कर और किसे प्राप्त किया जाय ? वेदना सभी सुखोंका सार ही नहीं, बल्कि जीवनकी साधना है। साधनाकी कठोर परीक्षा और तपस्याके बाद यह अभाव मिला है। जिस समय प्रिय विलग हुआ था, अनुभूति इतनी

तीव्र थी कि कुछ ज्ञात नही होता था, एक अनुभूति, अनिर्वचनीय विषादकी गम्भीरता थी जिसमे अनुभूतिका भानतक नहीं होता था। विषाद और वेदनाके उन क्षणोमे 'स्तम्भित हो जाना' कहनेसे ही अवस्थाका परिचय नहीं दिया जा सकता। आवेश और आवेगके कम होनेपर ही वेदना और अभावके इस रूपकी अनुभूति हो पायी अतः यह अभाव केवल क्षणमात्रका आवेश नही, उद्वेग नही, बल्कि जीवनकी साधनाका फल है। अतः यह साधना ही, यह अभाव ही सर्वस्व है। क्षणभरके लिए आकर-इस अन्यतम साधनाको मिटाओ नहीं। आज इसीमे 'सुख-शान्ति'है, इसका नाश कर एक बार फिर चल दोगे। अतः इसे मिटाओ नही, यह व्यक्तित्व ही बन गया है—

जनम भर तप करनेके बाद
मिला है मुझको यही 'अभाव'।

यदि कुछ क्षणोकी साधनाका यह फल होता, आनन्दपूर्वक मिटा दिया जा सकता था, कारण क्षणोका ही तो खेल था। फिर पाया जा सकता है फिर अधिक चिन्ता क्यो? प्रेमी उन क्षणोंमे ही जीवित रहता है, जिन क्षणोंमे जीवनकी अनुभूतियाँ तेज और सजग रहती हैं, अन्यथा सारा जीवन निस्तेज अभ्यास मात्र है, केवल अभ्यास। जीवनकी इन घड़ियोमे ही तो यह अभाव मिला है अतः 'जन्मभर'के तपकी चर्चा है, करुण-कथा है।

तुम समझते हो जलन और पीड़ाओंकी बस्ती बसी हुई है। इस जलनमे करुणाके छींटे शीतलता देंगे। लेकिन भाई! अब जलन रह ही कहाँ गयी? जब इसीका शृङ्गार है, इसीका अक्षय कोष है, जीवनका यही आधार है, जब यह जलन 'अमर शान्तिकी जननी है' फिर इसमें

दाहकता कहाँ ? जलन कहाँ ? इसलिए तुम्हारी कृपाकी आवश्यकता नहीं। अब तुम्हारे करुणा-घनका कोई काम नहीं। ऐसा दिन था अवश्य जब तुम्हारी इस वर्षाका मोल होता, जब तुम्हारे इस करुणा-घन के कारण जीवनमे आशाओके अंकुर उग पाते, जब आजकी मरुभूमि शस्य-श्यामला भूमिमें परिवर्त्तित हो सकती, जब इस जीवनमें सरसता आ पाती किन्तु हाहाकारमय 'छार'के अतिरिक्त और शेष कुछ भी नहीं रह गया, अब यहाँ आशाओके अंकुर उग नही सकते, अपनी करुणाका व्यर्थ दुरुपयोग न करो। अब यहाँ जलन रह कहाँ गयी जो करुणाके घनोकी वर्षाकी आवश्यकता हो, तुम्हारा प्रयत्न विफल जायगा।

दाह अति शीतल है यह, है न
कहीं इसमें ज्वालाका नाम।
बरसने दो करुणा-घनको न,
न है इसका अब कोई काम।

आज जो नयनोमे करुणा-नीर लेकर आये हो, इनकी आवश्यकता नहीं रही, अपेक्षा भी जाती रही अतः 'विभवकी दारुण ज्योति' का प्रसार बन्द करो। अब वे आँखें नही जो जगका अक्षय शृंगार देख सके। बारबार 'कुछ देनेका चाव' दिखाकर विचलित न करो। इसी जीवनमे 'सुख और शान्ति' है। मैं 'बिका हुआ धन हूँ परदेसी' फिर मोल-तोलसे क्या होने जानेको है, व्यर्थ तुम्हारे प्रयत्न होगे।

'जनम भरके मुझ दुखियाको न
रह गया अब कोई भी क्लेश,

कोई दुःख नही, कोई क्लेश, पीड़ा, व्यथा, बेचैनी नहीं, कारण—

मिटाकर ही अपना अस्तित्व
मिला करता है खोया प्यार।

इसलिए अभाव ही सर्वस्व है और—

साधनाकी वेदीपर बैठ,
पूजने दो यह अमर अभाव।

द्विजकी इस गीति-रचनामे व्यथाका मर्म-मधुर स्पन्दन है, विषादका वह प्रत्यक्षीकरण नही जिससे हिन्दी साहित्यमे असत्यताका प्रसार अधिक होता जा रहा है। द्विजमे वह आवेग भी नही जिसके द्वारा वह अपनी अनुभूतिको किसी अन्य आवरणमे छिपाकर उपस्थित करे। सहज मानवीय करुण-अनुभूतिकी मार्मिक अभिव्यञ्जना है। कल्पनाके मनोरम चित्र नही, अलकारत्वका मोह नहीं, प्रकृतिके रँगीले चित्रोपर कूँची फेरनेका प्रयास नही, इसका कारण है द्विजकी एकान्तिक अनुभूति और उसकी गम्भीरता। यह अनुभूति द्विजकी अपनी है, वैयक्तिक है किन्तु यह नही कहा जा सकता कि 'कवि अपनी अनुभूतियोकी समता अपने पाठको तथा श्रोताओके साथ स्थापित' न कर 'केवल व्यक्ति-वैचित्र्यवादसे काव्यकी रचना' कर रहा है। साधारणीकरणका अर्थ केवल सामान्य और साधारण बनाना नही। रस ग्राह्यताके अन्तरमे संस्कारकी स्थिति है। जिसे विषाद और अभावकी अनुभूति नही उसमे रसात्मकता जग नही सकती, वह उक्ति-वैचित्र्यसे प्रभावित भले हो सके। अलङ्कारत्व-विधान अपने छिछलेपनको भरनेका प्रयास है। रस-निष्पत्तिका अर्थ अन्तर्स्थित संस्कार-गत वासनाको जाग्रत करनेकी क्षमता है; और इस अर्थमें 'द्विज' की कवितामे रस है, रस-ग्राह्यता है, अपेक्षा है केवल 'प्रेम पीडाकी मीठी चोट खाये' हुए दिलकी। इसमें सगीत है, संगीतात्मकता है, प्रवाह है, माधुर्य

है, पीडा है और है अन्तरतमको झंकृत करनेवाली रागिनी। महादेवी जैसी शान्त किन्तु करुण-वेदना नहीं; 'द्विज'की वेदनामें चञ्चलता अधिक है, महादेवीने अपनी वेदनाको सरस और सयत कर लिया है। उनके गीतोंमे वेदना ही कविता बनकर निकलती है जिनमे व्यथा है, सौन्दर्य्य-बोध है, मानसिक सयम है। 'द्विज' की वेदनामे प्रवाह है, बहा लेनेकी शक्ति है, तीव्रता है। वेदनाने कविपर अधिकार रखा है, उसकी अभिव्यक्ति आवेशपूर्ण है। महादेवी जहाँ 'करुण-मधुर' हैं, वहाँ द्विज केवल 'करुण' हैं। किन्तु द्विजकी कवितामें 'मिठास' का अभाव नहीं, यद्यपि वह 'अभावकी पूजा' और साधनामे लीन हैं। द्विजकी वेदना मार्मिक और अन्तस्पर्शिनी है।

अचेतन मृत्ति, अचेतन शिला!
रुक्ष दोनोके बाह्य स्वरूप,
दृश्य-पट दोनोंके श्री-हीन;
देखते एक तुम्हीं वह रूप,
जो कि दोनोंमें व्याप्त विलीन।
ब्रह्ममें जीव, वारिमें बूँद,
जलदमें जैसे अगणित चित्र।
ग्रहण करती निज सत्य स्वरूप
तुम्हारे स्पर्श-मात्रसे धूल;
कभी बन जाती घट साकार,
कभी रंजित, सुवासमय फूल।

और यह शिला खण्ड निर्जीव
शापसे पाता-सा उद्धार,
शिल्पि ! हो जाता पाकर स्पर्श
एक-पलमें प्रतिमा साकार।
तुम्हारी साँसोंका यह खेल,
जलदमें बनते अगणित चित्र।

मृत्ति, प्रस्तर, मेघोंका पुञ्ज,
लिये मैं देख रहा हूँ राह,
कि शिल्पी आयेगा किस रोज़
पूर्ण करनेको मेरी चाह।
खिलेंगे किस दिन मेरे फूल ?
प्रकट होगी कब मूर्ति पवित्र ?
और मेरे नभमें किस रोज़
जलद विहरेंगे बनकर चित्र ?
शिल्पि ! जो मुझमे व्याप्त विलीन,
किरण वह कब होगी साकार ?

—रामधारी सिंह 'दिनकर'

रूप-अरूप जीवनके कुछ क्षणोंकी देन हैं। प्रत्येक मनुष्यके जीवनमें ऐसी घड़ियाँ आती हैं जिस समय उसकी प्रतिभा किरण अन्तर्मुखी हो जाती है, अन्तर्मुखी होनेका केवल इतना ही अर्थ नहीं कि वह केवल अपने आपको, अथवा अन्तरकी उस भावनाको देखता है बल्कि अन्तर्मुखी होनेका यह भी तात्पर्य है कि उस समय वह वस्तु-विशेषका बाह्य-स्वरूप ही नहीं देखता बल्कि उस आवरणको चीरती हुई किरणें उसके अन्त-

स्तलमे प्रवेश कर पाती हैं, वह द्रष्टा है केवल आवरण मात्रका नहीं बल्कि उसके अन्तस्तलका। अन्धकार हमारी आँखोंका आवरण है जिसमे किसी वस्तुका अस्तित्व जान नही पडता किन्तु इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि वस्तुका भाव वहाँ नहीं अथवा उसका अभाव है। भाव और अभाव वहाँ केवल उपलक्ष्यमात्र हैं वास्तविक नहीं। अन्धकार और प्रकाश भी सापेक्ष हैं। दोनो कम्पन उत्पन्न करते हैं। कम्पनका आधिक्य और अपेक्षित सख्यामे अभाव आँखोकी अक्षमताका मूल है इसे ही अन्धकार कहते हैं। प्रकाशका आधिक्य भी अन्धकार है, अपेक्षाकृत अभाव ही अन्धकार है। प्रकाशकी किरणे अन्धकारको चीरती हुई जिस समय वस्तु-विशेषपर पड़ती हैं वह चमक उठती है। वह आलोकमय है उसका भिन्न अस्तित्व भी है। कवि-प्रतिभा यही आलोक है। यही किरण है जिसके द्वारा वस्तुका अस्तित्व प्रत्यक्ष है। कलाके लिए कोई वस्तु अस्पृश्य नहीं। कला अपने लिए साधारणसे साधारण वस्तुको अपना उपकरण बनाती है और अन्धकारमे पडी अस्तित्वपूर्ण वस्तु कविकी प्रतिभा किरणोसे प्रज्ज्वलित हो नवीन उत्कर्ष और सौन्दर्य प्राप्त करती है। स्रष्टाके लिए जिस प्रकार उपकरण उपलक्ष्य मात्र है उसी प्रकार कविकी दृष्टि उन उपकरणोकी ओर जाती है।

कवि जिसने देखा था कि उसकी कविता जो कभी लोगोंमे प्राण फूँक देती है, आज उसमें वह आवेश नही अथवा जिस आवेशको वह अपनी वाणीद्वारा जन-जनके कण्ठमें भरना चाहता है, जो शत-शत कण्ठोंसे अजस्र प्रवाहिनी मन्दाकिनीकी धाराकी भाँति उद्वेलित हो उठे आज उसमे वह उफान नही। वह उन्मन है, उदास है उसके चारो ओर भी झीना-झीना अन्धकार है वह असफलताकी, निराशाकी भावनासे आक्रान्त होने जा रहा है। सहसा उसका ध्यान 'मृत्तिका और शिल्प' की

ओर जाता है। वह देखता है दोनो, हैं निश्चेष्ट, अरूप, चेतनाहीन। उसकी प्रेरणामें भी प्राण नही, उसमे ज्वलन्त अग्निका स्फुरण नही। शिला है, अनगढ़, अरूप, आकारहीन, चेतना-रहित किन्तु रूपकी सम्भावनाका अभाव नहीं। उडती धूल महत्त्वहीन और श्री-हीन है—

'अचेतन मृत्ति, अचेतन शिला !'

दोनोंके बाह्य-रूप रूक्ष है, कोई श्री नहीं, कोई सौन्दर्य नही। उनके अन्तर्भूत सौन्दर्य, रूपकी सम्भावनाके ध्यानके लिए शिल्पी और उसकी कलाका आवेश आवश्यक है अन्यथा कोई रूप तैयार नहीं हो सकता। शिल्पीकी ऑखे वाह्य-रूक्षता और आवरणकी श्री-हीनताको पहचानती हैं, वे इनकी रूप-सम्भावनाका मर्म समझती हैं, वे जानती हैं जिस भॉति ब्रह्ममे जीवकी सत्ता, जलमें बूॅदका अस्तित्व और जलदमे चित्रकी सम्भावना है उसी भॉति इस अरूप मृत्तिका और इस अनगढ शिलामे भी रूपका सस्पर्श है किन्तु इसके देखनेके लिए पैनी दृष्टि चाहिये। शिल्पीमे वह प्रतिभाकी किरण है, वह आवेश है। इस अरूपताके भीतर रूपका भाव अन्तःसलिला सरस्वतीकी जल-धाराकी भॉति परिव्याप्त है।

अचेतन मृत्ति, अचेतन शिला !

रूक्ष दोनोंके बाह्य स्वरूप,
हृदय-पट दोनोंके श्री-हीन;
देखते एक तुम्हीं वह रूप,
जो कि दोनो में व्याप्त विलीन।
ब्रह्ममें जीव, बारिमें बूँद,
जलदमें जैसे अगणित चित्र।

घटकार मृत्तिकामे केवल रूपकी सम्भावना नहीं देखता, मूर्तिकार केवल शिला खण्डोके रूप-ध्यानमे ही खोया नहीं रहता बल्कि उसका स्पर्शमात्र उन्हे स्वरूप दे देता है। मृत्तिका घट बन जाती है और अचेतन शिला चेतनाकी साकार भावना मूर्ति बनकर खड़ी हो जाती है जिसमे सौन्दर्य है और है गत्यात्मकता एवं गतिकी भावना। वह अगतिशील और अचेतन होकर भी चेतन है, भावात्मक चंचल है। रूपकी सम्भावना उनमे थी, इसे अस्वीकार नही किया जा सकता किन्तु केवल सम्भावना ही स्वरूप तो नहीं दे सकती। उसके लिए कलाकारकी भावना अपेक्षित है। स्रष्टाकी मौलिकता केवल रूप-विधानकी सम्भावनाके ज्ञानमे नही बल्कि उस स्पर्शमे है जिसके कारण वह वस्तु जीवित, जाग्रत और साकार हो उठती है। उपकरण ही वास्तविक नही, वास्तविक है वह सस्पर्श जो निर्जीवको जीवन एवं रूपहीन, अनगढ और अशोभन शिलाखण्डको रूप और सौन्दर्य देता है। उपकरणोकी समानता ही सर्वत्र शक्तिका परि-चायक नही है। कलाकार केवल व्यक्त और परिसीमके प्रति जाग्रत नहीं बल्कि उनकी अन्तर्भूत भावनाकी अनुभूति उसमे जाग्रत रहती है। व्यक्त और अव्यक्तकी मीमासामे दिनकरने कहा था—

गीत अगीत कौन सुन्दर है ?
गाकर गीत विरहके तटनी वेगवती बहती जाती है।
दिल हलका कर लेनेको उपलोसे कुछ कहती जाती है।
तटपर एक गुलाब सोचता 'देते स्वर यदि मुझे विधाता !
अपने पतझड़के सपनोका मैं भी जगको गीत सुनाता।'
गा गाकर बह रही निर्झरी पाटल मूक खड़ा तटपर है
गीत अगीत कौन सुन्दर है ?

निर्झरीके 'दिल हलका कर लेने' और 'पाटलके मौन'मे जो व्यक्त और

अव्यक्त सगीत है उसमे कौन अधिक सुन्दर है, वह उस दिन नहीं जान सका। रूपात्मक आवेगके कारण संगीतात्मक आवेश रहनेपर भी पाटलके संगीतका माधुर्य वह जान सका था किन्तु वह उस दिन नही जान सका था कि—

Heard melodies are sweet, but those unheard
Are Sweeter (Keats)

लेकिन इस अव्यक्त सङ्गीतकी अन्तर्भूत रागिनी कलाकारके हृदयको ध्वनि है। उसके अन्तरका स्पन्दन उसमे परिव्याप्त है। अतः कलाकार वस्तुका अन्तर ही नही देखता बल्कि उसके साथ अपने अन्तरका तादात्म्य स्थापित करता है और दोनो मिलकर एकाकार हो जाते है। ससारके स्रष्टाने धूलिके साधारण उपकरणसे ही सुवासमय फूल अथवा जीवन-घट की रचना की है अथवा कुम्भकारके हाथोंकी नवीन रूपकी चेतना मृत्तिकाको मिलती है अतः—

ग्रहण करती निज सत्य-स्वरूप
तुम्हारे स्पर्श मात्रके धूल,
कभी बन जाती घट साकार,
कभी रंजित सुवासमय फूल।
और यह शिलाखण्ड निर्जीव
शापसे पाता - सा उद्धार,
शिल्पि ! हो जाता पाकर स्पर्श
एक पलमें प्रतिमा साकार।
तुम्हारी साँसोंका यह खेल
जलदमें बनते अगणित चित्र !

कलाकार वह 'राम' है जिसके स्पर्शमात्रसे निर्जीव शिलाखण्ड सौन्दर्यमयी रमणीकी भाव-मूर्ति बन खड़ा हो जाता है। कलाकारने वस्तुओंको उनका वास्तविक-स्वरूप दिया है। सत्य मात्र अस्तित्व नहीं बल्कि भाव है। कलाका सत्य केवल उपकरण नहीं बल्कि उन उपकरणोंसे, निर्मित कला-कृति वास्तविक है। जिस प्रकार कलाकारके लिए कोई उपकरण हेय नही, उसी प्रकार कुछ भी असत्य नहीं; यदि असत्य कुछ हो सकती है, वह है उसकी भावुकता यदि आवेशके अभावमें ही वह-रचना करने बैठ जाय। उपकरण प्रधान नहीं, गौण है, प्रधान हैं कलाकारकी भावनाएँ जो उपकरणके अन्तर्हित रूपको देखकर उन्हे वास्तविक-स्वरूप दे सकें। किन्तु यह रागात्मक आवेश इच्छापूर्वक जगाया तो नहीं जा सकता। एक दिन 'दिनकर'ने समझा था कि कल्पना ही सब कुछ है। कलाकार कल्पना-के आनेकी बाट जोहता है और समझता है कि कल्पना वह आवेश देगी जिसके कारण उसके गान मर्म-मधुर हो उठेंगे। इसलिए उसने कहा—

अयि सङ्गिनी सुनसानकी—

तुम जानती सब बात हो
दिन हो कि आधी-रात हो
मैं जागता रहता कि कब
मञ्जीरकी आहट मिले
मेरे कमल बनमें उदय
किस काल पुण्य प्रभात हो

किस लग्नमें हो जाय कब ?

जानें कृपा भगवानकी
अयि सङ्गिनी सुनसानकी !

आज भी उसकी 'प्रतीक्षा' उसी भाँति जागरूक है। वह उन क्षणोंकी बाट जोह रहा है, जब उसके भीतरका कलाकार जग पड़ेगा, कलात्मकताका आवेश सजग होगा और वह उस कलाका निर्माण कर सकेगा जिसमे अरूपको रूप, अव्यक्तको आकार और कुरूपको सौन्दर्य मिलेगा। वह जानता है, उसके अन्तरका कलाकार जब उद्‌बुद्ध होगा तभी ऐसी कलाका निर्माण हो सकता है। उसके गीतोंमें 'रसवाद नहीं' है, उनमे चिरन्तन कलाका विकास नहीं हुआ ; वह जानता है, उसके गीतोंमें स्थायित्व नहीं आया है, अभी वह रेखाओंद्वारा केवल चित्र आँक भर रहा था, उन चित्रोंमे रङ्ग नहीं। अभी उनका पूर्णनिर्माण नहीं हुआ किन्तु वह कलात्मक आवेशकी प्रतीक्षा कर रहा है जिसके द्वारा अनुपम चित्र अङ्कित हो जाया करते हैं। वह समझता है कविता चेतन क्रिया नहीं, बौद्धिक विलास भी नहीं, अति भावुकताको 'जिमनास्टिक'-भी नहीं। कविता स्वय लिख जाती है, किन्तु वैसे क्षण आये नहीं। इसलिए—

मृत्ति, प्रस्तर, मेघोंका पुञ्ज ,
लिये मैं देख रहा हूँ राह,
कि शिल्पी आयेगा किस रोज
पूर्ण करनेको मेरी चाह।

खिलेंगे किस दिन मेरे फूल ?
प्रकट होगी कब मूर्ति, पवित्र ?

और मेरे नभमें किस रोज,
जलद विहरेंगे बनकर चित्र ?

शिल्पि ? जो मुझमें व्याप्त-विलीन,
किरण वह कब होगी साकार ?

कौन जानता है, उसे क्षणोंका आवेश प्राप्त होगा अथवा नहीं, किन्तु उनकी प्रतीक्षा, उनकी आकांक्षा तो स्वाभाविक है। मुझे जैसे लगता है, वह समझने लगा है कि आजतककी स्वर-साधनामें वह सफल नहीं। वह स्वर साधता तो अवश्य रहा है, किन्तु उस स्वरमे प्राणवान चिरन्तन प्रवाह नही; उसके द्विधा-सकुल प्राण प्रकाशकी किरणे खोज रहे हैं; वह अभीतक अन्धकारमें राह ढूँढ़ रहा है। उसे प्रकाश चाहिए, इस द्विधा, इस ऊहापोहसे त्राण चाहिये। उसमे प्राणोकी आकुलता छन्दोमे बँध नहीं पाती और वह 'उन्मन, उदास', उन प्रकाश-किरणोकी खोजमें खोया जाता है।

इस गीतकी प्रेरणा कविको 'अचेतन मृत्ति और अचेतन शिला' से मिलती है। अनुभूतिकी तीव्रता इसमे अधिक नही, कारण अनुभूतिकी तीव्रावस्थामें कल्पना और विचारके लिए अवकाश अधिक नहीं रहता। सहज-संक्षोम्य मानव वृत्तिमे चेतनाकी प्रबल लहर जग पड़ती है, जो निर्बन्ध है, उन्मुक्त है। यहाँ अनुभूतिके साथ अतः बौद्धिकताका समन्वय है। 'घट' 'फूल' 'मूर्त्ति' और बादलोंके चित्रमे वह उसी आन्तरिक चेतनाकी किरण देख रहा है। अतः गीति-काव्यकी अति भावुकताका समावेश यहाँ नहीं। 'दिनकर' की कविताओमे अतिभावुकता (Sentimentalism) का प्रभाव अधिक है किन्तु इस गीतमे बौद्धिकताने भावनाका स्वरूप ग्रहण किया है यद्यपि गीति-काव्यके लिए बौद्धिकताका

यह बोझ कुछ अधिक है। 'ग्रहण करती'''अगणित-चित्र'मे बौद्धिकता अधिक स्पष्ट है। 'बच्चन' के गीतोंमे जहाँ प्रेमकी मनोदशाओके द्योतक चित्र अधिक हैं, वहाँ दिनकरमे बौद्धिक चित्रणका आवेश पाया जाता है। इसलिए सगीतात्मकताके प्रवाहमे अन्तर आ जाता है। अनुभूतिकी मात्रा एव बौद्धिकताके मिश्रणकी विभिन्न अवस्थाके कारण दोनोकी धाराओमे विभिन्नता है। 'दिनकर'के सगीतका प्रवाह अपना-सा है, निराला जैसा पुरुष-मधुर नहीं, पन्त जैसी चित्रमत्ता और कोमलता उसमें नहीं, महादेवी जैसी घुलामिला देनेवाली मधुरता भी नही; नेपाली जैसा अक्खड़पन भी नहीं। इस गीतकी सगीतात्मकता शब्दोसे फूट पडने वाली धाराकी भाँति नही। 'ब्रह्ममें जीव' 'वारिमे बूँद', 'जलदमे जैसे अगणित चित्र' के द्वारा चित्रमत्ताको आधार अवश्य मिला किन्तु कल्पना-के द्वारा ही इन चित्रोकी चित्रोपमता ग्रहण हो सकती है। चित्रोकी रेखाओमे प्रसादकी भाँति सूक्ष्मता नही, महादेवीकी विशदता भी नही और अंचलकी मासलता भी नही चित्रोकी रेखाएँ स्पष्ट और गहरी है। रसात्मकता अधिक नहीं पर व्यञ्जनाका अधिक आग्रह है। आत्मिक आवेशका यह बौद्धिक चित्रण है। 'चित्र' 'रोज' 'दिन' आदि शब्दोंकी पुनरावृत्तिसे जो कानोमे खटक पैदा होती है, उसमे माधुर्यका अभाव नहीं और वह कविकी भावनाके साथ पुनः सम्बन्ध स्थापित करा देती है। गीतिकाव्यत्वसे काव्यत्व इसमें अधिक है।

हम दीवानोंकी क्या हस्ती,
है आज यहाँ कल वहाँ चले;
मस्तीका आलम साथ चला,
हम धूल उड़ाते जहाँ चले,

आये बनकर उल्लास अभी,
आँसू बनकर बह चले अभी,

सब कहते ही रह गये, अरे
तुम कैसे आये, कहाँ चले?
किस ओर चले? यह मत पूछो,
चलना है, बस इसलिए चले;
जगसे उसका कुछ लिये चले,
जगको अपना कुछ दिये चले,

दो बात कही; दो बात सुनी!
कुछ हँसे और फिर कुछ रोये!

छककर सुख दुखके घूँटोंको
हम एक भावसे पिये चले!
हम भिखमंगोंकी दुनियामें
स्वच्छन्द लुटाकर प्यार चले;
हम एक निशानी-सी उरपर
ले असफलताका भार चले;

हम मान रहित अपमान
जी भरकर खुलकर खेल

हम हँसते-हँसते आज यहाँ
प्राणोंकी बाजी हार चले!
हम भला बुरा सब भूल चुके,
नतमस्तक हो मुख मोड़ चले;
अभिशाप उठाकर होठोंपर
वरदान दृगोसे छोड़ चले,
अब अपना और पराया क्या?
आबाद रहें रुकनेवाले
हम स्वयम् बँधे थे और स्वयम्
अपने बन्धन हम तोड़ चले!

—भगवतीचरण वर्मा

बेसुध क्षणोमे कोई नवीन उन्मेष और नूतन आवेश लेकर जीवनमें प्रवेश कर जाता है। क्षणोंकी बात ही तो ठहरी, निजत्व—अपनी सुधबुध—खो जाता है। यह जीवनकी अनुपम, अद्वितीय अनुभूति है, पता नहीं लगता कौन-सा परिवर्तन हो गया किन्तु हो कुछ अवश्य जाता है। आँखे किसीको देखनेको उतावली हो जाती हैं, कभी निहार सकती नहीं, सामने आनेपर लजा जाती हैं, किन्तु देखनेकी चाह और बढ़ती जाती है, यह प्यास मिटती नही यहाँतक कि प्यास ही जीवन है, जीवन मात्र ही प्यास है। वह अपूर्व है जो जीवनके गहन अन्धकारमे प्रकाशकी किरणे बन आती है, वह आशा है, उल्लास है उन्माद है। वह जीवन-मरुभूमिकी सरसधार है,—

भरे हुए सूनेपनके तम
में विद्युतकी रेखा-सी;

असफलताके पटपर अंकित
तुम आशाकी लेखा-सी।

× × ×

बरस पड़ी हो मेरे मनमें
तुम सहसा रस-धार बनी;
तुममें लय होकर अभिलाषा
एक बार साकार बनी!

किन्तु प्रेमका यह आवेश भी चिरस्थायी नहीं। क्षण वास्तवमें क्षण ही रह जाते हैं, युग बन नहीं पाते और प्रेमकी कोमल लतिका फूल लगनेके पहले मुरझा जाती है कलियाँ आ पातीं नहीं। संसार स्वप्न मात्र नहीं और सपनोंके आधारपर बसी बसायी दुनिया कम ठोस सिद्ध नहीं होती। प्रेम जीवनका वही मधुर सपना है, जिसमे एक ओर जहाँ आशा, उत्साह, आनन्द विश्वास और विस्तार है, वहाँ दूसरी ओर निराशा, निरुत्साह, निरानन्द अविश्वास और संकोच है। प्रेमकी इस व्यापकताके मूलमें प्रेमीके व्यक्तित्व-का यही प्रक्षेपण (Projection) है। निराशा-जनित वेदनाके मूलमें अपने व्यक्तित्वपरका यही आघात है। दो सत्ताओंके एकीकरणका यही रहस्य है। व्यक्तित्वका भिन्नत्व नहीं अपितु एकत्व ही प्रेमकी चरम साधना है। किन्तु यह साधना, यह एकत्व क्षणोंकी देन है। 'बनना और फिर बिगड़ना यही ससृतिकी गति है, उसका नियम है।' जिसे विधिकी विडम्बना, ललाट लिपिकी अनिवार्यता आदि कहा जाता है, वह इसी विवशताकी भिन्न सज्ञा है। जीवन जिन विरोधी तत्त्वोंद्वारा निर्मित हुआ है उसमे आशाओंके सुनहले सपने ही नहीं बल्कि निराशाकी तप्त किरणे भी हैं। 'हँसने और हँसाने' को आनेवाली 'मधु-ऋतुकी पागल

कोकिल' उसकी चिर सचित आशा जगा देती है। कवि मानता है, यह आवेश भी क्षणिक है, यह सौन्दर्य भी क्षणिक है, यह मिलन-संयोग भी क्षणिक है—

जीवन सरिताकी लहर लहर
मिटनेको बनती यहाँ प्रिये !
संयोग क्षणिक ! फिर क्या जाने
हम कहाँ और तुम कहाँ प्रिये ?

× × ×

चलना है सबको छोड़ यहाँ
अपने सुख-दुखका भार प्रिये !
करना है कर लो आज उसे
कलपर किसका अधिकार प्रिये !

उसका यह सन्देह मात्र सन्देह नही रह सका और मूर्त्तिमती विफलता जीवनमे प्रत्यक्ष हो उठी, संसार निष्ठुरताओंका आधार है। पन्तने कहा था—

कौन जान सका किसीके हृदयको ?
सच नहीं होता सदा अनुमान है ?

× × ×

निरपराधोंके लिए भी तो अहा !
हो गया संसार कारागार है !!

प्रेमकी इस असफलताकी आशका थी किन्तु जब सहसा विफलता

सामने आ खड़ी हुई, वेदना कम नहीं हुई। जिसे जीवनकी 'मधुऋतुको पागल कोकिल' कहा था, जो जीवन मरुभूमिकी लहलहाती हरियाली थी, जो प्राणोंकी प्राण थी, जीवनकी आशा और उत्साह थी, वह अपनी बनी न रह सकी और कवि कहता है—'है प्रेम भूल सपनेकी'। सब कुछ चला जाता है, संसारमे कोई टिका नहीं रहता। मनुष्यकी किन्तु दुर्दमनीय आशा ससारके इस अस्थायित्वपर विश्वास करना नहीं चाहती। ससारमे कोई अपना नहीं भला कब कौन किसका हुआ है। संसारमे प्रतीक्षा ही सार है—'

अब असह प्रतीक्षा हुई सुमुखि!
अब असह तुम्हारा मौन हुआ,
जगके स्वरमें तुम भी लिख दो—
इस जगमें किसका कौन हुआ?

×

कल मैंने तुमको पाया था
निज जीवनमें उन्माद लिये!
खोये देता हूँ आज तुम्हें
मैं एक कसकती याद लिये!

वह भूलना नहीं चाहता, वह स्मृति ही उसका धन है। प्रिय केवल स्मृतिमे ही तो जीवित रहता है। हाय अभी कलकी ही तो बात है वह किस तरह भुला दे। रह रहकर याद काँटे सी कसक उठती है। वह भी एक बार मीराकी भाँति कहना चाहता है—

जो मैं ऐसा जानती रे, प्रेम किये दुख होय।
नगर ढिंढोरा पीटती रे, प्रेम न करियो कोय।

किन्तु केवल 'किन्तु' बना रह जाता है। यह व्यथा फिर भी स्थायी नहीं। क्षणोंके संयोगकी भाँति वेदनाके क्षणोकी तीव्रता तो घट ही जायगी। अब राह दूसरी है। वेदनाकी गहरी अनुभूति वेदनाको ही गँवा देती है वैसी अवस्थामे वेदना अभिशाप नहीं, वह वरदान बनकर आती है। प्रेमी वेदनाहीमें जीवित नहीं रहता बल्कि उसका सम्पूर्ण व्यक्तित्व वेदना-मिश्रित हो उठता है। उस समय जीवन-दर्शन सासारिक क्षुद्रताओ, मान-अपमानके ऊपर उठ जाता है। उसकी जाँच ससारकी मान्यताओंद्वारा नहीं किया जा सकता। भावनाओंमें वेदनाका दर्शन नहीं होगा, एक मर्म-मधुर टीस होगी। वह छटपटाता भी नहीं, चिल्लाता भी नहीं, हो-हल्ला भी नहीं मचाता। एक हल्की-सी धड़कन, मधुर वेदनाकी अधखुली हँसी ही वेदनाका परिचय दे पाती है। ससारकी दृष्टिमे वह पागल है। ससार जिन मान्यताओंके द्वारा जीवनका मूल्य निर्धारण करना चाहता है उनकी कसौटीपर वह कसा जा नहीं सकता। ससार उपदेश कम नहीं देता। वह चाहता है—कोई सामाजिक मान्यताओंका तिरस्कार न करे। वह कहता है,—'भले आदमी' क्या अच्छी सूरत बना रक्खी है, क्या कर रहे हो, क्यों अपने जीवनको व्यर्थ बर्बाद कर रहे।' 'नर हो न निराश करो मनको'। 'संसार क्या!' जिसने प्रेमका यह बन्धन बाँधा था और एक दिन तोड़ दिया—

जिसने तोड़ा प्रिय उसने ही
था दिया प्रेमका यह बन्धन!

वह भी कह उठती है,—आनन्दसे रहो, जीवन रसको यों व्यर्थ न बहाओ।' किन्तु 'मैं दीवाना तो भूल चुका अपनेको' इसलिये यह उप-

देश व्यर्थ है, यह पूछना व्यर्थ है, मैं कहाँ रहूँगा, कहाँ जाऊँगा, इसके 'माते'को जजीर है मकडीका जाला' किन्तु अपने आप बन्धनमे पड़े व्यक्ति-की भाँति आज अपना बन्धन तोड़ चले—

.हम स्वयम् बँधे थे और स्वयं
अपने बन्धन हम तोड़ चले ।

'कहाँ जाऊँगा, कहाँ बसूँगा' यह पूछना भी व्यर्थ है । इसलिए नहीं भाग रहा हूँ कि 'भागनेकी इच्छा है' बल्कि इसलिए कि गति ही जीवन है, जीवन ही गति है । कोई यहाँ रुक नहीं सकता, रुक नहीं पाता । यदि यहाँ रुक पाता, अवश्य रुक जाता । इस स्नेह-बन्धनको तोड़कर नहीं जाता, किन्तु विवशता तो कम नहीं । अपने बन्धन स्वयं तोड़कर जा रहा, इसमे भी कम विवशता नहीं । एक दिन ऐसा था, 'जब तुम अपनी थीं, जग अपना था' किन्तु वे क्षण तो टिके रहे नही । तुम्हे अपनी राह जानी है, कबतक रुका रहूँगा, इसलिए यह बन्धन तो तोड़ना ही पडेगा क्योकि 'चलना है, बस इसलिए चले' इसलिए हमारा कोई निश्चित लक्ष्य नहीं, उद्देश्य नहीं, कोई गन्तव्य स्थान भी नही । ऐसा स्थान नहीं, जहाँ कोई आँखोमें प्रतीक्षाका भार लेकर बैठा हो, इसलिए—

हम दीवानोंकी क्या हस्ती
है आज यहाँ कल वहाँ चले ।

कोई बुलानेवाला नही, कोई रोकनेवाला नही । पथ ही साथी है; पागलपन ही सम्बल है । पथकी रेणुका कोई निश्चित स्थान नहीं । वायुके झोंके नित नवीन संसार बनाते और बिगाड़ते हैं । उसी धूलकी भाँति हमारी कोई हस्ती नहीं । धूलका अस्तित्व नही, यह बात नहीं, किन्तु

अस्तित्वके साथ जो टिक सकनेका भाव है वह तो नहीं। यह जीवन आज कुछ वैसा ही अनिर्दिष्ट, आदर्शहीन, लक्ष्य-भ्रष्ट है। कोई बन्धन नहीं, 'चारो लोकं जगीरीमें' है। इस ससारके 'मिलन-मेला' मे कुछ क्षणोंका ही तो सयोग है। सहसा निर्मेघ गगनमे चमक पडनेवाले धूमकेतुकी भॉति ही तो 'क्षणिक परिचय का सुख-सयोग' है—

आये बनकर उल्लास अभी,
ऑसू बनकर बह चले अभी।

कितना क्षणिक है यह मिलन-सयोग; 'उठे दर्दकी तरह, गिर पड़े ऑसूकी तरह' जब चलना ही अभीष्ट है, संसारमे कोई विरामदायिनी गोद नहीं, जब गति मात्र उद्देश्य है फिर—'किस ओर चले ? यह मत पूछो ?' तुम पूछते हो, 'ससारमे अभी हमने देखा ही क्या ? यह अनेकानेक विचित्रताओंका भण्डार है। यहॉ नित्य नवीन सुखोंका साज है।' फिर भी, भाई जो देख लिया, वह पर्याप्त है, अब और अधिक देखनेकी चाह बाकी नहीं रही। इतना ही क्या कम है जो—

जगसे उसका कुछ लिये चले,
जगको कुछ अपना दिये चले,
दो बात कहीं दो बात सुनी
कुछ हँसे और फिर कुछ रोये !

जीवनमें और कुछ तत्त्व तो रहा नहीं इस अन्धी दुनियाको हमने अपना प्यार दिया, और संसारने केवल असफलताका भार दिया। जगसे उसका अभिशाप लिया और उसे अपनी करुणाका वरदान दिया।

.ससारने प्रतारणा, घृणा और अत्याचार दिया और बदलेमे प्यार किया है हमने—

अभिशाप उठाकर होठोंपर
वरदान दृगोसे छोड़ चले ;

इसलिए ससारके प्रति कोई द्वेष नही, कोई शिकायत नहीं। इतना क्या कम सन्तोष है कि जीवनका सुख-दुःख बिना रोक-टोकके हम पीते रहे। सुख-दुःखसे ऑखमिचौनी हम खेलते रहे। इसलिए—

अब अपना और पराया क्या ?
आबाद रहें रुकनेवाले !
हम स्वयम् बँधे थे और स्वयम्
अपने बन्धन हम तोड़ चले !

इस गीतमे कल्पनाकी उदात्त उड़ान नही, अनुभूतिका फेनोज्ज्वल स्वच्छन्द प्रवाह भी नहीं, भावनाकी मन्द-मधुर गति है। तर्क और बौद्धिकताका उन्मेष नही, वादके विवादका प्रयत्न नही। प्रारम्भिक प्रेमकी उफान भी नहीं, निराश प्रेमकी कृत्रिम व्याकुलता और व्यथा-का अतिशय प्रदर्शन भी नहीं, 'कसकती वेदना' का अश्रु-निर्मित गान है। भाव और भाषा, साध्य और साधन दोनों मिलकर एक हो गए हैं। वर्माजीके गीति-काव्यकी यह विशिष्टता है। वर्माजीके गीतोंमे बच्चनके गीतोंकी भाँति सरलता है। यह बात दूसरो है कि उर्दूकी भाव-शैली और अभिव्यक्ति-धाराका प्रभाव दोनोपर है। बाते सीधी-सीधी होनेपर भी प्रभावसे रिक्त नहीं। शास्त्रीय 'रसवाद' का आग्रह छोड़ यदि हम रसात्म-कताका विचार करें तो इस गीतसे रसानुभूति और आनन्दानुभूति दोनों

होती हैं। इस गीतमे हृदयकी हल्की-सी विकलता, प्रेम पीडाका माधुर्य, भावुकताके रससे सिञ्चित मर्म-मधुर पीड़ा, सासारिक मान्यताओंके प्रति उदासीनता, अनुरागकी उन्मादक दशा है। यह मर्मस्पर्शी है, इसमे भावोद्रेककी क्षमता है।

कोकिलकी यह कोमल पुकार।
कितने मधुसिक्त बसन्तोंने कर मधुर भेज दी यह पुकार।

पर तारोंकी नीरव समाधिमें
डूबे मेरे सभी गान,
असहाय हृदयकी हूक हाय!
आँसू बन आयी है अजान।
यह तो जीवन दंशन-सा है, विष, सा साँसोंका है उभार॥

क्या मधुर राग! यह तो मेरे
सुखका है अपहृत धन महान,
ये विहँग अलग हो उड़े सभी
ले मुझसे मेरे मधुर गान।
यह गान, आज है सोई-सी स्मृतिका कितना निष्ठुर प्रहार॥

रामकुमार वर्मा

वसन्तकी अमराइयोसे मादक अन्ध-गन्ध आकर जीवनकी सोयी अनुभूतिको जगा देती है। कलियोंका सुहास किसीकी मन्द मदिर

मुस्कानकी याद दिलाती है। समीरकी चञ्चल-हिलोर लहरें उठाती इठलाती चल पड़ती है। चारो ओर हर्ष हुलास छाया है किन्तु सूनेपनकी स्मृति रह-रह ठेस लगा जाती है। बसन्तकी बासन्ती सुरभि नये सपने जगा देती है—

सिहरें द्रुम-दल, नव पल्लव
फूटें डालोंपर कोमल,
लहरे मलयानिल, कलरव
भर लहरोंमें मृदु-चञ्चल !
मुद्रित नयना कलिकाएँ
फिर खोल नयन निज हेरें,
मञ्जरियोंके मुकुटोंमें
नव नीलम आम-दलोंके
जोड़ों मञ्जुल घड़ियोंमें
ऋतुपतिको पहनानेको
झुक डालोंकी लड़ियोंमें।

—निराला

ऐसी है बासन्तिकता—

कूलनमें केलिमें कछारनमें कुञ्जनमें,
क्यारिनमें कलिन कलीन किलकंत है।
कहै पद्माकर परागहूमें पौनहूमें,
पातिनमें पीकन पलासन पगंत है।

द्वारमें दिसानमें दुनीमें देस देसनमें,
देखो दीप दीपनमें दीपति दिगंत है ।
बिपिनिमें ब्रजमें नबेलिनमें बेलिनमें,
बननमें बागनमे बगर्यो बसंत है ।

चारो ओर बासन्ती-श्री फैली है और इसी समय कोयल कूक उठती है । मन पहलेसे ही कुछ उन्मन-सा, उदास-सा था । कुछ सूना-सा जान पडता था, किन्तु पता नहीं हृदयमे क्या खटक रहा था कि कोयलकी कूक उठी । कवि एक बार सजग हो उठता है, अरे **'कोकिलकी यह कोमल पुकार'** । स्मृतियाँ सो चुकी थीं, वह उस मर्म व्यथा, अन्तरकी पीड़ाको भूल चुका था । दिलका घाव भरता दीख रहा था । मनमे बार बार उठ पड़नेवाली पीर कसक पैदा नहीं करती थी । अब न वह आकुलता थी, न था उद्वेग । हलचल शान्त थी कि सहसा जग पडी 'कोकिलकी यह कोमल पुकार !' आह, 'कोयलकी यह पुकार' कितनी मादक है ! न जाने कितने वसन्तोकी मादक सुराका इसने पान किया है । यह मधुसिक्त है, उन्मादक है । वह-खोयी पीर जग पड़ती है । घाव फिर हरे हो जाते है, न जाने कौन-सी व्यथा, कौन-सी पीड़ा छिपी है इसमे । कोयलकी यह पुकार आनन्द, मिलन, हर्षका गीत जगाती है । प्रकृतिके नव-हासका चित्र अंकित कर जाती है किन्तु आज हवा बदली नजर आती है । मन विरस है, उन्मन है. किसीकी चाहमें मस्त है, अभाव-त्रस्त है और 'कोयलकी यह पुकार' उस अभावकी अनुभूतिको तीव्र कर देती है । कवि कल्पनाका उपासक था वह 'तारोके गजरोवाली' निशाके साथ गगन-विहार करता था; आज जिज्ञासा और औत्सुक्यके इस जीवनमे अनुभूतिकी ज्वाला जग पड़ती है । कविको अनुभूति कल्पनासे अधिक प्रिय है ।

और 'कोयलकी यह कोमल पुकार' उसकी अनुभूतिको जगा देती है। यदि इस कोमल पुकारमे रस मग्नता नही होती, अगर उसकी बुद्धि काम कर पाती वह सुनी-अनसुनी कर देता किन्तु इस पुकारमें इतनी मादकता है कि बुद्धि साथ दे पाती नहीं। न जाने कितने बसन्तोंकी मादकताने इसे मादक बनाया है। फिर कैसे न इसको मादकता अपरिमेय हो, अतुलनीय हो, । और 'कोकिलकी यह कोमल पुकार!'

उसकी अनुभूति इतनी तीव्र है कि वह मौन है, भाव इतने गूढ है कि उन्हे वाणी नहीं मिलती। जबतक अनुभूतिकी यह तीव्रता नही थी उसके गान स्वरके पंखोंपर चढ आकाशका बिहार कर रहे थे किन्तु आज भावना मूक है, ठीक उसी प्रकार मूक जैसे अपलक तारे।

तारोंकी नीरव समाधिमे
डूबे मेरे सभी गान,
असहाय हृदयकी हूक हाय!
आँसू बन आयी है अजान।

गीतोने नीरव समाधि ले ली। आकाशकी ऑखोंके ऑसू तारोंके रूपमे झलक रहे हैं। तारोंकी अपलक व्यथामें आकाशकी करुण-कहानी है। उसी प्रकार हृदयकी अन्तर्भूत भावना परिधि खोकर निस्सीम हो रही है और ऑसू ही उस व्यथाके परिचायक हैं। यही तो पीड़ा है कि 'एक स्वप्न बन गयी तुम्हारे प्रेम मिलनकी बात' और इस घडीमे 'कोयलकी यह कोमल पुकार!' कोयल ऐसे स्वर न सुना। ऑखोमे छानेवाले ऑसू 'दिलका भेद' कह देते है, और 'असहाय हृदयकी हूक' कुछ बूँद ऑसू बनकर रह जाती है। यदि वह हृदय असहाय नहीं होता, प्रियको बाहुओकी सीमामे घेरकर रवि बाबूकी बालिकाकी तरह कह उठता—

'जेते आमि दिबो ना तोमाय' (तुम्हें जाने न दूँगी) लेकिन हृदयमें इतनी शक्ति कहाँ थी जो बाहुओंकी सीमामें घेर रखा जा सके अगर यही सम्भव होता आखिर रोना क्यों आता ! 'असहाय हृदयकी हूक आँसू बन आयी है' और फिर भी 'कोयलकी यह कोमल पुकार !' यह जीवन ही विषादका गीत बन गया है—

आह मेरा गीला गान,
वर्ण-वर्ण है उरका कम्पन,
शब्द-शब्द है सुधिका दंशन
चरण चरण है आह,
कथा है कण-कण करुण अथाह
बूँदमें बाडव का दाह

—पन्त

जीवन तो व्यर्थ वेदना-भार बन रहा है। उसमे आशाओंकी दुनिया बसा ली थी किन्तु आज स्मृतियोंका, आशाओंका संसार लुट चुका है बस 'यह जीवन तो दंशन-सा है, विष सा साँसोंका है उभार'। किसी भाँति उस वेदनाको सुला रखा था, पीड़ाको दबा चुका था, दंशनकी टीस कम पड़ गयी थी कि सहसा सुन पडी 'कोकिलकी यह कोमल पुकार'। भावनाकी इस प्रचण्ड धारामे, अनुभूतिके वेगवान इरहराते प्रवाहमें मनका बाँध बह गया। आँसुओंमे मन बह गया। स्मृतियोंका यह जीवन दंशन-सा है, रह-रहकर पीड़ा होती है, जिस तरह काँटे रह-रहकर चुभते हैं, स्मृतियाँ रह-रहकर टीस पैदा करती हैं और प्रत्येक पल, हरेक घड़ी, हर साँस विष-सी लगती है।

पड़ता बल्कि उसकी. सौन्दर्यिक अनुभूति और कल्पना जग पड़ती है। उसमे 'ऑखो ऑखोमें हँसते हैं 'पी पी' रटन लगानेवाली' जैसी अनुभूति है। वह बादलोको देख 'विरही यक्ष' की भॉति अधीर नहीं होता। अपने ऑसुओसे धराका ऑचल भिगोता नही, अथवा केवल दिखानेके लिए हर्षोल्लासका अभिनय भी नहीं करता। वह अपनी भावनाके प्रति ईमानदार है क्योंकि 'देखा-देखी हम जी न सके देखा-देखी हम मर न सके।' नेपालीका द्रष्टा प्रकृतिसे अपनेको भिन्न रखकर उस सौन्दर्यका आनन्द लेता है। कारण सौन्दर्य आनन्दका अजस्र स्रोत है (A thing of beauty is joy for ever: Keats) महादेवी जैसा करुण-मधुर भाव भी नेपालीमे नही है। यहॉ सौन्दर्यके प्रति आकर्षण और उन्मेष है। सन्ध्याके उमड़ते मेघ मध्यकालीन कवियोंके उद्दीपन भी नही, और न शुद्ध आलम्बन ही है। केवल बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव जाग्रत करना ही इनका ध्येय नही। कविके सहज सक्षोभ्य मानसकी सहज सुकुमार किन्तु कलात्मक अभिव्यञ्जना है। रामकुमार वर्मामे सौन्दर्यके प्रति पूरा आकर्षण है किन्तु उनमें नेपाली जैसी निस्सगता नहीं अपितु संलग्नता है। डा० वर्माके गीतोमे अतः रागात्मक आवेश है और नेपालीके इन गीतोमे सौन्दर्यात्मक राग। रवि बाबू जैसा औत्सुक्य और रहस्यात्मक आवेश भी नेपालीमे नहीं है; उसमें मुग्धता, उन्मेष और झीना-सा आवेश है।

कविका न बॅधनेवाला मन इन गीतोमे बॅध नही सका है किन्तु उद्दाम, अन्ध आवेग नहीं अतः भाषा जहॉ सुकुमार है वहॉ सयत भी। निरालाके प्रचण्ड व्यक्तित्वकी छाप उनकी अनुभूति शैलीके माध्यमसे छलक पड़ती है। पन्तकी सुकुमार कल्पनामें स्वप्निल आवेशकी अभिव्यञ्जना है। नेपालीकी शैलीमे 'निजीपन' है। संयम और सन्तुलनके साथ ही शैलीमें पार्वत्य-प्रदेशका थोड़ा ऊबड़खाबड़पन और पहाड़ी

धाराका वेग भी है। नेपालीकी शैलीमे ऐसा नही लगता कि कविने शब्दोकी छान-बीन करके चुन चुनकर शब्द रखे है। ऐसा लगता है उसके शस्त्रागारमे जो शस्त्र हैं उन्हे निकाल-निकालकर प्रयोग करता है, वह चुनता नही, जो शस्त्र हाथ पडते हैं, उनका प्रयोग करता है। 'सारा जग दोलायमान है ज्यो सागरमे लहर उछाले' मे वेग, तीव्रता है किन्तु उछाले' की सङ्गतिहीन सार्थकतामें उसके मस्त व्यक्तित्वकी झलक है। इसी प्रकार 'झूम रहे हैं पावस रसमे कुञ्ज-लता तरुवर मतवाले' मे व्यञ्जना-शक्तिका अभाव नही। रस-मग्नताकी भावनाभिव्यक्ति इससे होती है किन्तु 'रस' मे कुञ्ज-लता तरुवर मतवाले है, इससे रसके भीतर बूड़नेकी भावना भी अभिव्यक्त हो जाती है।